RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2016-2018

प्रेषक : मुकेश वर्मा (प्रधान संपादक)
'समावर्तन' (हिन्दी मासिक)
माधवी, 129, दशहरा मैदान
उज्जैन (म.प्र.) 456 010

पुस्त—प्रेष्य

यहां पते चिपकाएं
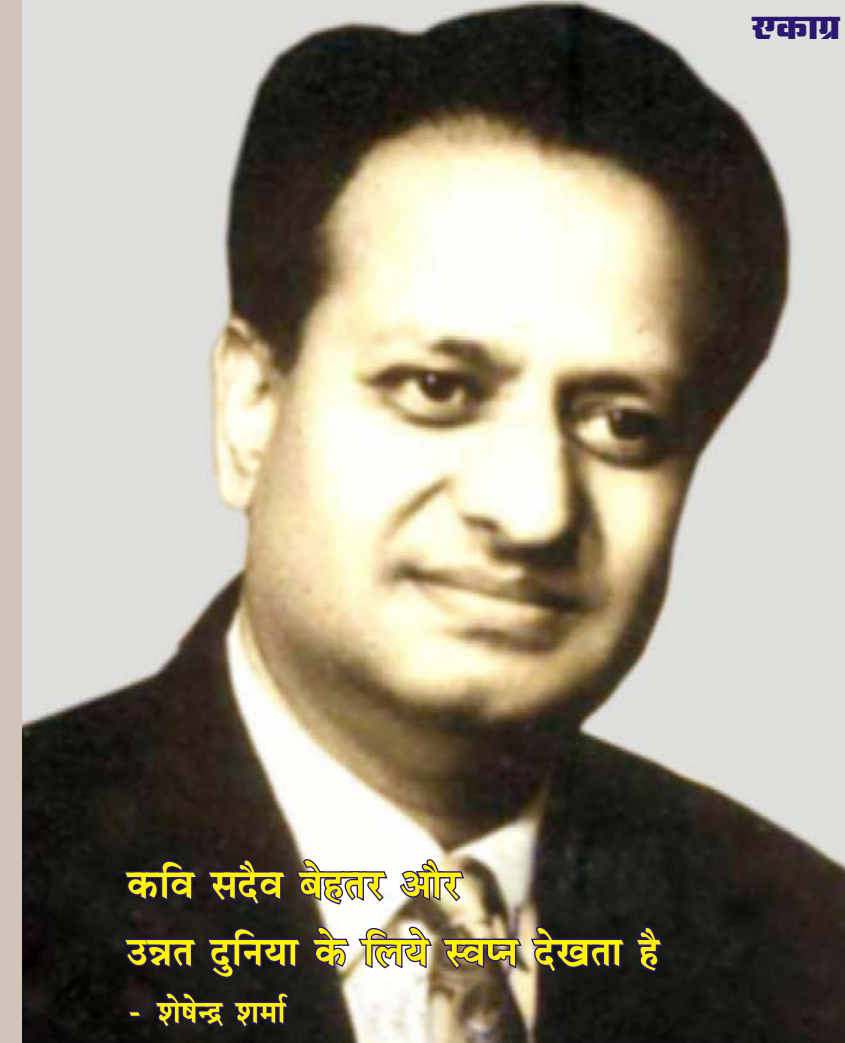
स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

11 वर्षों से अनवरत प्रकाशित
130 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन

मासिक पत्रिका

वर्ष 11 ■ अंक 10 ■ पूर्णांक 130 ■ जनवरी 2019 ■ ₹ 60/ –(व्यक्ति) ₹ 150/ –(संस्था)

एकाग्र

कवि सदैव बेहतर और उन्नत दुनिया के लिये स्वप्न देखता है
- शेषेन्द्र शर्मा

कथाराग-16

(कथा केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ)

सरोकार

हिन्दी साहित्य में यात्रा साहित्य को दोयम दृष्टि से परखा जाता है
- सांवरमल सांगानेरिया

वर्ष 11 ■ अंक 10 ■ पूर्णांक 130 ■ जनवरी 2019 ■ रू. 60/- (व्यक्ति) रू. 150/- (संस्था)

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

ISSN - 2348-8638

समावर्तन

मासिक पत्रिका

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

समावर्तन का मूल्य
व्यक्तिगत सदस्यता प्रति अंक : 60 रु. वार्षिक : 600/-
संस्थागत प्रति अंक 150/- वार्षिक 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100/- $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010

मुद्रणालय
आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

समावर्तन

जनवरी -2019

इस अंक में

एकाग्र

शेषेन्द्र शर्मा

सरोकार

सांवरमल सांगानेरिया

कथाराग-16

अक्षर विन्यास : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे

विश्व की सबसे पहली कविता

ऋग्वेद विश्व की सबसे प्राचीन पुस्तक है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के प्रथम सूक्त में मधुच्छंदा ऋषि आदिम ज्वाला से संवाद करते हुए मानव जाति के लिये जो मांग करते हैं,वह अब भी प्रासंगिक हैं। गायत्री छंद में उतरी हुई विश्व की यह पहली कविता है,जो भारतीय साहित्य के शिखाग्र पर होने के कारण असाधारण महत्व रखती है। इस सूक्त में कुल नौ ऋचाएँ हैं, और वे सभी आदिम ज्वाला को समर्पित हैं।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।।
....

ऋग्वेद.1.1.1,

ओ आदिम ज्वाला !
हमारी आवाज सुनो।
इस पल तुम अनुभव में हो हमारे,
यात्रा में सबसे आगे चलती हुई
यज्ञ की पहली प्रार्थना हो,
तुम हो तो जीवन में
असीम सम्भावनाएँ भरी पड़ी हैं ।।1।।

ओ आदिम ज्वाला !
प्राचीन ऋषियों ने प्रज्ज्वलित किया तुम्हें,
नये युग के मनीषी भी घूम रहे हैं
तुम्हारे ही आसपास,
तुम ही उतार लाती देवों को
यहाँ धरा पर।।2।।

ओ आदिम ज्वाला !
तुम समृद्धि हो,उत्सवा हो,
तुम हो तो दिन-दिन
बढ़ता ही जाता है ऐश्वर्य,
यश का महासागर
उमड़ता हुआ आता है मेरी ओर।।3।।

ओ आदिम ज्वाला !
विश्वयज्ञ को चारों ओर से
घेर कर चल रही तुम,
स्वर्णिम आलोक में जाकर
खुलता हुआ यज्ञ
तुम्हारी ही कथा कहता है ।।4।।

ओ आदिम ज्वाला !
तुम आह्वान करती हो
ऋत का,अमृत का,
क्रांतिकारी संकल्प से भरी हुई
तुम खोज रही हो सत्य को,
तुम्हारी विचित्र ध्वनियाँ सुनाई देती
अंदर ही अंदर,
तुम आओ देवों की वाहक बनकर।।5।।

ओ आदिम ज्वाला !
अपना सर्वस्व अर्पण कर दूँ
तो स्वस्ति की रेखा
खिंच जायेगी चारों ओर,
तुम ही अंगिरा हो,
तुम ही सत्य का सर्वोच्च शिखर ।।6।।

ओ आदिम ज्वाला !
प्रतिदिन घनान्धकार में
बस तुम ही ध्यान में आती हो,
हाथ जोड़कर हम
तुम्हारे ही पास आते हैं ।।7।।

ओ आदिम ज्वाला !
तुम हमारे यज्ञ की स्वामिनी हो,
सत्य की सुरक्षा में खड़ी
ओ दैदीप्य ज्वाला !
तुम अपने में समृद्ध हो,समुज्ज्वल हो।।8।।

ओ आदिम ज्वाला !
तुम हमें उसी तरह मिलो,
जिस तरह पुत्र को मिलते हैं पिता,
हमारी स्वस्ति के लिये तुम
सदा ही हमारे साथ रहो।।9।। स
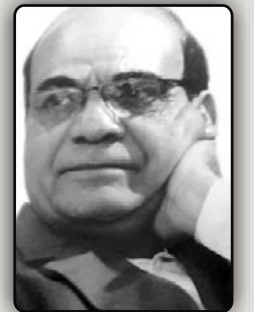
डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम

वीर विहीन मही मैं जानी

रमेश दवे

'समावर्तन' के समस्त सम्मानीय लेखकों, पाठकों, क्रयकर्त्ताओं, पढ़कर प्रतिक्रियादाताओं, आर्थिक सहयोगियों, कलाकारों स्टाफ और प्रकाशक सहित उन सबको नववर्ष 2019 की हार्दिक शुभकामनाएँ जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से समावर्तन से जुड़ कर आपकी इस पत्रिका की हौसला-अफजाई करते रहे हैं। आप सब सदा स्वस्थ, सुखी, समृद्ध और टिकाऊ बने रहें और समावर्तन को प्यार करते रहें, यह कामना एवं प्रार्थना है। आपका बल समावर्तन का सम्बल है।

'पत्रिका' कोई भी, कभी भी, कहीं से निकाले, वह एक प्रकार का बौद्धिक जागरण और साहित्यिक आन्दोलन स्वयं भी पैदा करती है और अपने समकाल की संवेदनशील गवाह भी होती है। 'समावर्तन' ने सभी आत्मीयों के अनुराग से ग्यारह वर्षों का निर्बाध अवकाश-रहित, विलम्बरहित समयपूर्ण किया। कष्ट पैदा हुए तो कष्ट निवारक भी आए। अभाव पैदा हुआ तो अभाव को अपने मैत्री-भाव एवं आर्थिक-सहयोग से भरकर पत्रिका को उसकी अकाल-मृत्यु से बचा भी लिया गया। ऐसे सर्जकों और शब्द-धर्मियों के प्रति समावर्तन की पूरी टीम कृतज्ञ है और आश्वस्त है कि आप सबका हाथ जब तक समावर्तन के सर पर रहेगा, तब तक इसकी देह में विचार एवं शब्दों की धड़कन जारी रहेगी।

अब आगे कुछ साहित्यिक गपशप। कैसा निराशा-जनक और भयावह रहा वह निर्णय जब वर्ष 2018 के नोबेल सम्मान के लिए विश्व के किसी भी साहित्यकार को नहीं चुना गया। क्या सारी दुनिया 'वीर विहीन मही मैं जानी' के अनुसार इतनी सृजन-विमुख हो गई कि नोबेल समिति ने साहित्यकार का सम्मान ही निरस्त कर दिया। यह अशोभनीय होने के साथ विश्व साहित्य के लिए अपमान एवं चिन्ता का विषय है। क्यों न ऐसा हो कि विश्वभर के समस्त साहित्यकार, प्रकाशक और पाठक मिलकर ऐसा सम्मान रचें जो नोबेल की आभा से अधिक आभावान हो। साहित्य श्रेष्ठता का एक मात्र ठेका तो नोबेल समिति ने नहीं लिया है। सार्त्र ने तो उसे आलू का बोरा कह कर ठुकरा दिया था। बोर्खेज जैसे महान अर्जेण्टीनी कथाकार कवि को भी यह पुरस्कार नहीं मिला। बावजूद इसके अगर विज्ञान, चिकित्सा, अर्थशास्त्र महत्वपूर्ण हैं तो साहित्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं होता। वह तो हर देश की एवं विश्व सभ्यता का प्रतीक होता है। नोबेल पुरस्कार न मिलना सारी भाषाओं के साहित्य और साहित्यकारों का अपमान है। यदि नोबेल पुरस्कार मध्ययुग में दिये जाते तो दुनिया के महान साहित्यकार जैसे तुलसी, शेक्सपीयर, गोइटे आदि अनेक साहित्यकार नोबेल पुरस्कार विजेताओं से बड़े पुरस्कारों के अधिकारी होते। यह दुर्भाग्य की बात है कि नोबेल समिति ने दुनिया के किसी भी साहित्यकार को नोबेल पुरस्कार के योग्य न मानकर स्वयं नोबेल पुरस्कार का ही अपमान किया है।

भारत में जितनी भाषाएँ हैं, उन सबके अपने-अपने साहित्यिक सम्मान एवं पुरस्कार हैं। विडम्बना यह है कि प्रतिवर्ष हजारों पुस्तकें कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना, नाटक, निबंध वैचारिक और सामयिक लेखन एवं अन्य विधाओं जैसे व्यंग्य आदि की प्रकाशित तो होती हैं परंतु उनमें से कुछ अपवाद को छोड़ कर शेष पुस्तकें अनपढ़ी रह कर रद्दी के ढेर में बदल जाती हैं। हमारी विडम्बना यह है कि हम अध्ययन-विमुख लेखक हैं। विश्व-साहित्य न भी पढ़ें, अपनी भाषा का वह श्रेष्ठतम तो पढ़ें, जिससे यह लगे कि हमारी भाषाओं के पास उसके सुधी पाठक हैं। जब तक भारतीय भाषाओं और विशेष रूप से हिन्दी जैसी बड़ी और लोकव्यापी भाषा के सर्जक अपना साहित्य पढ़कर, नया साहित्य रचने की ओर उन्मुख नहीं होते, तब तक घटिया रचनाओं की बाढ़आती रहेगी और ऐसी पुस्तकें केवल लोकार्पण के बाद अदृश्य होकर इस बाढ़में विसर्जित हो जाएँगी।

वर्ष 2018 बीत गया। छोड़ गया चुनौतियाँ साहित्य में भी, समाज में भी, राजनीति में भी और बौद्धिक चिन्तन मनन में भी। पाँच राज्यों के चुनाव के प्रचार के दौरान राजनीतिक दलों के जाने माने लोगों ने जिस भाषा का प्रयोग किया, उससे नेता आहत या अपमानित हुए हों या न हुए हों, लेकिन जनता और भाषा अपमानित हुईं, लोकतंत्र अपमानित हुआ, संविधान और न्याय-व्यवस्था अपमानित हुई। नेतृत्व शक्ति के पास मर्यादा का आत्म-संस्कार आवश्यक है। सरकार बनाने वाले लोगों के प्रति हीन भाव राजनीति को भी प्रदूषित करता है। हम किसी भी दल में हों, लेकिन अपने लोकतंत्र के शील का चीर-हरण न करें। आज हमारे पास गांधी, विनोबा, जयप्रकाश, अम्बेडकर, जवाहरलाल नेहरू, पटेल, शास्त्री आदि की वह महान पीढ़ी भले ही न हो, मगर हम उनके उत्तराधिकारी तो हैं। राजनीति में मतभेद होते ही हैं, विरोध और विपक्ष भी होता है, लेकिन दुश्मनी, प्रतिशोध या प्रतिकार नहीं होता। हमारे बड़े कददावर नेताओं को चाहिए कि वे लोकतंत्र का ऐसा भाषाई संस्कार रचें कि जिससे हमारा लोकतंत्र शालीनता, मर्यादा, नैतिकता और प्रेम का लोकतंत्र बन सके। यदि संभव हो तो चुनाव आयोग मर्यादाहीन भाषा को भी आचार-संहिता में प्रतिबंधित करे।

इस अंक में तेलुगु के महाकवि स्व. शेषेन्द्र शर्मा के काव्य व्यक्तित्व पर जहाँ 'एकाग्र' संयोजित है वहीं सुदूर आसाम के यायावर लेखक सांवरमल सांगानेरिया के कृतित्व और व्यक्तित्व पर 'सरोकार' केन्द्रित है। समकालीन कहानी पर केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ कथाराग भी इस अंक में है। स

पुनः शुभकामनाएँ
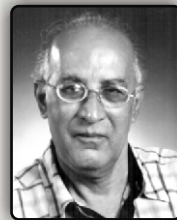
(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071

इनसे मिलिये ....

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'
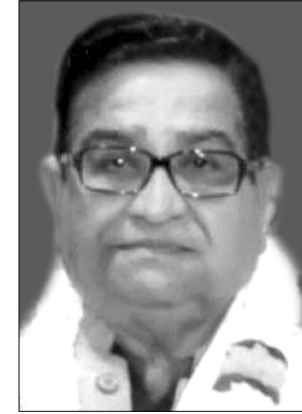
अरुण वर्मा

समावर्तन के सुधी लेखकों में डॉ.अरुण वर्मा भी हैं। समृद्ध साहित्यिक वातावरण में रहे अरुण वर्मा जी एक अच्छे वक्ता, कवि, लेखक और लोकप्रिय प्राध्यापक के रूप में विख्यात हैं। समावर्तन को अपने लेखकीय अवदान से समृद्ध करते रहे अरुण जी के बारे में समावर्तन के सम्पादक श्रीराम दवे जी कुछ इस तरह बता रहे हैं - "देश के प्रतिष्ठित माधव महाविद्यालय, उज्जैन से सेवानिवृत्त प्रोफेसर और अध्यक्ष हिन्दी विभाग डॉ.अरुण वर्मा का रहन-सहन भले ही आभिजात्य रंग में रंगा हुआ प्रतीत होता है किन्तु वे हर क्षण सर्वहारा वर्ग के हित-चिन्तन की बात ही नहीं करते बल्कि उनके हित के लिये हर संभव प्रयत्न भी करते हैं। अपनी कविताओं और अन्य रचनात्मक लेखन में उनका प्रगतिशील जनवादी सोच सामने आता है। यही कारण है कि अरुण वर्मा का विषय विशेष पर व्याख्यान हो या कविता पाठ, समीक्षा पर समीक्षकीय विवेचन हो या अन्य प्रासंगिक विषय पर उनका भाषण, श्रोता समुदाय दत्त चित्त होकर सुनता ही नहीं सराहता भी है और उसे अपनी उपलब्धि मानता है क्योंकि सम्बद्ध विषय पर व्याख्यान के दौरान देश विदेश के लेखकों विद्वानों के संदर्भों को वे कुछ इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि श्रोता उन्हें हृदयंगम कर लेता है।

अखिल भारतीय कालिदास समारोह से विगत 45 वर्षों से सम्बद्ध रहे प्रो.अरुण वर्मा महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के शोध समन्वय के सदस्य हैं तथा देश के कई ख्यातनाम विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में सेमिनारों, कार्यशालाओं में विषय विशेषज्ञ के रूप में तथा व्याख्यान हेतु आमंत्रित किये जाते रहे हैं। म.प्र. उच्च शिक्षा उत्कृष्ट संस्थान भोपाल, राष्ट्रीय रामायण मेला चित्रकूट, साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन नई दिल्ली, गालिब संस्थान नई दिल्ली आदि स्थानों में उनके व्याख्यान सराहे गये हैं। जनवादी लेखक संघ की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य एवं संप्रति जनवादी लेखक संघ उज्जैन के अध्यक्ष के रूप में डॉ.अरुण वर्मा समादृत है। कविता, नाटक, रंगमंच, आलोचना,में समान रूप से सक्रिय तथा अपने छात्रों, महाविद्यालयीन परिवार सहित शुभचिंतकों में लोकप्रिय वर्माजी अपनी एक पृथक अभिजात्य ठसक के बावजूद सभी के लिए आदरणीय बने हुए हैं। वे एक अच्छे वक्ता होने के साथ-साथ एक अच्छे पाठक भी हैं। उनकी स्मरण शक्ति भी प्रखर और संवेदनशील है तथा पच्चीस तीस बरस पहले के उनके संस्मरण ऐसे लगते हैं मानो कल की ही बात हो। ऐसे सदाबहार तथा लोकप्रिय व्यक्तित्व के धनी डॉ.अरुण वर्मा के प्रति अनंत शुभकामनाएँ। स

एकाग्र

शेषेन्द्र शर्मा

जन्म : 20 अक्टूबर 1927
माता-पिता : अम्मायम्मा, जी.सुब्रह्मण्यम
भाई बहन : अनसूया, देवसेना, राजशेखरम
धर्मपत्नी : श्रीमती जानकी शर्मा
संतान : वसुंधरा, रेवती (पुत्रियाँ) वनमाली सात्यकि (पुत्र)
शिक्षा : बी.ए., (आन्ध्रा क्रिस्टियन कॉलेज गुंटूर आं.प्र.)
एल.एल.बी. मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास
नौकरी : डिप्यूटी मुनिसिपल कमीशनर (37 वर्ष)
मुनिसिपल एड्मिनिस्ट्रेशन विभाग, आं.प्र.

शेषेंद्र नाम से ख्यात शेषेंद्र शर्मा आधुनिक भारतीय कविता क्षेत्र में एक अनूठे शिखर हैं। आपका साहित्य कविता और काव्यशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ संगम है। विविधता और गहराई में आपका दृष्टिकोण और आपका साहित्य भारतीय साहित्य जगत में आज तक अपरिचित है। कविता से काव्यशास्त्र तक, मंत्रशास्त्र से मार्क्सवाद तक आपकी रचनाएँ एक अनोखी प्रतिभा के साक्षी हैं। संस्कृत, तेलुगु और अंग्रेजी भाषाओं में आपकी गहन विद्वत्ता ने आपको बीसवीं सदी के तुलनात्मक साहित्य में शिखर समान साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित किया है। टी.एस.इलियट, आर्चबाल्ड मेक्लीश और शेषेंद्र विश्व साहित्य और काव्यशास्त्र के त्रिमूर्ति हैं। अपनी चुनी हुई साहित्य विधा के प्रति आपकी निष्ठा और लेखन में विषय की गहराइयों तक पहुँचने की लगन ने शेषेंद्र को विश्व कविगण और बुद्धिजीवियों के परिवार का सदस्य बनाया है।

प्रयाण : 30 मई 2008

संपर्क : सात्यकि पिता शेषेंद्र शर्मा
मो.91-6304471241
ईमेल- saatyaki@gmail.com

आत्मकथ्य

मेरी ज्वाला मेरी जिह्वा है....

शेषेन्द्र शर्मा

अपने बारे में लिखना किसी के लिए भी बहुत कठिन होता है और उससे भी अधिक कठिन है पीछे छोड़े काल तथा अवधि में पुनः प्रवेश। 'मेरी धरती, मेरे लोग' संकलन की कविताएँ तूफान के गुजर जाने के बाद वृक्ष की डाल पर भीगे बैठे वन-पाखियों-सी हैं। हम नहीं जानते कि वे वहाँ कब आये और उनमें से कौन पहले आया, क्योंकि हम आँधी की प्रचण्डता की तात्विक अस्तव्यस्तता में उलझे हुए थे। समय के इस अन्तराल में उन्हें काल-क्रम के पिंजरे में कैद करना न तो उचित है और न ही न्यायसंगत। आईने से धूल की पतली पर्त हटा कर आतिशबाजी की तरह विस्फोटित घटनाओं की कहीं-कहीं धुँधली-आकृतियाँ उभरती हैं। कविता स्वयं उन्हें आप तक पहुँचाएगी।

मैं इतना कह सकता हूँ कि 'ऋतुघोष' के पहले वाक्य से 'प्रेम पत्र' के अंतिम वाक्य तक मेरी रचना एक तरह की आत्मकथा ही है।

जब कभी भी मैंने आवाज उठायी तो अपने लिए नहीं, तेलुगु जगत के सिर्फ छह करोड़ लोगों के लिए भी नहीं, बल्कि देश के करोड़ों लोगों के लिए सदा मेरी आवाज समर्पित रही है। जो बाधाएँ मैं अनुभव कर रहा हूँ, सारा देश भी वे ही बाधाएँ अनुभव कर रहा है, और मेरी जाति भी- अर्थात मानवजाति। इस कारण मेरी ज्वाला मेरे देश की जिह्वा है।

पीड़ाओं, बाधाओं, यंत्रणाओं और बलिदान के बिना महाकाव्य का निर्माण संभव नहीं है। 'मेरी धरतीः मेरे लोग' मेरा रक्त है जिसे मैंने अपनी आयु, पाण्डित्य, प्रतिभा और सर्वस्व से निचोड़ कर अनुभव और ज्ञान के दो चक्षुओं से विश्व के लोगों, उनके इतिहास, उनकी हार-जीत, उनके उत्थान-पतन, उनके भूत-भविष्य और वर्तमान को देखते हुए, ब्रह्माण्ड-दृश्य से यह सार जुटाया है। मेरे लिए यह गीत इस शताब्दी का उपहार है।

मैं हिन्दी के उन सभी मूर्धन्य आलोचक-विद्वानों, जैसे सर्वश्री स्व.डॉ.भगवतशरण उपाध्याय, डॉ.विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, डॉ.धर्मवीर भारती, डॉ.प्रेमशंकर, श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, डॉ.केदारनाथ लाभ, श्री गंगाशरण सिंह, डॉ.रामसिंह, डॉ.आई.पाण्डुरंग राव, चि.रा. सुब्रह्मयण्यम, डॉ.धनंजय वर्मा, डॉ.विनय, डॉ.नवलकिशोर, डॉ.प्रमोद वर्मा, डॉ.पी.वी.शर्मा, डॉ.विजेन्द्रनारायण सिंह, डॉ.तैलंग, श्री सुधाकर पाण्डेय, श्री गुलाब खण्डेलवाल, डॉ.सरगु कृष्णमूर्ति और डॉ.महेन्द्र कार्तिकेय आदि का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अपनी बेलाग प्रतिक्रियाओं से मेरा हौसला बढ़ाया।

इन विद्वानों में अधिकांश से तो मैं अभी तक मिला भी नहीं हूँ। मैं हिन्दी की उन सभी पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों का भी ऋणी हूँ जिन्होंने मेरी कविताओं के अनुवाद और प्रकाशित पुस्तकों पर आलोचनाएँ प्रकाशित करके मुझे प्रोत्साहित किया। पाठकों के मेरे पास ढेरों पत्र आते रहते हैं, जिनमें आग्रह रहता है कि मैं अपनी कविताओं के हिन्दी अनुवादों को एकत्र करके एक संग्रह प्रकाशित कराऊँ। यों तो मेरी प्रत्येक पुस्तक चार भाषाओं- तेलुगु, अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू में एक साथ प्रकाशित होती रही हैं। ये मेरे परिवेश की भाषाएँ हैं। 'मेरी धरतीः मेरे लोग', 'दहकता सूरज', 'गुरिल्ला' और 'प्रेमपत्र', हिन्दी में अलग-अलग प्रकाशित हो चुकी हैं। मैं प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ कि हिन्दी में अनूदित मेरी पुस्तकों के संग्रह प्रकाशित होते जा रहे हैं।

मैंने हमेशा यही सोचा कि हिन्दी मेरी अपनी भाषा है। हिन्दी मेरे राष्ट्र की भाषा है। मेरी तो यह निश्चित राय है कि क्षेत्रीय भाषाओं का अच्छा साहित्य आवश्यक रूप से हिन्दी में जाना चाहिए। हिन्दी आज पश्चिमी देशों की किसी भी भाषा के समकक्ष सामर्थ्यवान है और काव्य, गद्य तथा साहित्य की अन्य विधाओं के मूल्यांकन के लिए इससे सशक्त कोई अन्य भाषा नहीं। इसीलिए भारतीय भाषा परिवार में हिन्दी का स्थान शीर्षस्थ है। ■

(काव्य संग्रह 'मेरी धरती : मेरे लोग' से)

शेषेंद्र की कविताएँ

मेरा पथ

जो जनता के कोटिशः चरणों से
पुनीत हो गया-
वही है मेरा पथ।

जो मेरे देश के शरीर पर से दौड़ता
गाँवों और बस्तियों से होता हुआ
जलती हुई रक्त-नलिका की तरह
बहता है-
वही है मेरा पथ।

जिसने स्वीकारा है दुःखों के रास्तों को
प्रेमपूर्वक
संसार की खुशी के लिए-
वही है मेरा पथ।

जो लड़ता है
विद्रोह करता है
खेलता है जीवन के खिलौने की तरह
जो जीतता है- हारता है
किन्तु आगे ही बढ़ता है-
वही है मेरा पथ।

जिस पथ पर बेड़ियाँ भी देती हैं चुनौतियाँ
जिस पथ पर
दहकती पराजय भी अग्नि-ज्वाला बन कर,
जिस पथ पर
मरण भी गर्जना करता है
एक महान इतिहास बनकर
वही है मेरा पथ।

('दहकता सूरज' से अनु.-ओमप्रकाश निर्मल)

मेरा वाक्य एक वंशी है

मैं एक गीत हूँ।
जंगल में सरगम बुनती हुई
मोतियों की भीड़ की तरह भागती
मैं एक निर्झरिणी हूँ।

पंखों पर उड़ता हुआ
नीलिमा से मधुरता बिखेरता
मैं एक पंछी हूँ।

उपवन में वसन्त और
अन्तर में ग्रीष्म-
ज्ञात नहीं कि जाना किधर है
मैं वह भटका यात्रिक हूँ।

मेरा वाक्य एक वंशी है
भीतर सिर्फ हवा है-
अर्थ नहीं।
किन्तु यह आवाज
इतनी मधुर क्यों है?
ज्ञान नहीं है जिसे
मैं वह विवश गीत हूँ।

('दहकता सूरज' से अनु.-ओमप्रकाश निर्मल)

मुट्ठीभर फूलों के बदले में

वसंत समझकर भिक्षा मांगोगे/इस देश के द्वार पर/तो झोली में अश्रु मिलेंगे/मुट्ठी भर फूलों के बदले में!
यहाँ आम्र-फल नहीं है हमारा दिवस/जो परोसा जा सके काट कर/तश्तरी में!
यहाँ ढेरों जनता पड़ी है/जो समर्पित कर देती है अपनी गर्दनें/खुद हल को/ और ढेर भर हैं- मुनीश्वर और कवीश्वर/जो मर गए हैं दीमकों की तरह/पृष्ठों में दुबक कर/चलती जा रही है फिर भी लोग-यात्रा/यथावत् !...
यहाँ पूजे जाते हैं व्यभिचार देव/और मार डाले जाते हैं चरित्रवान/बाँट लेते हैं हवा को देशों में/और पानी को विभाजित करके जिलों और ताल्लुकों में!
जहाँ राजा स्वयं गिरवी रख रहे हैं अपने मुकुट/जीने के लिए/वहाँ ये मूर्ख लोग/यह जाने बिना/कि आ गया है उनका अन्त/अपने बक्सों में रख रहे हैं वस्त्र की तरह नाप कर/जमीन को/और थोप दी गयी है बधिरता/गुरिल्ला के कण्ठस्वर पर/जो गर्जना कर रही है दिशाओं में! बन्धु/खींचकर फेंक दो देवालयों से/ उन विग्रहों को/शिल्पित किये गये हैं जो शिलाओं से/और स्थापित करो वहाँ धर्म में शिल्पित विग्रहों को/मैं दे रहा हूँ तुम्हें/दो वसंतों का अवसर/बटोर लो! जितने मकरन्द बिन्दुओं को यथाशक्ति बटोर सकते हो! बटोर लो! अन्यथा काल/मार डालेगा तुम्हें/एक हिंसक पशु की तरह पीछे पकड़कर! लो वही है उदयाचल उसे सादर नमन करो!

'गुरिल्ला' से अनुवाद-ओमप्रकाश निर्मल

शाख से एक पत्ते का झड़ना

शाखा से एक पत्ते का झड़ना
इतिहास में एक साम्राज्य का गिरना
झुरमुट में एक रक्ताभ लिल्ली
बस दर्शन देती है मीनारों के साथ दिल्ली
इन्द्रधनुष टूट कर टपकाता है जो रसायन
प्रदान करता है वह वस्तु में
वस्तु देखने वाला नयन!

काँप उठी मेरी क़लम
जब मैं बैठा हुआ था लोदी होटल में
नेत्रों को छोड़ कर
बहने लगे मेरी पंक्तियों में दिल्ली के आँसू
त्याग कर बगीचों को दिल्ली के सारे पक्षी
बनाने लगे घोंसले मेरे अक्षरों में
आदमी के दिल में विस्फोटित भूकम्प
प्रत्यक्ष हुआ मेरी हथेली में!
पक्षी का गाना, पुस्तकों का ख़ज़ाना

वृक्ष संसार को देखने वाला एन्टेना
हरियाली पर खेलता हुआ वह बालक
समन्दर में मचलता हुआ तूफान।

शब्द जो ढो नहीं सकते भावोद्रेगों का भार
और ? जो मुकाबला नहीं कर सकते हवाओं का
वे निर्मित कर रहे हैं
तूफानों-जैसे मनुष्यों का इतिहास
रेगिस्तान में पिरामिड्स जैसा
आँसू वहन कर रहे हैं समुद्रों को!

अँधेरे में डूबे हुए वृक्ष की शाखाओं को!

अँधेरे में डूबे हुए वृक्ष की शाखाओं को
घेर लिया स्मृतियों ने जैसे/जुगनुओं के झुण्ड ने
नींद खो कर गाँव
सुन रहा था बैलों के जुओं से/ बँधी घंटियों को
लगता है- पूलों के ढेरों के मौन पर
गिरने ही वाले हैं नक्षत्र
आँख और स्वप्न के बीच
दूरी है एक रात की।

मैं एक लाल मुर्ग हूँ

जो बच्चा गर्भ में है
हमारे इस देश में वह वहीं रहे तो बेहतर है
बाहर निकलकर भूख से बिलबिलायेगा
खेतों की ओर नहीं

मैंने जो गीत गाया था नहीं जानता मैं
कि वह डूब गया किस शिशु के कान में
किन्तु भूखे पेट सोये/ उस शिशु के कण्ठस्वर में
करते हैं अट्टाहस महानगरों के गर्वोन्नत भवन
खड़ी होती है महान सभ्यताएँ
सिर झुकाये उसके समक्ष
झटकों से कहो कि वे जगायें पनघटों को
और लायें भरकर/ उस निश्चल जल के स्वप्नों को
मिश्रित हैं जिसमें ऊषा

यह लो, आ रहा हूँ मैं
लेकर पूरब की कुंजी का गुच्छा
मैं एक लाल मुर्ग हूँ
और लायें भरकर/ उस निश्चल जल के स्वप्नों को
मिश्रित हैं जिसमें ऊषा
यह लो, आ रहा हूँ मैं
लेकर पूरब की कुंजी का गुच्छा
मैं एक लाल मुर्ग हूँ

('खेतों की पुकार' से)

यह देश तुम्हारा है

सुनो! मैं तुम्हें अपनी अग्नि की एक भयंकर भेंट प्रदान कर रहा हूँ/जिसे मैंने अपने हृदय में एक सूम के धन की तरह छिपा रखा था/इस पुराने कचरे को जला दो और अपनी एक नयी दुनिया निर्मित करो/पुरातन हवाओं की तरह गर्जना करो और घोषित करो कि/ तुम सिर्फ खाने, श्वास लेने और हमेशा के लिए छोड़ कर चले जाने के लिए नहीं आये हो/ कि तुम वह विशाल ज्वाला हो/जो अरण्यों को छोड़कर आये हो/ कि तुम वह बलवान सागर हो/जो अपने तट-बंध तोड़ कर आया है।

यह क्षण इतिहास में मेरे शिखरों पर चढ़कर पुकारता है/मेरी यात्रा एक स्वेद बिन्दु बन कर/मेरे ललाट पर तन जाती है/ अब मैं यह सत्य तुम्हें अपने रक्त से हस्ताक्षरित उत्तराधिकार में दे रहा हूँ।

स्वतंत्रता मनुष्य की प्रथम श्वास है/वही तुम्हारे रक्त की जीवंत भाषा है/इस धरती से अपना अन्तिम चरण उठाने तक/उसे अपने पास रोक रखना/तुम्हारी एक मात्र इच्छा होनी चाहिए।

खेत ही तुम्हारी पाठशालाएँ हैं/वन, नदियाँ, मेघ, सूर्योदय और सूर्यास्त/तुम्हारे शिक्षक हैं/अपने संपूर्ण हृदय से/स्वयं को/उनकी भाषा को समर्पित कर दो/उनके अनुशासन को स्वीकार कर लो।

खेत तुम्हें स्वतंत्रता की भेंट प्रदान करते हैं/वे तुम्हें निश्चिंतता में श्वास लेने का आनन्द अर्पित करते हैं/वे तुम्हें दक्षिण के पठार जैसी छाती देते हैं/और सख्त लौह चरण/वे तुम्हें स्वाभिमान के स्फुलिंग उगलते नेत्र देते हैं/वे तुम्हें पर्वत की चोटी-सा उन्नत मस्तक देते हैं/आओ! और अपने नए शिक्षकों के चरणों में स्वयं को प्रणिपात करो।

साहसपूर्वक आगे बढ़ो!यह देश तुम्हारा है।

('मेरी धरती मेरे लोग' से
अनुवादक - ओमप्रकाश निर्मल)

युग-प्रवर्तक महाकवि राष्ट्रेंदु शेषेन्द्र शर्मा

''मेरी धरती-मेरे लोग''

कुछ साहित्यकार ऐसे होते हैं जो अपने युग से प्रभावित होकर चलते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी साहित्यकार होते हैं, जो युग से प्रभावित न होकर अपने विलक्षण व्यक्तित्व द्वारा युग को ही प्रभावित करके उसे अपने साथ ले चलते हैं। डॉ.शेषेंद्र शर्मा दूसरी कोटि के साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपनी क्रांतिकारी चेतना द्वारा तेलुगु-काव्यधारा में एक नया मोड़ उपस्थित किया है। उन्होंने तेलुगु काव्य-साहित्य में विप्लवी नवयुवकों की 'कवि-सेना' गठित की और एक नूतन कवि-धर्म का प्रवर्तन किया जो 'कवि-सेना-मैनिफेस्टो' के नाम से प्रसिद्ध है। फलतः शेषेन्द्र विप्लवी कवि और नवयुवकों के हृदय सम्राट बन गये। वास्तव में वे युग-प्रवर्तक महाकवि है।

शेषेन्द्र सच्चे क्रांतिकारी महाकवि है। यद्यपि वे मनसा-वाचा-कर्मणा सच्चे साम्यवादी हैं परन्तु उनकी कविता किसी वाद विशेष से प्रभावित नहीं रही है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि जनतंत्र में किसी राजनीतिक दल या राजनैतिक नेता से समाज में क्रांति संभव नहीं है। राजनीति में सर्वत्र भ्रष्टाचार एवं स्वार्थ की दुर्गंध व्याप्त है। जन-कल्याण की भावना आडम्बर मात्र है। इसलिए महाकवि कहते हैं।

'मेरे देश में नेतृत्व हो किन्तु मेरा। मैं इसे राजनीतिज्ञों के हाथों में नहीं सौंप सकता।'' यह नव विचार बिन्दु है, जहाँ पर यूनान के सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने गणतंत्र नामक ग्रंथ लिखा। जिसमें उन्होंने राज्य-सत्ता के सूत्रों को महात्माओं, साधु-संतों के हाथों सौंपने की वकालत की है, दोनों का संगम हो जाता है।

समाज में क्रांति तो केवल कवि के द्वारा ही संभव है। इसीलिए कवि को स्वतंत्र होना चाहिए। उसे किसी राजनैतिक पार्टी से नहीं जुड़ना चाहिए। वह पार्टी चाहे जितनी भी उत्कृष्ट क्यों न हो। पार्टियों से जुड़ी संस्थाएँ जेबी होती है। सच्चा कवि किसी भी जेब में नहीं बैठता। कवि की प्रतिबद्धता किसी पार्टी से न होकर संपूर्ण मानव-जाति से होती है।

शेषेंद्र जी 'कवि-धर्म' पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं। 'कवि हमेशा मानव जाति से प्रतिबद्ध होकर सूर्य की भाँति देदीप्यमान और कर्मसाक्षी होता है। वह कदाचित सत्य कहने में संकोच नहीं करता। उसका परिणाम चाहे जो भी निकले, कितना भी भयानक क्यों न हो।''

कवि के जीवन में 'करुणा' का अत्यधिक महत्त्व है। 'करुणा' कवि का मूल धर्म है। 'करुणा' और 'कवि' दोनों भिन्न नहीं, अभिन्न है। इस तथ्य को शेषेंद्र जी उद्घाटित करते हैं- 'कवि का कवि-हृदय करुणा से, करुण रस से रूपायित होकर उदित होता है। यही कारण है कि हमारे यहाँ आदिकवि वाल्मीकि हुए। करुण कवि शोकमग्न होता है। शोक में से क्रोध का जन्म स्वाभाविक है। इसी क्रोध से वशीभूत होकर वह किरात को शाप देता है। वाल्मीकि की कविता प्रथम प्रोटेस्ट कविता है। जो कवि अधर्म के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद नहीं करता, वह कवि नहीं हो सकता है।''

ऐसा प्रतीत होता है कि शेषेंद्रजी के काव्य का मूलस्रोत आदिकवि वाल्मीकि की तरह करुण एवं आक्रोश रहा है। किरात द्वारा क्रौंच पक्षी की हत्या के प्रसंग में आदिकवि के हृदय में क्रौच पक्षी के प्रति जिस प्रकार करुणा और निर्दयी किरात के प्रति आक्रोश सहित शाप पैदा हो गया था, उसी प्रकार महाकवि शेषेंद्र के हृदय में अत्याचारी-शोषक दैत्यों के प्रति आक्रोश और धरतीपुत्र किसानों के प्रति करुणा की भावना पैदा हो गयी। फलतः भ्रष्टाचार-तंत्र को समूल नष्ट करने हेतु वे 'गुरिल्ला-सेना' का आह्वान करते हैं और दूसरी ओर करुणा से उत्प्रेरित होकर महाकाव्य ''मेरी धरती : मेरे लोग' की रचना करते हैं। गुरिल्ला के माध्यम से उन्होंने नक्सलवाद का समर्थन किया है। 'मेरी

धरती : मेरे लोग' के माध्यम से महाकवि अपनी मातृभूमि और उसके सपूत किसानों के हृदयों में विलीन हो जाते हैं।

''मैं धरती में लीन हो गया हूँ। वृक्ष और धान्य के समान।
जो इस धरती में समाहित है। मैं उगता हूँ और धान्य और,
फल की तरह इस देश में जीता हूँ। मैं इस देश को जोतने वाला किसान हूँ।
मेरा शरीर पृथ्वी है। जब ग्रीष्म में सूर्य क्रोधित होता है तो हम दोनों जलते हैं और पानी के लिए तरसते हैं।''

देश में से भ्रष्टांत्र का सफाया करने के लिए शेषेंद्र सशस्त्र क्रांति की वकालत करते हैं और फिर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :-

'' कोई उसे मार नहीं सकता/ इसकी मृत्यु/ जिस पर खड़ा होता शत्रु/ वह जीत नहीं है शत्रु की/ वह धारण करता है/ असंख्य वीरों का रूप/ उसका एक-एक रक्त-बिन्दु/ सींच रही है जिसे धरा/ फेंकेंगी बाहर/ एक-एक वीर वंश-वृक्ष को।'' ओ गुरिल्ला ओ गुरिल्ला ओ गुरिल्ला!

वास्तव में गुरिल्ला एक नया क्रांतिगीत, एक नया काव्य-दर्शन एवं एक नया सौंदर्य-शास्त्र है।

'मेरी धरतीः मेरे लोग' और 'गुरिल्ला' काव्य-रचना के बाद भारतीय साहित्य गगन में प्रभामण्डलमय व्यक्तित्व के साथ दिनकर की तरह शेषेंद्र जी चमक उठे। प्रादेशिक स्तर से ऊपर उठकर राष्ट्रीय कवि बन गये। इतना ही नहीं, राष्ट्र की सीमाओं को लांघ कर विश्वकवि बन गये। एक यूरोपीय समीक्षक का अभिमत है 'केवल टैगोर और गाँधी ही अपने देश की सीमाएँ पार करके विस्तृत विश्व में पहुँचकर वैश्विक नहीं हैं, बल्कि शेषेंद्र का महाकाव्य 'मेरी धरतीः मेरे लोग' इसका एक उदाहरण है।''

प्रसिद्ध समीक्षक डॉ.सरगु कृष्णमूर्ति के मतानुसार ''शेषेंद्र केवल कवि-सम्राट ही नहीं, बल्कि हृदयों के भी विजेता रस-सम्राट अंगार भी हैं। शेषेंद्र अपने युग के सूरज भी है। चाँद भी हैं, अंगार भी हैं, मंदिर भी हैं। वे कवि-कुलकेतु है और मन तथा वाणी के सेतु हैं।'' (राष्ट्रेंदु शेषेंद्र पृ-118)

यह उल्लेखनीय है कि शेषेंद्रजी की काव्य-साधना की तीन महानतम उपलब्धियाँ

(1) सन् 1994 में अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन कलकत्ता में राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता पुरस्कार के रूप में 'राष्ट्रेंदु' की उपाधि से अलंकृत होना।

(2) उसी वर्ष 1994 में केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कार से विभूषित होना।

(3) सन् 1999 में शेषेंद्र शर्मा को केन्द्रीय साहित्य अकादमी द्वारा फैलोशिप प्रदान होना।

महाकवि शेषेंद्र का सारा जीवन संघर्षमय रहा है। प्रतिकूल परिस्थितियों में उनके व्यक्तित्व को दूर्धर्ष के रूप में उबारा है। काल की चुनौतियों ने उन्हें 'अनल-कवि' बना दिया है। अपनी कविता-निर्माण की प्रक्रिया के संबंध में शेषेंद्र जी बताते हैं।

''जब भी मैं कहीं अत्याचार देखता हूँ, उसके विरुद्ध, खड़ा होना, संघर्ष करना और उससे तब तक लड़ना, जब तक विजय नहीं मिलती। पर मेरी विजय किसी अच्छी कविता के रूप में आती है। इसी उत्तेजना, संघर्षशक्ति और क्रोध के मिले-जुले रूप में मेरे अंतर में एक हल्का-सा स्पंदन होता है जो धीरे-धीरे एक बोझ बन जाता है, बढ़ता तूफान और फिर बवण्डर में परिवर्तित हो जाता है।''

'अग्रतारा'
विशेषांक 1999 प्रकाशक : (दक्षिण भारत हिन्दी
प्रतिष्ठान गांधी भवन, हैदराबाद - 500 001) से साभार

षोडशीः रामायण की तान्त्रिक व्याख्या

डॉ.कमलेशदत्त त्रिपाठी

भारतीय चिन्तन आदि स्रोत अनादि परम्परा से प्राप्त अपौरुषेय वेद हैं। वेदार्थ का विस्तार अथवा अपबृंहण रामायण एवं महाभारत तथा पुराणों के द्वारा हुआ है, यह स्वीकृत सिद्धान्त है- ''इतिहासपुराणाभ्यां वेदं उमुपबृंहयेत्''। वेद में निहित अर्थ का परिपूरण आगमतन्त्र में हुआ है। आगमों का एवं तन्त्रों का उपदेश स्वयं परमपुरुष भगवान शिव, ब्रह्मा, देवी आदि के रूप में अथवा परम ऋषियों ने किया है। 'परात्रिंशिका' की व्याख्या में अभिनव गुप्तपादाचार्य ने स्पष्ट रूप से आगमों के इस अर्थ को प्रतिपादित किया है कि स्वयं अद्वय परतत्त्व अपने को गुरु-शिष्य अथवा प्रश्नकर्ता और उन प्रश्नों के उत्तरदाता उपदेष्टा के रूप में प्रविभक्त कर तन्त्रों का अवतारण करता है। अतः 'वेद' अपौरुषेय एवं अनादि शब्दानुपूर्वी के रूप में प्राप्त हैं, तो आगम का कोई वक्ता और कोई श्रोता है, किन्तु दोनों ही हमारी अनादि परम्परा के स्रोत हैं। इसी अनादि एवं अविच्छिन्न परम्परा के उभय रूप का पुनः प्रथम अवतार भगवान वाल्मीकि की रचना- 'रामायण' है। महाकवि भवभूति ने इस रहस्य को उत्तररामचरित में रेखांकित किया है- ''आम्नापायादन्यत्र नूतनच्छन्दसामवतारः''।

रामायण जिस प्रकार 'वेदार्थ' का उपबृंहण है, उसी प्रकार आगामिक-तान्त्रिक रहस्यार्थ को कहने वाला ग्रन्थ भी है, किन्तु उसके रहस्यार्थ को कहने का अधिकार उन्हें ही है, जो सकल शास्त्र के सार को जानते हों, जिनकी भगवान राम में अविचल भक्ति हो, जो वाल्मीकि के हार्दतत्त्व से अभिज्ञ हों, शब्द एवं अर्थ के सार को भली तरह से समझते हों। पराशरसंहिता में प्रवक्तृत्व के अधिकार की यह शर्त कही गयी है। तेलुगु के महाकवि श्री शेषेन्द्र शर्मा इसी प्रकार के पारम्परिक विद्याओं को सम्प्रदाय से प्राप्त करने वाले महाकवि हैं। बिना सम्प्रदाय को जाने रामायण जैसे महान ग्रन्थों के रहस्य को प्रकाशित करने का अधिकार ही किसी को नहीं है। अतएव बादरायण सूत्रों के भाष्य लिखते समय भगवान शंकराचार्य ने कहा कि असम्प्रदायवित् तो मूर्ख की भांति उपेक्षणीय है। महाकवि शेषेन्द्र शर्मा वैदिक और आगमिक परमज्ञान में निष्णात और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में तो पारंगत हैं ही, एक महाकवि की 'रसपरिपूर्णकुम्भोच्छलवत्ता' तथा एक मनीषी आचार्य की नीरक्षीर विवेकिनी दृष्टि भी उन्हें सहज ही प्राप्त है। रामायण में निहित रहस्य को प्रकाशित करने के लिए उन्होंने 'षोडशीः रामायण की तान्त्रिक व्याख्या' नामक इस ग्रन्थ की रचना की है। उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि जिस प्रकार ''चत्वारि श्रृङ्गा त्रयो अस्य पादा, द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति''- इस वेद मन्त्र का शब्दार्थ मात्र कह देने से उसका गूढ़ अर्थ अवगत नहीं होता, उसी प्रकार रामायण जैसे ग्रंथों का वाच्य अर्थ मात्र जान लेने से उसका रहस्य भी नहीं समझा जा सकता। अतः रामायण के रहस्य को प्रकाशित करने के लिये अपेक्षित परम्परा-प्राप्त पद्धति के अनुसार ही उन्होंने अपनी कृति 'षोडशी' में विवेचन प्रस्तुत किया है। भारतीय विधाओं की पश्चिम से प्राप्त और अनुमोदित पद्धति की यही त्रुटि है कि विवेचित ग्रन्थ और उसके अर्थ-विवेचन के लिए प्रयुक्त की गयी पद्धति में एक अन्तराल रह जाता है। भारतीय मूलग्रन्थ को समझने के लिये एक प्रयुक्त पद्धति दूसरी परम्परा में आती है। अतः उस पद्धति के द्वारा मूलग्रन्थ के वास्तविक अर्थ तक पहुँचा ही नहीं जा सकता। 'षोडशीः रामायण की तान्त्रिक व्याख्या' नामक इस रचना में रामायण का गूढ़अर्थ समझने के लिये परम्परानुमोदित पद्धति का ही प्रयोग किया गया है, अतः उसके निगूढ़ अर्थ को भलीभाँति प्रकाशित किया जा

सकता है। आचार्य आनन्दवर्धन ने रामायण और महाभारत में ध्वनि को प्रतिष्ठित कहा है ध्वनि-सिद्धान्त किस प्रकार काव्य-व्यापार के परम प्रयोजन और फल 'रस' के अनुभव तक सहृदय को पहुँचाता है, इसे स्पष्ट करते हुए महाकवि शेषेन्द्र शर्मा ने हृदय-स्पर्शी नवीन प्रतिपादन किया है- ''ध्वनि निवृत्त्यात्मक और रीति प्रवृत्त्यात्मक है। ध्वनि में शब्द-व्यापार क्रमशः क्षीणता को प्राप्त करता है। शब्दाश्रित अर्थ भी क्रमशः क्षीण हो जाते हैं। तब तदतीत तार्तीयक स्थान पर ध्वनि गोचर होती है। तब 'रस' की सिद्धि होती है।'' इससे स्पष्ट है कि रामायण को वाचक शब्द तथा वाच्य अर्थ मात्र के अनुशीलन से नहीं समझा जा सकता, इसके लिए ध्वन्यर्थ तक जाना आवश्यक है। रामायण के इस ध्वनित और रहस्यभूत अर्थ पहले तो उपनिषद, फिर महाभारत एवं पुराण तथा तृतीय सोपान में परवर्ती काव्यों में निहित किया गया है। रामतापनीय उपनिषद्, सीतोपनिषद आदि उपनिषदों में रामायण का रहस्य अर्थ प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार आगमों एवं तन्त्रों में भी वही अर्थ विद्यमान है जो रामायण में निगूढ़ है, वह इन उपनिषदों, महाभारत, पुराण आदि में व्यक्त रूप से प्रतिपादित है। इस मान्यता पर आश्रित पद्धति का उपयोग करते हुए महाकवि शेषेन्द्र शर्मा ने रामायण के निगूढ़ अर्थों को अभिव्यक्त किया है। ग्रन्थ का 'षोडशी' नाम ही उसके द्वारा प्रकाश्य अर्थ का संकेत दे देता है। 'षोडशी' भगवती त्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप को और श्रीविद्या की साधना को संकेतित करने वाला शब्द है। यह परमार्थ रामायण में किस प्रकार निगूढ़ है, इस ग्रन्थ में विवेचित किया गया है। ऊपर उल्लिखित उपनिषदों में रामायण को मन्त्रशास्त्र के रूप में समझने की विधि प्राप्त होती है, तो महाभारत तथा अध्यात्म रामायण, देवी भागवत आदि में भगवान राम के और भगवती सीता के परमतात्त्विक स्वरूप को समझने की दृष्टि प्राप्त होती है। पुनः वाल्मीकि के प्रतिपादन-वैचित्र्य, शब्द-प्रयोग की विशिष्टता और रामायण में 'सुन्दरकाण्ड' के नाम के रहस्य आदि के विवेचन द्वारा रामायण में श्री विद्या के रहस्यार्थ की प्रतिष्ठा तथा कुण्डलिनी योग के संकेत को विवेचित किया गया है। महाकवि शेषेन्द्र शर्मा ने भगवान वाल्मीकि के शब्द-प्रयोगों और उपमा-विधान में छिपे हुए अर्थों का गहन शास्त्रीय विवेचन कर उनके तान्त्रिक अभिप्रायों तथा श्री विद्यापरक अर्थों को उद्घाटित किया है। रामायण की अनेक व्याख्याएँ उपलब्ध हैं, इनमें उसमें सन्निहित शास्त्रीय रहस्यों का विवेचन किया गया है, किन्तु तान्त्रिक रहस्यों को जिस प्रकार शर्मा जी ने उद्घाटित किया है, वह अनूठा है। यह दृष्टि सम्प्रदाय से प्राप्त होती है। शर्मा जी ने रामायण के सुन्दरकाण्ड का महत्त्व विशेष रूप में उद्घाटित किया है। सुन्दरकाण्ड में निहित कुण्डलिनी-योगपरक अर्थ और भगवती सीता की पराशक्ति त्रिपुरसुन्दरी से ऐक्य के रहस्य को गहन शास्त्रीय विवेचन द्वारा प्रकाशित किया गया है। इस प्रसंग में पग-पग पर श्री ललितासहस्रनाम, भास्करराय के उस पर भाष्य, वामकेश्वरतन्त्र आदि का प्रमाण देकर किया गया सुन्दरकाण्ड में सन्निहित आगमिक- तान्त्रिक अभिप्रायों का प्रकाशन न केवल गहरे शास्त्रीय अध्ययन की अपेक्षा करता है। बल्कि उसके लिये लम्बी साधना की आवश्यकता है। महाकवि शेषेन्द्र शर्मा इसी प्रकार की वैदुषी तथा साधना से सम्पन्न है। उनके विवेचन का सार यह है कि रामायण में समयाचार और कौलाचार-दोनों ही आचारों और मतों का प्रतिपादन है। रामायण को मन्त्रशास्त्र तथा श्री विद्यासाधना के रहस्यार्थ से समन्वित महाग्रन्थ के रूप में विद्वानों के सामने रखकर महाकवि शेषन्द्र शर्मा ने विद्वज्जतगत का उपकार किया है। मेरा विश्वास है कि महाकवि शेषेन्द्र शर्मा के तेलुगु भाषा में रची गयी इस कृति का तथा डॉ.जगदीश शर्मा द्वारा प्रस्तुत उसके इस हिन्दी अनुवाद का विद्वज्जतगत में समादर होगा। स

पूर्व निदेशक,
कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन
(स्व.शेषेन्द्र जी की कृति 'षोडशी' की प्रोचना से)

राष्ट्रेन्दु शेषेन्द्र : अशेष आयाम

विनीता सिंह

कविता, समीक्षा, काव्य-शास्त्र और व्यक्तिगत जीवन सभी में निरन्तर चर्चित रहे व्यक्तित्व का नाम है राष्ट्रेन्दु शेषेन्द्र। आंध्रप्रदेश में जन्मे शेषेन्द्र शर्मा एक स्वतन्त्र चेता चिन्तक होने के साथ-साथ राष्ट्रीयता और साम्यवाद को समर्पित है। अपनी प्रतिभा के बल पर इन्होंने काव्य को नवीन एवं प्राचीन दोनों ही शैलियों में समकालीन समीक्षकों से लोहा लिया और मनवाया है तो 'कविसेना' आन्दोलन चला कर पहली बार तमाम युवा रचनाकारों को एक मंच पर लाने का प्रयास किया है। इनकी 'कविसेना' मैनिफेस्टो काव्य-शास्त्र के नए आयाम उद्घाटित करती है और 'मेरी धरती-मेरे लोग' समीक्षकों चिन्तकों को महाकाव्य की नई परिभाषा लिखने को बाध्य करती है।

निश्चित ही अन्य कारणों के साथ-साथ ये भी कारण रहे होंगे जिन्होंने डॉ.विश्रान्त वसिष्ठ को शेषेन्द्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर 'राष्ट्रेन्दु शेषेन्द्रः अशेष आयाम'' जैसी कृति लिखने को प्रेरित किया जिसके बारे में डॉ.कमल किशोर गोयनका ने लिखा हैः ''मैं तो भाव विभोर हो उठा। इस व्यक्ति के जीवन से और उसके जीवन की भाषा में रचना करने पर। शेषेन्द्र अद्भुत व्यक्तित्व है- मनुष्य जाति में पैदा होने वाले। उनके व्यक्तित्व का एक पूरा चित्र उभरता है जो शब्दों में बाँधा नहीं जा सकता। अनुराग और कवि, दोनों रूपों में वे ऐसा स्फुरण करते हैं जो इधर वर्षों से नहीं हुआ। और डॉ.विश्रान्त वसिष्ठ की भाषा- वह इस व्यक्ति के ही स्तर की है। मैं जिस 'वशिष्ठ' को जानता था, यह कोई दूसरा ही वसिष्ठ है- एक सम्पूर्ण रचनाकार।'' आठ अध्यायों, उनतीस उप-अध्यायों और 141 पृष्ठों में कवि समक्षक डॉ.विश्रान्त वसिष्ठ ने चिन्तक, प्रशासक, प्रेमी कवि गुण्टूर शेषेन्द्र शर्मा के संपूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समेट लेने का असम्भव सा प्रयास किया है- अपनी कृति ''राष्ट्रेन्दु शेषेन्द्र : अशेष आयाम' में। एक सामान्य किसान किन्तु विद्वान परिवार में जन्मे शेषेन्द्र अपनी प्रशासकीय क्षमता के लिए हमेशा चर्चित रहे। प्रतिष्ठित सरकारी नौकरी पाकर भी इन्होंने अपना अध्ययन, चिन्तन जारी रखा और अपने भावों को अभिव्यक्ति दी।

तेरह काव्य कृतियों तथा कई अन्य समीक्षा, स्वतन्त्र लेख, नाट्य, कथा आदि विधाओं की पुस्तकों के प्रणेता शेषेन्द्र शर्मा की अधिकांश रचनाएँ हिन्दी में तो उपलब्ध हैं ही देश विदेश की अन्य अनेक भाषाओं में भी इनके अनुवाद हुए हैं। स

हैदराबाद से प्रकाशित 'पूर्ण कुंभ'
(अक्टू-1999 से साभार)

साक्षात्कार

काव्य मात्र स्वप्न नहीं और मात्र यथार्थ भी नहीं...

(कविवर शैषेन्द्र शर्मा से डॉ. रणवीर रांग्रा द्वारा लिया गया साक्षात्कार)

शैषेन्द्र शर्मा तेलुगु के ही नहीं, समूची मानवता के कवि हैं। उनका कथन है कि ''जब कभी मैंने आवाज उठायी तो अपने लिए नहीं, तेलुगु जगत् के सिर्फ छह करोड़ लोगों के लिए भी नहीं, बल्कि देश के करोड़ों लोगों के लिए सदा मेरी आवाज समर्पित रही है। जो बाधाएँ मैं अनुभव कर रहा हूँ, सारा देश भी वही बाधाएँ अनुभव कर रहा है और मेरी जाति भी- अर्थात् मानव जाति। इस कारण मेरी ज्वाला मेरे देश की जिह्वा है।'' उनकी काव्य-कृतियों की जो विशेषता सर्वाधिक आकृष्ट करती है वह है कविता के माध्यम से भारतीय जनमानस की गहराइयों में रचे-पचे शाश्वत चिन्तन-मनन की आधुनिक परिवेश में पूरी प्रासंगिकता के साथ सशक्त अभिव्यक्ति। यह भारतीय वाङ्मय के गहन-मनन-मन्थन का ही सुफल है। इसमें आगे बढ़कर उन्होंने विश्व-काव्य का भी गहरा अध्ययन किया है। शैषेन्द्र मानते हैं कि ज्ञान सिर्फ एक भाषा से बँधा नहीं रहता, किसी एक देश का नहीं होता, किसी एक काल का नहीं होता। वह सार्वभौम और सार्वकालिक होता है।

हिन्दी के यशस्वी कवि नरेश मेहता के इस विवेचन में सचाई है कि *''शैषेन्द्र शर्मा निर्वेद के नहीं, शक्ति के तथा तनाव के कवि हैं। कवि-रूप में वे सदाशिव भी हैं और त्रिमूर्ति भी। उनमें प्रकृति है, पर वह मात्र उपादान भाव में नहीं, बल्कि रम्य और पुरुष दोनों रूपों में है, इसलिए वह सक्रिय शक्ति लगती है। चीजों को देखने की उनकी आर्ष दृष्टि उन्हें अपने सर्वप्रिय कवि वाल्मीकि से तथा अन्य देशी-विदेशी क्लासिकीय कवियों से प्राप्त हुई है, इसलिए वे आद्यन्त क्लासिकीय कवि ही कहे जा सकते हैं। वे जानते हैं कि सृष्टि का मूलाधार मनुष्य है, जो निरन्तर उदात्त होने की प्रक्रिया में जयी भी होता है और पराजित भी। मनुष्य की यह अदम्य इच्छा ही सदा से क्लासिकीय काव्य का केन्द्रीय सरोकार रही है। शैषेन्द्र का सारा काव्य मनुष्य की त्रास-गाथा का महाकाव्य है।''*

उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं 'ऋतुघोष', 'शेष ज्योत्सना', 'गुरिल्ला', 'समुद्र ना पेरू', 'नेनू ना नैमिनी' 'ना राष्ट्रं, ना देशं, ना प्रजलु'। 'प्रेम लेखलु' और 'इन डिफेन्स ऑफ पीपल एण्ड पोएट्री' उनके पत्र-संग्रह हैं। 'रक्तरेखा' नाम से उनकी नोटबुक छपी है और समीक्षा-पुस्तकें हैं 'षोडशी', 'स्वर्णहंस', 'साहित्य-कौमुदी'। उन्होंने नाटक भी लिखे हैं और कहानियाँ भी। यदि महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा में न अटकें तो उनके प्रसिद्ध काव्य 'मेरी धरती : मेरे लोग' को आधुनिक महाकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है। इस काव्य में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की विभीषिका को, जनमानस के हृदयकारक मोहभंग को तथा उससे उत्पन्न कटुता-कुण्ठा को सशक्त वाणी मिली है : *''जब किसी ने पुकारा उषा, उषा, तो गाँव के तमाम लोग/देखने के लिए घरों से बाहर आ गए/तमाम गाँव के दरवाजे/बड़ी उत्सुकता से खुले/किन्तु उन्होंने पाया कि सूर्य के बजाय वहाँ सूर्यग्रहण है।''* 'दहकता सूरज' नामक काव्य-संग्रह में शैषेन्द्र की चुनी हुई स्फुट कविताएँ संकलित हैं। 'गोरिल्ला' उनकी लम्बी कविता है जिसमें उन्होंने मानव के आदिम पुरुषत्व को 'गोरिल्ला' की संज्ञा दी है और मनुष्य के स्वाभिमान की रक्षा के लिए उसका आह्वान किया है।

शैषेन्द्र जी के साथ साहित्य पर और विशेषकर उनके अपने काव्य पर चर्चा करने का अपना ही आनन्द है। वह एक प्रकार से सारस्वत अवगाहन होता है। हैदराबाद के विशाल और सुरुचि सम्पन्न ज्ञान बागमहल में उनसे मुलाकात हुई तो उनके काव्य पर भी बात चल निकली। मैंने पूछा, ''आपने एक पत्र में जोर देकर कहा है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से ही कवि नहीं होता। इसी प्रकार, क्या आप यह भी मानते हैं कि कविता अपने-आप प्रस्फुटित नहीं होती, बल्कि रची जाती है? कुछ लोगों का कहना है कि कविता रची नहीं जाती, वह कवि के भीतर से चश्मे के समान फूटती है। आपने तो अनेक कविताएँ रची हैं और महाकाव्य भी तथा वे लोकप्रिय भी हुए हैं। कविता की रचना-प्रक्रिया के बारे में अपने व्यक्तिगत अनुभव बताने की कृपा करें, अपनी किसी कविता के सन्दर्भ में।''

प्रश्न में गहरा गोता लगाते हुए शैषेन्द्र बोले, ''सिर्फ मेरे अनुभव ही नहीं, अगर हम दूसरे महान् कवियों का काव्य देखें, जैसे- वाल्मीकि या पाश्चात्य कवियों में होमर जैसे महान् कवियों के या आजकल के आधुनिक महाकवियों के काव्य को पढ़ें तो यह समझ में आता है कि वे लोग सिर्फ जन्मतः ही कवि नहीं थे। इन कवियों के बारे में सोचने से और मेरे अपने अनुभव से भी यह साबित हुआ है कि कवि बनने के लिए इंसान को कुछ विशिष्ट प्रयत्न करना पड़ता है। स्वभावतः उसमें कवित्वपन शायद होगा। 'जैनेटिक इन्हेरिटेंस' की वजह से या किसी और वजह से, किसी में कवित्पन स्वभावतः रह भी जाए तो भी यदि वह स्वयं कुछ प्रयत्न नहीं करता तो वह विकसित रूप से कवि नहीं बन सकता।

''अपने बारे में, मैं उस अर्थ में समझता हूँ कि मैं पहले कवि नहीं था। मेरे प्रारम्भ के दौर में, यानी सोलह साल की उम्र से पहले मैं देखूँ तो मुझे ऐसा महसूस होता है कि मै ंपहले कवि नहीं था, जिस अर्थ में अब 'कवि' शब्द के बारे में सोचता हूँ। फिर मैं कवि कब और कैसे बना? क्या वजह थी मेरे कवि बनने की? मैंने आत्मचिन्तन किया तो देखा कि मेरे कवि बनने के पीछे जाने-अनजाने कुछ कोशिश यानी मेरे परिवेश के बारे में और हर चीज सारे जगत् के बारे में बदल जाना यानी मेरे परिवेश के बारे में और हर चीज जो सृष्टि में एक पेड़ से लेकर, एक नक्षत्र से लेकर इंसान तक के बीच जितनी भी चीजें आती हैं, उन तमाम चीजों के बारे में मेरी दृष्टि बिल्कुल अलग और एकदम नयी हो जाती है। सब चीजें अजीब-सी दिखने लगती हैं। जब तक वह दृष्टि ऐसी अलग से नहीं बनेगी तब तक आप कवि नहीं बन सकेंगे। कवि कहने के लायक नहीं होंगे।

''फिर यह रूपान्तरण केसे होता है? किसी चीज में या दैनिक जीवन की किसी घटना में आप गहरे डूब जाते हैं। जब से आप, ऐसे डूब जाने लगते हैं तब से आप एक खास निगाह के साथ और एक विशिष्ट बोध के साथ जीवन में 'इन्वाल्व' हो जाते हैं, बिल्कुल तल्लीन हो जाते हैं। जब से तल्लीनता की यह प्रक्रिया आगे बढ़ती जाती है, आपमें एक परिवर्तन भी शुरू होने लगता है,

राष्ट्रेन्दु शेषेन्द्र पर समावर्तन का यह एकाग्र

समावर्तन के लिए यह अत्यन्त शुभ प्रसंग है कि तेलुगु के महाकवि और राष्ट्रेन्दु स्व.शेषेन्द्र शर्मा के कृतित्व और व्यक्तित्व से उसके पाठक रूबरू होने जा रहे हैं।

शेषेन्द्र जी के यशस्वी पुत्र श्री सात्यकि जी के माध्यम से ही उनके महाकाव्य 'मेरी धरती : मेरे लोग' का हिन्दी अनुवाद (अनुवादक श्री ओमप्रकाश निर्मल) का द्वितीय संस्करण (अक्टूबर 2018) प्राप्त हुआ था। निश्चित ही यह एक अद्वितीय काव्य ग्रंथ है जो चमत्कृत तो करता ही है, काव्य सर्जकों को आईना दिखाता है, प्रेरित करता है और दीप स्तम्भ बन दिशा दर्शन भी करता है।

चूंकि यह हिन्दी अनुवाद स्वयं शेषेन्द्र जी की देखरेख में पूर्ण हुआ था इसलिए यह कहा जाना चाहिए कि इसमें कविता का नया मुहावरा तैयार हुआ है। नयी भाषा, नया तेवर और चिरपरिचित प्रसंगों/दृश्यों/ मिथकों आदि को सर्वथा नवीन बिम्बों में अनुकूल शब्द दिये गये हैं। अपनी कई रचनाओं में शेषेन्द्र जी का निश्छल निःस्वार्थ राष्ट्रप्रेम उन्हें सही अर्थों में 'राष्ट्रेन्दु' निरुपित करता है यह अलग बात है कि उन्हें न तो ऐसी किसी उपाधि या पुरस्कार/सम्मान की अभिलाषा रही और अपेक्षा भी नहीं रही।

जहाँ तक उनकी काव्य सर्जना की बात है तो आत्मविश्वास और आत्माभिमान से भरी उनकी वाणी इस सत्य को उकेरती जाती है- *किंकियाता नहीं समुद्र/किसी के चरणों पर झुककर/ नहीं जानती तूफान की आवाज/जी हुजूरी/सलाम नहीं करता पर्वत किसी को झुककर/संभवतः मैं धूल हूँ एक मुट्ठीभर/पर जब मैं उठाता हूँ कलम/तो होता है मुझमें उतना ही अहम जितना कि एक देश के फहराते ध्वज में।* अपनी धरती और अपने लोगों से प्रेम करने वाले राष्ट्रकवि स्व.शेषेन्द्र जी के समूचे काव्य व्यक्तित्व को नमन करते हुए हम आभारी हैं सात्यकि जी के जिन्होंने कविश्रेष्ठ शेषेन्द्र जी के कृतित्व और व्यक्तित्व पर एकाग्र हेतु अपेक्षित सामग्री उपलब्ध करायी और हमारे पाठकों को लाभान्वित किया।

- श्रीराम दवे, संपादक

यानी आपकी जिन्दगी बुनियादी तौर पर बदल जाती है। इसका फल क्या होता है? आप हर एक छोटी-सी घटना से बिल्कुल तिलमिला जाते हैं। इतनी चोट लगती है आपके दिल और दिमाग पर कि आपकी नजर पूरी दुनिया को अलग दृष्टि से देखने लगती है। पेड़, पेड़ ही नहीं दिखता, पंछी, पंछी ही नहीं दिखता, इंसान इंसान ही नहीं दिखता, पेड़ में कुछ और दिखता है, पंछी में कुछ और दिखता है, इंसान भी जो आपके चर्मचक्षु के सामने है, इंसान नहीं दिखता है। उसके अन्दर की बात दिखने लगती है। वस्तु में एक और वस्तु, इंसान में एक और इंसान जब दिखने लगता है उस कमाल से, उस नयी नजर से ही कवि का जन्म शुरू होता है, और इसी प्रक्रिया में से उभरते हैं असंख्य बिम्ब अलंकार और प्रतीक। यही है काव्यतन्त्र।

''मिसाल के तौर पर एक फ्रेंच कवि को लें। भारती कवि की पंक्ति भी ले सकता हूँ, लेकिन आजकल रिवाज ऐसा है कि अगर आप एक पाश्चात्य कवि का उदाहरण देते हैं तो लोग खुश हो जाते हैं, लेकिन मैं समझता हूँ कि पाश्चात्य कवि हो या भारतीय कवि, बात एक ही है। इसलिए मैं एक फ्रेंच कवि शायद पोल राक्स की पंक्तियाँ लेता हूँ : A simple man, scattering himself through his flute, descends te adolescence of the hillsd. इतनी पंक्तियाँ ही बहुत हैं हमारे उदाहरण के लिए। अब इसे देखिए। एक आदमी एक पर्वत से नीचे उतर रहा है बस इतना ही देखते हैं आदमी के चर्मचक्षु, लेकिन जब एक कवि देखता है तो वह आदमी को ही नहीं, बल्कि 'सिम्पल' आदमी को देखता है। क्या है वह करिश्मा? चर्मचक्षु आदमी को देखते हैं, सिम्पल को नहीं देखते। इस सिम्पल को तो कवि ही देख सकता है, सिम्पल यानी सरलता जो एक गुण है और वह गुण अदृश्य ही रहता है। वह सिम्पल आदमी क्या कर रहा है? अपने अधरों से लगी हुई बाँसुरी के रन्ध्रों से वह अपने-आपको चारों तरफ बिखेर रहा है। इसकी यदि तफसील से व्याख्या करूँ तो आप जब ये पंक्तियाँ सुनेंगे तो आपके अन्दर जो एक आह्वान महसूस हो सकता है वह मिट सकता है।

''कविता की महिमा ही यही है। कविता से व्याख्या तक एक सर्जरी है। जैसा कि आप कविता को टेबल पर लिटाकर उसकी शल्यक्रिया करें, वैसी ही प्रकिया है यह कविता की व्याख्या। कविता सुनने से ही आस्वाद मिलता है। जैसा कि महान् अंग्रेजी कवि इलियट ने कहा- A poem communicates itself before it is understood तो कविता में जो एक करिश्मा है उसे शब्द से शब्द तोड़कर, निकालकर अलग करके समझने की जरूरत नहीं है, उसकी महिमा महसूस होती है एक मन्त्र की तरह। इसलिए बाँसुरी बजाने वाला अपने आपको बाँसुरी से बिखेर रहा है चारों ओर। उसका गाना जो उसकी अपनी आत्मकथा है उसे ही वह चारों ओर बिखेर रहा है। यह कला जो चारों ओर बिखेरी जा रही है वह उस आदमी का रूपान्तरण है। यहाँ आदमी बदल जाता है एक कलात्मक मधुर स्वर में।''

''एक प्रसिद्ध स्पेनिश कवि लोर्का ने कहा है कि कविता तो एक इमोशनल जर्नी है, जिसे खत्म करने के बाद कवि समाहित स्थिति में आ जाता है और उस यात्रा का रिकार्ड कविता है। स्पेनिश तो मैं नहीं जानता, लेकिन उसका अंग्रेजी अनुवाद जो मैंने पढ़ा है उसे दुहराने की कोशिश करता हूँ- Poetry is the emotional journey of the poet, but the poem is the record of it. रिकार्ड किया जाता है। यात्रा खत्म होने के बाद, कहीं बैठकर। कविता जब बनकर अन्तिम रूप में हमारे सामने आती है तो उसको हम दो हिस्सों में विभाजित कर सकते हैं। एक तो इमोशनल यात्रा है और दूसरा है कविता के रूप में जो हमारे सामने है वह रिकार्ड। वैसे तो हमारे पूर्वजों ने काव्यतत्त्व के बारे में गहरा चिन्तन किया है। पहले बहुत पुराने काव्यशास्त्री आचार्य दडी ने एक मर्म की बात कही है कि समाधि से कविता बनती है। ''अन्य धर्मस्ततोन्यत्र लोक सीमानुरोधिना सम्यगाधीयते यत्र समाधिःस्मृतोयथा'', अर्थात् एक वस्तु का धर्म अन्य वस्तु पर जब आरोपित होता है तो उस प्रक्रिया में से कविता निकलती है। एक हरा पेड़, उस पेड़ में एक कोयल कूक रही है और वह कूक बहुत मधुर है, पर कवि कोकिल को नहीं देख रहा है, सारे पेड़ को देख रहा है और उसे ऐसा लग रहा है कि पेड़ खुद गा रहा है। यहाँ एक वस्तु का धर्म दूसरी वस्तु पर आरोपित हो गया। इसको समाधि कहा है दण्डी ने, लेकिन समाधि को दस 'गुणों' में से एक गुण बनाकर उन्होंने अपने 'काव्यादर्श' जैसा बताया वह मेरी राय में गलत है, परन्तु उनके अनुसार समाधि दस गुणों में सबसे श्रेष्ठ है। वह कहते हैं 'तदेतत् काव्य सर्वस्वम् समाधिर्नाम यो गुणः कविसार्थः समग्रोपि तदेनमनुगच्छति।'

अन्य काव्यशास्त्र के आचार्यों ने उसके बाद समाधि पर बहुत चर्चा की है। वामन ने अपने काव्यालंकार सूत्र में इस बारे में बहुत अच्छी चर्चा की है।

समाधि ही अर्थदृष्टि है। इसके बारे में उन्होंने अलग चर्चा की है। अर्थदृष्टि क्या है'अर्थस्य दर्शनम् दृष्टिः समाधि कारणत्वात् समाधिः'। समाधि वह चीज है जिससे एक व्यक्ति 'कान्सैट्रेंटेड मूड' में चला जाता है। उस वक्त उसे एक अर्थदृष्टि मिल जाती हैं समाधि एक प्रयत्न है। प्रयत्न करके ही व्यक्ति समाधि में जाता है। अर्थात् एकाग्रता की स्थिति में जाने पर उसमें एक महान् दर्शन आता है। उस दर्शन के कारण सृष्टि में जितने भी चराचर पदार्थ हैं, वे तमाम वस्तुएँ उसके दर्शन के दायरे में आ जाती है। यही है कविता का प्रारम्भ। यही है समाधि जिसके बारे में भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों ने व्यापक चर्चा की है। उनके बाद के लोग भी इसका जिक्र किये बिना आगे नहीं बढ़े। यह बड़ी दिलचस्प बात है कि फ्रेंच रचयिता बालजाक ने इसी स्थिति को एाम्दह् न्र्ेग्दह कहा है और रूस के विख्यात कवि मायाकौव्सकी ने इसे The celebrated absent-mindeness of the poet कहा है।

''इसी सन्दर्भ में इस चिन्तन की एक और कड़ी बताता हूँ। रुद्रट काव्यशास्त्र के एक महान् आचार्य हैं। उनके 'काव्यालंकार' में एक श्लोक है- 'मनसि सुसमाधिनि विस्फुरणमनेकधामिधेयस्य अक्लिष्टानि पदानि च विभान्ति। यस्यां असौ शक्तिः' प्रतिभा की वजह से कविता उत्पन्न होती है। यदि उत्पन्न होती है तो वह प्रतिभा कैसे मिलती है- जन्मतः या प्रयत्नतः? इससे आपका प्रश्न बिल्कुल साफ हो गया। यहीं पर समाधि की भूमिका प्रत्यक्ष होती है। रुद्रट के श्लोक में यही समझाया गया है। समाधि में प्रविष्ट हो जाने पर उस मानव में सृष्टि की समस्त वस्तुएँ अनेक रूपान्तरों में दिखाई देने लगती हैं। जैसे पेड़, पेड़ ही नहीं दिखता। लेकिन एक गाता हुआ वाद्य दिखता है। यह करिश्मा समाधि से ही होता है। रुद्रट के अनुसार उस वक्त अभिव्यक्ति के लिए अक्लिष्ट यानी सरल और सुगम शब्द भी अपने-आप स्वयं उत्पन्न होकर निकलेंगे और यह भी कहना चाहूँगा कि समाधि की जो संकल्पना है वह प्राचीन महाकवियों के अनुभव से प्रमाणित हुई है जैसा कि रामायण में कहा गया है कि वाल्मीकि ने समाधि में जाकर रामायण लिखी है- ''ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्व योगमास्थितः'' (बालकाण्ड-तृतीय सर्ग 6ठा श्लोक) वैसे ही वेदव्यास ने भी समाधि में जाकर महाभारत लिखा है- 'प्रविश्य योगं ज्ञानेन सोपश्यत सर्वमन्ततः' (सम्भव पर्व) महान् कवियों का यह अनुभव सामने रखकर हमारे दण्डी, वामन आदि शास्त्रकार समाधि के सिद्धान्त पर पहुँचे हैं। इस विषय पर काव्य मीमांसा के रचयिता राजशेखर की अन्तिम बात देखिए- 'समाधिरान्तरः प्रयत्नः बाह्यसत्वाभ्यासः'।

इस गम्भीर विवेचन के दौरान हम इस बिन्दु पर पहुँचे कि समाधि की अवस्था जब प्राप्त हो जाती है तब कवि द्वारा कविता का जन्म होता है और समाधि की स्थिति अपने-आप नहीं, प्रयत्न से ही मिलती है। चर्चा को शास्त्रीयता से निकालने के प्रयास में मैंने कहा, ''समाधि के बारे में सुनते हैं कि जब साधना के द्वारा व्यक्ति समाधि की स्थिति में

पहुँच जाता है तब नियमित अभ्यास से एक स्थिति ऐसी भी आ जाती है कि समाधि उसके लिए सहज हो जाती है। जब कवि परिपक्वता की स्थिति को, वैशिष्ट्य की स्थिति को पहुँच जाता है, तब मैं समझता हूँ, एसे अनेक अवसर आने चाहिए, जब कविता अपने-आप, अनायास ही प्रस्फुटित होने लगे।''

शैषेन्द्र जी बोले, ''लेकिन मैं इस बात को ऐसा समझता हूँ कि कविता अनायास प्रस्फुटित नहीं होगी। लेकिन समाधि में कवि जब चाहे तब चला जा सकता है। पहले पहल समाधि में जाने के लिए तो प्रयत्न करना ही होगा। प्रयत्न करते-करते समाधि में जाना उसके लिए आसान हो जाता है। समाधि में पहुँचना तो कभी अनायास हो सकता है, लेकिन कविता जो समाधि से ही प्रस्फुटित होती है, हर समाधि में वह निकले ही, यह जरूरी नहीं। उसके लिए प्रयास अपेक्षित है, कविता जो सरल और निसर्ग रूप में सामने आती है, उसकी सिद्धि भी प्रयत्न साध्य ही होती है, यह सिद्ध होता है। अगर मर्मदृष्टि से गौर किया जाए, मुझे अक्सर यह महसूस होता है, जब भी कुछ लोग कहते हैं कि उनकी कविता आशुवेग से अनायास आ गयी है तो मुझे लगता है कि वे लोग छद्म बातें कह रहे हैं और वे साहित्य में बेईमान हैं।''

मैंने कहा, ''सिद्धान्त पर काफी चर्चा हो चुकी है। अब सीधे आपकी अपनी रचना-प्रक्रिया पर आते हैं। आपने कहा कि बचपन में तो आप कवि नहीं थे, साधना के द्वारा आप कवि बने। पर जब इस स्थिति में आप आ गये कि कविता आपके लिए सिद्ध हो गयी तो उस स्थिति में आपकी कुछ कविताएँ ऐसी भी निकली होंगी जिनके लिए आपको चेतन स्तर पर आयास नहीं करना पड़ा हो, पंक्ति दर पंक्ति वे भीतर से अपने-आप बाहर आ गयी हों। मैं चेतन की बात कर रहा हूँ। अवचेतन प्रक्रिया तो सायास होती नहीं।'' वे बोले, ''चेतन आयास जो आपने कहा वह बहुत बढ़िया अभिव्यक्ति है। मेरे ख्याल में चेतन आयास जीवन का आयास है। दैनन्दिन जीवन के तूफानों में जब कवि गुजरने लगता है तो उन तूफानों की इन्टेंसिटी बढ़ती जाती है। आहिस्ता-आहिस्ता जैसे कवि का व्यक्ति जीवन-यात्रा में आगे बढ़ता है, तूफानों में उसका तल्लीन हो जाना भी बढ़ता जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि कवि बिल्कुल बीमार हो जाता है। हजार किस्म की दैहिक और मानसिक परेशानियाँ होती हैं जिनकी वजह से कवि नित्यप्रति का जीवन यानी लौकिक जीवन जो हर इंसान को जीना पड़ता है, वह उसके लिए बोझिल और बेकार हो जाता है।उस जीवन को जीने के लिए ताकत कम हो जाती है। उन तूफानों में से, या उनकी अनुभूति से कविता बनती है।

जब मैंने अपनी काव्यकृति 'मेरी धरती, मेरे लोग' लिखी तो वह दस दिन में ही लिख डाली। लेकिन उन दस दिनों का जो छोटा-सा क्षण आँखों के सामने आता है उसके पीछे मेरी तमाम उम्र की परेशानियाँ व तूफान हैं जिनमें मैं गुजरा हूँ। यह मेरी सारी इमोशनल यात्रा है जिसे रिकार्ड करने में तो दस दिन लगे, पर

उसे भोगने में शायद मेरी पूरी उम्र लग गई।''

मैंने जोड़ा, ''हमारे यहाँ तो मानते हैं कि पूर्व जन्म के, बल्कि जन्म-जन्मान्तर के, अनुभव भी उसमें आ गये होंगे।'' सहमति व्यक्त करते हुए वे बोले, ''हाँ, ठीक है। पूरे उसमें सिमट आए होंगे। मुझे गालिब याद आते हैं। उन्होंने कहा है, *'आह को चाहिए एक उम्र असर होने तक।'* कितनी बड़ी बात है मेरे उस काव्य के पीछे। मैं गवर्नमेंट का मुलाजिम रहा हूँ। उस दिन मेरे ऊपर का जो अफसर था, उसके पास एक फाइल लेकर गया था। वह आदमी बिल्कुल सख्त, अनुशासित और क्रूर किस्म का आदमी था। उसके चेहरे पर भी यही लक्षण दिखते थे। अगर पर्फेक्ट से पर्फक्ट चीज बनाकर उसके सामने रखें तो भी उसमें कुछ-न-कुछ दोष निकालकर कुछ हरकतें करना उसकी आदत थी। मैं जब उसके कमरे में गया तो उसने एक प्रश्न पूछा और एकदम वह क्रोध में फूट पड़ा, जैसे एक ज्वालामुखी फूटता है और उसने वह फाइल फेंक दी। मैं तो बहुत स्वाभिमानी आदमी हूँ। जब उस किस्म का बर्ताव कोई दिखाता है तो चाहे वह राष्ट्रपति हो या सारी दुनिया का मालिक, मैं बिल्कुल परवाह नहीं करता। मुझे खुद मालूम नहीं मैं क्या करता! तो मैं फाइल वैसे ही छोड़कर कमरे से निकल पड़ा और सीधा घर आ गया। मेरी पत्नी मुझे देखकर बहुत दुःखी हुई। मैंने पूरी घटना उन्हें तफसील से सुनाई। मेरी तबीयत पूरी बिगड़ गई तो उन्होंने मुझसे छुट्टी की अर्जी लिखवाकर भिजवा दी और झट से विमान टिकट खरीदकर हम दोनों बैंगलोर के लिए चल दिये।

''जब अपने घर से एयरपोर्ट जाने के लिए मोटरगाड़ी में हम बैठे तब मैं उस घटना की वजह से स्वस्थ नहीं था, बीमार आदमी की तरह बैठा हुआ था। सारी दुनिया मुझे दुनिया नहीं दिख रही थी, बिल्कुल एक अलग प्रकार का दृश्य था। जिस समाधि की चर्चा मैंने मैंने पहले आपसे की अब उसी की बात करता हूँ। उस समय मुझे सब कुछ बिल्कुल अजीब दिख रहा था। जैसे-तैसे गाड़ी रास्ते पर दौड़ रही थी, मुझे पेड़, पेड़ नहीं दिख रहा था, इंसान, इंसान नहीं दिख रहा था। रास्ते अलग दिख रहे थे। पूरा दृश्य ही बदल गया था। सचिवालय के बाजू से जब हमारी गाड़ी निकल रही थी, उस वक्त उसे देखकर एक ज्वालामुखी के समान उबलते हुए मैंने कहा, *''मेरा हाथ उठता है उस विशाल भवन को अपने एक मुष्टयाघात से खण्ड-खण्ड करने के लिए''* वह इतनी सशक्त पंक्ति थी कि मेरी पत्नी ने कहा अरे आप इसे लिख लीजिए। मोटर आगे बढ़ी तो एक बड़ा झाड़ दिखा। वह अप्रैल का महीना था और वह झाड़ फूलों से भरा हुआ था। जब मैंने फूलों को देखा तो मुझे ऐसी नफरत हुई कि मानो वे गलीज, गन्दी नागरिकता की हवा में साँस ले रहे हैं। कुछ आगे जाने पर मेरी पत्नी ने कहा, 'आप फूलों को देखकर इतनी नफरत क्यों करते हैं?' मैंने कहा, *''मुझे कविता नहीं चाहिए, मुझे हजारों भूकम्प से भरा बम चाहिए।''* ऐसे ये पंक्तियाँ बनती गईं और पत्नी के इसरार पर इन पंक्तियों को मैं कागज पर लिखता गया और जब मैं हवाई जहाज में बैठ गया और वह उड़ने लगा तो एकदम मुझे राहत, एक सुकून आ गया। इस विष-समान हवा को हैदराबाद में पीछे छोड़कर हवाई जहाज में उड़ जाने से मेरी आत्मा के फेफड़ों को इतना आराम मिल रहा था कि मैं बयान नहीं कर सकता। बैंगलोर पहुँचते ही मैं रात में सो गया और सुबह उठते ही सामने विराट सागर जैसा विशाल आसमान था और दूर की पहाड़ियों में से सूरज निकल रहा था। वह इतना प्रशान्त दृश्य था कि एकदम अचानक एक पंक्ति फूटी : *'उठता है प्रत्यूष से एक हाथ /काल के श्रमिक का हाथ / वह बढ़ता है और जनजीवन के क्षेत्रों के शोणित और स्वेद में उतरकर/फिर उठता है फिर वह दिगन्तों तक सिन्दूर छिड़कता जाता है।'* उस पंक्ति को मैंने 'मेरी धरती मेरे लोग' की शीर्षक पंक्ति बनाकर रखा है। मेरी देखरेख में इसका जो हिन्दी-अनुवाद आया है, ओमप्रकाश निर्मल द्वारा, उसके बारे में खुद कवि के नाते एक वक्तव्य दे रहा हूँ कि उस हिन्दी-अनुवाद को पढ़कर यही समझना चाहिए कि वह मूल ग्रन्थ पढ़ रहा है। उसमें कोई तब्दीली नहीं है। बिम्ब, प्रतीक, भाषा का शब्द पक्ष, मुहावरा सभी कुछ हिन्दी में आ गया है। मैंने खुद अनुवादक के साथ बैठकर हर पंक्ति का देख-परख कर, अनुवाद करवाया है।'' इसी क्रम में मैंने पूछा, ''अपनी पुस्तक 'इन डिफेन्स ऑफ पीपल एण्ड पोएट्री' में आपने एक जगह कविता के जन्म की उपमा बीज से पौधे के जन्म से दी है। कविता के जन्म की उपमा बच्चे के जन्म से तथा अभिव्यक्ति के लिए कवि की छटपटाहट की प्रसव-वेदना से उपमा देना क्या अधिक संगत न होगा?''

शैषेन्द्र जी बोले, ''संगत होगा, मैं मानता हूँ, लेकिन उससे भी सुसंगत हो सकता है जो मैंने कहा है। कवि एक बीज है। बीज से पौधा बनने के लिए बहुत खाद की जरूरत होती है, मिट्टी की जरूरत होती है और वायुमण्डल की जरूरत होती है। जिस ध्रती पर एक बीज बोया गया, उस धरती का गुण उसमें से निकलता हैं यह भी एक कमाल है। ये सारी चीजें हैं एक बीज के पीछे जिनसे वह पौधा बनता है। वैसे ही कवि का समाज, उसके समकालीन सन्दर्भ, देश के ऐतिहासिक सन्दर्भ, सामाजिक, राजकीय और आर्थिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसकी कविता को रूपायित करते हैं।''

उनके काव्य 'शेष ज्योत्सना' की एक कविता का हवाला देते हुए मैंने पूछा, 'ँदहब द हुगू' में आपने कहा है कि 'Life from which illusion withdraws/ is akin to lotus pond deserted by rain/eyes/from which dreams have flown away.' इसी प्रकार क्या आप यह मानते हैं कि काव्य में भी स्वप्निलता काम्य है, कोरा यथार्थ नहीं।''

प्रश्न का स्वागत करते हुए शैषेन्द्र जी बोले, ''यह बहुत सुन्दर प्रश्न है। इसमें काव्य की नजाकत भी शामिल है। काव्य मात्र स्वप्न नहीं है और मात्र यथार्थ भी नहीं। जब इंसान स्वप्निलता और यथार्थ के द्वन्द्व में से गुजरता है उस वक्त काव्य का रूप उभरता है। काव्य एक सन्धिकाल का फल है। कवि सदैव बेहतर और उन्नत दुनिया के लिए स्वप्न देखता है। दुनिया में जो भी वास्तविक स्थिति मौजूद है, उससे वह सन्तुष्ट नहीं होता, उससे ऊपर उठना चाहता है। उससे बेहतर कैसे बने, ऐसे वह ख्वाब देखता रहता है। अपने लिए ही नहीं, दुनिया के लिए भी। इसी वजह से उसमें एक संघर्ष पैदा होता है। इस प्रकार एक ओर स्वप्न है तो दूसरी ओर वास्तविकता है। इन दोनों की टकराहट से जो चिनगारी निकलती है, वही काव्य है एक तरह से।''

चर्चा को शैषेन्द्र जी की प्रसिद्ध काव्यकृति 'मेरी धरती मेरे लोग' पर लाते हुए मैंने कहा, ''वह मानव-मन की अखण्ड अन्तश्चेतना का काव्य है। इस अप्रतिम काव्य में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की विभीषिका का जन-मानस के हृदयविदारक मोहभंग तथा उससे उत्पन्न कटुता-कुण्ठा के वातावरण को सशक्त वाणी मिली है : *'जब किसी ने पुकारा उषा, उषा/तो गाँव के तमाम लोग/देखने के लिए घरों से बाहर आ गए।... तमाम गाँव के दरवाजे/बड़ी उत्सुकता से खुले किन्तु उन्होंने पाया कि सूर्य के बजाय वहाँ सूर्यग्रहण है।' बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति है। आगे लिखा है- 'यहाँ अब कोई आशा नहीं है/जीवन यहाँ एक सड़े हुए फल की तरह शिथिल है/इस विषवृक्ष की कलम कहीं भी लगाने से/स्वादिष्ट फल नहीं देगी/इसे निर्मूल करना ही हमारा एकमात्र कर्त्तव्य है।'* इसमें आपने जिस सम्पूर्ण क्रान्ति का ही नहीं बल्कि विस्फोटक क्रान्ति का आह्वान किया है, वह बौद्धिकता या अकर्मण्यता के स्तर पर सम्भव नहीं है, यह आपने भी माना है। तो फिर यह क्रान्ति कैसे आएगी, उसे कौन लाएगा और उसमें लेखक की भूमिका क्या होगी?''

शैषेन्द्र जी बोले, ''मैं खुद के अनुभव से आपको बताता हूँ। पुस्तक की क्या भूमिका रही समाज में, पुस्तक ने व्यक्ति को बदला है या नहीं? इस विषय में भारत में और पश्चिम में भी खूब चर्चा हुई है। मैं समझता हूँ कि यदि इंसान के इतिहास को शुरू से हम गौर से पढ़ें तो यह साबित होता है कि पुस्तक ही इंसान को बदलती आई है। अगर पुस्तक समाज में नहीं होती तो इंसान शुरू में जैसा था वैसे का वैसा ही रह जाता गुफाओं में। लेकिन आहिस्ता-आहिस्ता इंसान में जो पशुत्व है, उसे पुस्तक ही निकाल लाई है पालिश करते-करते। काव्य पढ़ते समय पाठक की चित्तवृत्ति काव्य में वर्णित विषयों से आकर्षित होकर, संवाद पाकर काव्य के प्रति अभिमुख हो जाती है। 'काव्ये हृदयसंवादवशात् तावत् निमग्नाकारिका भवति चित्तवृत्तिः' (अभिनवगुप्त) इस प्रकार पुस्तक पाठक को बदल देती है। इस बदलाव में समय लगता है।''

अगला प्रश्न मैंने रचना-प्रक्रिया के दौरान आए मानसिक बदलाव को लेकर किया, ''क्या आप अपनी किसी ऐसी कविता अथवा काव्य का नाम बता सकते हैं जिसे रचने के बाद आप वही नहीं रहे हों जो उसे रचने से पहले थे, यानी जिसकी रचना के दौरान आपके अपने भीतर कोई उल्लेखनीय परिवर्तन आया हो? कवि ही अपनी कविताओं को नहीं रचता, उसकी रचनाएँ भी निरन्तर उसे रचती रहती है और उसे पता तक नहीं चलता।'' वे बोले, ''यह बहुत मर्म की बात है काव्य-रचना में। काव्य कवि को बदलता है या कवि काव्य को बदलता है, यह सोचने की बात है। लेकिन मैं अपनी अनुभूति के आधार पर कहता हूँ कि कवि खुद बदल जाता है रचना के वक्त। इसका मतलब यह नहीं कि रचना उसको बदलती है। उसके जीवन के तूफान या तत्कालीन गहरी अनुभूतियाँ जो उस समय उस पर हावी हो रही हैं, उनकी वजह से वह बदल

जाता है। वह तबदीली भी मामूली तबदीली नहीं होती। वह बीमार हो जाता है। कविता जब खत्म होती है उस वक्त इतना बीमारी से गुजरा महसूस करता है कि वह मरने के बराबर है। इस अर्थ में यह कहना सही है कि कवि हर एक रचना के जन्म के बाद मरता है और फिर पुनर्जन्म लेता है सूर्योदय की तरह...। यह क्रम चलता रहता है।'' चर्चा को समेटते हुए मैंने अन्तिम प्रश्न किया, ''आजकल साहित्यिक पुरस्कारों की एक होड़-सी लगी हुई है। आपके विचार से क्या इनसे सच्ची साहित्य-सर्जना को प्रोत्साहन मिलता है या साहित्येतर प्रतिस्पर्धा को ही प्रश्रय मिलता है?'' इन पुरस्कारों के प्रति शैषेन्द्र जी की प्रतिक्रया उग्र थी, वे बोले, ''साहित्य में पुरस्कार लेखक की आवाज बन्द करने के लिये दिये जाते हैं, यह मैं नहीं समझता। वैसा वक्तव्य लेखक को एक मासूम लेखक के रूप में पेश करता है, लेकिन लेखक के प्रयत्न या प्रयास के बिना कोई पुरस्कार अपने-आप नहीं मिलता। अब यह इतनी खुली बात है कि लेखकों की कतार बहुत लम्बी हो गई है पुरस्कार के दरवाजों पर। उसमें राजनीतिक नेताओं के अनुग्रह की सख्त जरूरत होती है और सही लेखक के लिए इस व्यूह में प्रविष्ट होना बड़ी शर्मनाम बात है। पुरस्कार आज ऐसा एक छद्म व्यूह है जिसके एक तरफ करीब के कक्ष में राजकीय नेतृत्व है तो दूसरे कक्ष में प्रेस और पब्लिसिटी है और उसके बाद भगवान जाने कौन-कौन हैं, पता ही नहीं लगता। जैसे नौकरियाँ दी जाती हैं, वैसे ही ये पुरस्कार जाति, प्रान्त, भाषा आदि किस्म-किस्म के असाहित्यिक कारणों पर दिए जाते हैं। रचना का गुण इस दंगे-फिसाद में कहीं का नहीं रहता, लेकिन सच्चा कवि पुरस्कार को नजर में रखकर नहीं लिखता, वह अपने देश के लिए लिखता है अपने लोगों के लिए लिखता है। स

पुस्तक 'भारतीय साहित्यकारों से साक्षात्कार'
(प्रकाशक, ज्ञानपीठ) से साभार

सुधिजनों की दृष्टि में शेषेन्द्र जी का कृतित्व

श्री शेषेन्द्र शर्मा, निर्वेद के नहीं, शक्ति के तथा तनाव के कवि हैं। कवि रूप में सदाशिव भी हैं तथा रूद्रमूर्ति भी। शेषेन्द्र में प्रकृति है पर वह मात्र उपादान भाव में नहीं बल्कि रम्य और पुरुष दोनों रूपों में हैं इसलिए वह सक्रिय शक्ति लगती है। चीजों को देखने की आर्ष-दृष्टि उन्हें अपने सर्वप्रिय कवि वाल्मीकि से तथा अन्य देशी-विदेशी क्लासिकीय कवियों से प्राप्त हुई है, इसलिए वे आद्यन्त क्लासिकीय कवि ही कहे जा सकते हैं। वे जानते हैं कि सृष्टि का मूलाधार मनुष्य हैं, जो निरन्तर उदात्त होने की प्रक्रिया में जयी भी होता है तो पराजित भी। मनुष्य की यह अदम्य इच्छा ही सदा से क्लासिकीय काव्य का केन्द्रीय सरोकार रही है। शेषेन्द्र का सारा काव्य, मनुष्य की त्रास-गाथा का महाकाव्य है।

- नरेश मेहता
वरिष्ठ कवि

शेषेन्द्र शर्मा समसामयिक तेलुगु काव्य-मन्दिर के कदाचित शीर्षस्थ कंचन-कलश हैं। उनकी प्रतिभा उस दहकते सूरज की भांति है जो अपनी किरणों की प्रखरता से धरती और आकाश, स्थूल और सूक्ष्म तथा जड़ और चेतन को एक साथ ही एकतान कर भार करता प्रदान करता है। अपने चतुर्दिक परिव्यास, परिवेशों, आवेष्ठनों और संदर्भों के विराट सागर में शेषेन्द्र, कुशल गोताखोरों की भाँति, अतलता तक डुबकी लगाकर मौलिक उपमानों और मोहक बिम्बों के साथ अपने अभिनव भावों-अनुभावों की रत्न-राशियों को एक विलक्षण मूर्त रूप प्रदान कर देते हैं। स्वभावतः युगीन चेतनाओं से संवलित अपनी कविताओं में उन्होंने न केवल भावों की उदात्तता व्यक्त की है बल्कि उनमें कला की सूक्ष्माति सूक्ष्म भंगिमाएँ भी उत्पन्न कर दी है। उनका संपूर्ण काव्य-जगत उनकी गहन चिंतन शीलता, तरल भावुकता, अभिनय कल्पनाप्रवणता तथा आधुनिक संवेदनशीलता की मीनार हो गया है। अपने परिवेश के प्रति निरन्तर जागरुकता तथा सबल सामाजिक चेतना, ये ऐसे तत्त्व हैं जो उनके काव्य-पाठकों को उनके युग से जोड़ने में सहज सक्षम सिद्ध होते हैं।

- केदारनाथ लाभ
राजेन्द्र कालेज, छपरा (बिहार)

शेषेन्द्र शर्मा का 'मेरी धरतीः मेरे लोग' हर मायने में एक आधुनिक और प्रगतिशील महाकाव्य है : महाकाव्य और महत काव्य भी। समकालीन परिवेश में आधुनिकता की प्रगतिशील धारणा को चरितार्थ करने वाला यह काव्य, माटी के संस्कारों को चिरन्तन काव्य की उदात्त भूमिका देता है। समकालीन भारतीय काव्यचेष्टा और रचना-अनुभव की एक सार्थक दिशा और अभिव्यक्ति, यह महाकाव्य है। विद्रोह और रचनात्मकता, यथार्थपरकता और बिम्बात्मकता और महाप्राणता का जैसा कल्पनाशील संयोजन इसमें हुआ है, उसने अनायास ही काव्य की भव्य शैली का निर्माण किया है और अर्नाल्ड की यह पंक्ति चरितार्थ हो उठती है- ''अग्राण्ड स्टाइल अराइजेज इन पोयट्री व्हेन अ नोबुल नेचर पोइटिकली गिफ्टेड, ट्रीट्स विद सिम्प्लीसिटी आर सीवियरिटी अ सीरियस सब्जेक्ट।''

रचना के धरातल पर जिस काव्य प्रतिभा और रचना मनीषा का सबूत यह महाकाव्य है, चिन्तन के धरातल पर ''द आर्क ऑफ ब्ल'' उसी का एक निजी दस्तावेज है। कवियों के अन्तःलोक की रचना-यात्रा कराने वाले कई दस्तावेज मैंने पढ़े हैं, लेकिन इतनी निजता और रचना-अनुभव का ऐसा पारदर्शी संसार, जो आपको भीतर-बाहर से डिस्टर्ब और कनवंस करे, जिसमें कई बार आपको अपने ही अनुभवों की अन्तर्यामी रंगच्छटाएँ उजागर होती जान पड़ें, मुझे कम ही मिला है। इसे पढ़कर निस्संकोच कहा जा सकता है कि जितनी उदात्त इनकी रचना मनीषा है, उतनी ही उत्तेजक इन की चिन्तन-धारा है।

-धनंजय वर्मा
वरिष्ठ साहित्यकार, समालोचक, भोपाल

शेषेन्द्र शर्मा के अवधान में मनुष्य का सारा विकास, उसका इतिहास, अणु से लेकर महाब्रह्माण्ड तक सारा सृष्टि-रहस्य, मानव सभ्यताओं का उत्थान और पतन--यह सब चर्खी की तरह स्वतः घूमता है और 'मेरी धरतीः मेरे लोग' काव्य में मुख्यतः बाह्य वास्तविकता अथवा जनसाधारण की दुरावस्था पर ही ध्यान रखते हुए भी कवि-मानस में प्रकृति के पवित्र और उदात्त रूप उभरते हैं, अन्य देशों और व्यवस्थाओं एवं सभ्यताओं के तुलनात्मक परिदृश्य उदित होते हैं। अतएव विरोधों के सामंजस्य की रचना-पद्धति इस दीर्घ कविता में पद-पद पर चटख रंगों में चमक उठती है।

- विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

आभा बोधिसत्व की कविताएँ

"आभा बोधिसत्व की कविताएँ थिर तापमान की कविताएँ हैं। उनके भीतर स्त्री और प्रेम को लेकर एक बेचैनी, एक उद्विग्नता है जिसे वे सहज-सरल भाव से अभिव्यक्त करती हैं। यह सहजता कई बार काव्याभ्यास भी लगती है लेकिन एक स्त्री के भीतर की खलबली और प्रश्नाकुलता लगातार उनकी कविता में बनी रहती है जिसे नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। समाज की छोटी-छोटी घटनाओं का बारीक प्रेक्षण उनकी कविताओं में छितरा पड़ा है। वे चीजों को अपने नजरिये से देखती-परखती हैं और फिर उसे मनोभावों में ढालती हैं। इस यात्रा में अपने भीतर छाए कुहासे को कभी वे बेचैनी, कभी क्षोभ तो कभी विद्रोह के रूप में व्यक्त करती हैं-' कहा देवी ने अभी/ कि निराला के बाद किसी ने नहीं लिखी उनकी प्रार्थना/ और जब से नास्तिक कवि चलन में आए हैं/ कोई ज्ञान की देवी ही नहीं मानता उन्हें' (वर्षो से जागी मैं)। यहाँ सरस्वती के नदी के रूप में विलुप्त होने का दुःख भी है और परम्परा के उपहास पर एक 'विट' भी। स्त्री का दुःख, समाज में उसकी उपेक्षा और पितृसत्तात्मक समाज द्वारा उसका लगातार शोषण आभा की कविताओं में बार-बार आते हैं। कई बार तो उनका क्षुब्ध मन औरत को ही तमाम समस्याओं की जड़ मान लेने की प्रवृत्ति से मानो रो उठता है (मुजरिम)। हर जगह, हर पल स्त्री के विक्टिमाइजेशन की यह व्यथा उस समय चरम पर पहुँच जाती है जब वे 'सीता नहीं मैं' जैसी विद्रोही कविता लिखती हैं। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की विसंगत स्थिति को वे कुछ इस तरह अभिव्यक्त करती हैं-' पुरुष वर्चस्व की छाया में/ स्त्रीलिंग शब्दो को पुल्लिंग वाक्य में बदलते/ क्या मैं वाकई खुश हूँ '' (चाह)। 'पहचानो' जैसी छोटी कविता में वे स्त्री की बेबसी और उसके दुर्व्यवहार को बेबाकी से व्यक्त करती हैं-' स्त्री केवल इतना ही बोलती है/ पहले स्त्री से बोलना सीखो।' जाहिर है यह कटाक्ष भरी सीख इस समय इस समाज की वाकई जरूरत है। स्त्री वेदना के साथ प्रेम भी आभा बोधिसत्व की कविताओं का प्रमुख विषय है। यहाँ समर्पण की परस्पर भावना भी है और प्रेम की उदात्तता भी। 'कितनी पुरानी साध' की ये पंक्तियाँ देखें-' रोने के बाद भी बहो नहीं तुम धार बन कर / रहो एक पतली चमकती रेख की तरह।' 'यहाँ' कविता की चरम पंक्ति ' गंगा मेरी सुनती है' में लोककल्याण की अदम्य इच्छा है। 'सम्बन्ध' कविता में दिया-बाती की मद्धम रोशनी में किसी खत या दरवाजे की नेमप्लेट पढ़लेने का मार्मिक आग्रह है। 'सीता नहीं मैं' जैसी अपेक्षाकृत लम्बी कविता में दमित स्त्री का खुला विद्रोह है। यहाँ मर्यादा पुरूषोत्तम माने जाने वाले राम से तीखे सवाल हैं। मिथकों का साहित्य में प्रयोग तभी सार्थक है जब वे अद्यतन जगत में भी प्रासंगिक हों। इस तरह कवयित्री के ये सवाल समूची स्त्री जाति के सवाल हो जाते हैं-' तुम कर न सके मेरी रक्षा/ फिर क्यों हो मेरी अग्नि परीक्षा'' कविता में स्त्री-पुरुष के परस्पर संबंधों, विश्वास और आस्था को भी रेखांकित किया गया है-'जितना झुलसी नहीं मैं/ अग्नि परीक्षा की आँच से/ उससे ज्यादा राख हुई/ अग्नि परीक्षा की तुम्हारी इच्छा से।' आभा बोधिसत्व स्त्री वेदना और प्रेम को सहज-सरल तरीके से व्यक्त करने वाली कवयित्री हैं। वे परम्परा के नाम पर पुरूष वर्चस्वी समाज से सवाल करने के तमाम खतरे उठाती हैं क्योंकि वे जानती हैं कि 'चुप रहने से मर जाते हैं सपने।' "

निरंजन श्रोत्रिय

हम ही हम

हम ही सफेद, हम ही लाल
हम ही सोम, हम ही मंगल
बाकी सब दंगल
बाकी सब जंगल
हम ही रात, हम ही दिन
बाकी सब उछिन्न...
हम ही प्रेम, हम ही रीत
हम ही काम, हम ही धाम
बाकी सब बेकाम।

वर्षो से जागी मैं

मेरी कौन है देवी सरस्वती
जब-तब आ जाती है बतियाने
कुछ बताने
कहा देवी ने अभी
कि निराला के बाद
किसी ने नहीं लिखी उनकी प्रार्थना
और जब से नास्तिक कवि चलन में आए हैं
कोई ज्ञान की देवी ही नहीं मानता उन्हें
कहा यह भी
कि लोग ज्ञान उनसे लेते हैं
और ध्यान लक्ष्मी का रखते हैं
नाम के आगे लगाते हैं 'श्री'
जो है पर्याय लक्ष्मी का ही
देवी के कपड़े मैले और वीणा के तार टूटे
जिस पद्म पर बैठी वो हो चला था बदरंग
दुखी इस बात से कि
नदी के रूप में तो हो चुकी हूँ विलुप्त
मर जाऊँगी ज्ञान की देवी के रूप में भी
वीणा छोड़ चली गई सरस्वती...
राह तकती उनकी मैं वर्षो से जागती।

मुजरिम

यह सच है
कि मैंने कोई जुर्म नहीं किया
फिर भी एक मुजरिम हूँ
साबित करने के लिए मुझे मुजरिम
जरूरत नहीं न्याय के नाटक की
हर होनी हर अनहोनी का कारण मैं
औरत हूँ न!
जननी सारे पापों की।
चुप! अदालत जारी है।

चाह

खुद को खुश रखने की कोशिश में लगी हूँ
स्त्री होकर भी कभी-कभी
बोलती हूँ--
'मैं घर आ गया हूँ'
'मैं खाना खाने जा रहा हूँ'
'मैं नाराज हो जाऊँगा'
पुरूष वर्चस्व की छाया में
स्त्रीलिंग शब्दों को पुल्लिंग वाक्य में बदलते
क्या मैं वाकई खुश हूँ ?

पहचानो

स्त्री हँसती नहीं
स्त्री रोती नहीं
स्त्री बोलती नहीं
और इस पर जब कोई बोलता है
'बोलो कुछ तो हाँ या ना!'

स्त्री केवल इतना ही बोलती है--
पहले स्त्री से बोलना सीखो...।

कितनी पुरानी साध

एक पुरानी इच्छा
तुम्हें काजल बना कर
रोज थोड़ा आँखों में आंज कर
थोड़ा कजरौटे में बचाए रखना...

दिये की लौ से
कपूर की लपट से सिखाया था माँ ने
काजल बनाना
जैसे मन पर छाए हो तुम
उसी तरह रहो मेरी नजर के पीछे
रोने के बाद भी बहो नहीं तुम धार बन कर
रहो एक पतली चमकती रेख की तरह

इन धुँधली होती आँखों में बसे रहो
जैसे रहती हैं इच्छाएँ मन में।

यहाँ

यहाँ गंगा किनारे मेरा घर है
घर की परछाई तैरती है नदी में
नदी में रहता है घर
नहाती हूँ गंगा में सुबह-शाम
माँगती हूँ मनौती माँ से
हम-तुम एक ही खेत में
उगें दूब बन कर

बताना तुम्हारी भी कोई इच्छा अधूरी
माँग लूँगी मैया से मनौती
गंगा मेरी सुनती है।

सम्बंध

चलो मैं दिया बन जाऊँ
और तुम बाती...
हमें सात फेरों या कुबूल है से क्या लेना!
जलाएँ संबंधों की रोशनी

हम थोड़ा-थोड़ा जलेंगे
काँपेंगे हवा में
बुझेंगे भी मगर रोशनी की चमक देकर ही

हमारी मद्धम रोशनी में
पढ़ सकेगा कोई खत
या दरवाजे की नेमप्लेट

है कुबूल मेरे साथ चलना
जलना करना सफर रोशनी का जगर-मगर।

एक साथी

एक साथी जरूरी है
बिल्कुल जरूरी है
सेवा प्यार का मौसम मनाने के लिए
बुखार नापने के लिए
दवा-पानी के लिए
पीठ खुजाने के लिए
बंद करने के लिए लाइट
ओढ़ाने को चादर
माथा छू कर प्रेम जताने के लिए
न प्रेम करने
न झगड़ने...बस
सेवा प्यार का मौसम मनाने को
जरूरी है एक साथी।

सीता नहीं मैं

तुम्हारे साथ वन-वन भटकूँगी
कंद-मूल खाऊँगी
सहूँगी वर्षा आतप सुख-दुख
तुम्हारी कहाऊँगी
पर सीता नहीं मैं
अब धरती में नहीं समाऊँगी।

तुम्हारे सुख-दुख बाँटूगी
चलूँगी साथ-साथ
पर तेरे पदचिन्हों से राह नहीं बनाऊँगी

तुम्हारी हर ना को ना नहीं कहूँगी
न तुम्हारी हर हाँ में हाँ मिलाऊँगी
मैं जन्मी नहीं भूमि से
आई हूँ माँ की कोख से तुम्हारी तरह ही
अपने जनक को नहीं मिली मैं यूँ ही
किसी खेत या वन
मंजूषा या किसी घड़े में

न बजी थाली
न हुआ सोहर तो क्या
गूँजती रही मेरी किलकारी इन सबसे ऊपर

जितना झुलसी नहीं मैं
अग्नि परीक्षा की आँच से
उससे ज्यादा राख हुई
अग्नि परीक्षा की तुम्हारी इच्छा से
क्यों काटी नाक शूर्पणखा की
प्रेम ही तो चाहती थी वह
क्यों भेजा लक्ष्मण के पास ?
क्यों किया उपहास ?
तुम कर न सके मेरी रक्षा
फिर क्यों हो मेरी अग्नि परीक्षा
अब सीता नहीं मैं
सिर्फ तुम्हारी दिखाई दुनिया नहीं है मेरे आगे
अपने सुख-दुख की दुनिया भी है

मरना

एक भी पत्ता गिरता है जब
पत्ते के साथ पेड़ मरता है तब
अपने हर टूटते बाल के साथ मरती है स्त्री थोड़ी
सुगंध से बिछुड़ते ही मर जाते हैं फूल
हृदय से बिछुड़ कर मर जाती है सांस

जिस दिन पृथ्वी अलग हुई चन्द्रमाँ से
उसी क्षण मर गई थी
आकाश के आंगन से निकलने के बाद
हर सितारा मरता है

शब्द मुझसे दूर होने के बाद मर जाएँगे
तो क्या रहूँ चुप ?
जानती हूँ चुप रहने से मर जाते हैं सपने। स

नाम : आभा बोधिसत्व
जन्म : 18 सितम्बर 1969 को हावड़ा (पश्चिम बंगाल)
शिक्षा : इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी में स्नातकोत्तर
सृजन : पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, साक्षात्कार इत्यादि प्रकाशित। फिल्म एवं टीवी धारावाहिकों के लिए गीत, कहानी और संवाद लेखन, 'अपना घर' नाम से ब्लॉग का संचालन।
सम्प्रति : स्वतंत्र लेखन
सम्पर्क : श्री गणेश सी.एच.एस., सैक्टर नं. 3, प्लॉट नं. 233, फ्लैट नं.3, चारकोप,
कांदीवली (पश्चिम), मुम्बई- 400 067
मोबाइल : 098201 98233
ई-मेल : apnaaghar@gmail.com

सांवरमल सांगानेरिया

जन्म : 3 अक्टूबर, 1945, गुवाहाटी
पिता : स्व. शिवसहाय सांगानेरिया, माता : स्व. बुगलीदेवी सांगानेरिया
शिक्षा : गौहाटी कॉमर्स कॉलेज, गुवाहाटी विश्वविद्यालय से 1968 में बी.कॉम. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा से कोविद जे.जे. विश्वविद्यालय, झुँझनू (राजस्थान) द्वारा मानद् डी.लिट्. भाषा ज्ञान : हिन्दी, असमिया, अंग्रेजी, बांग्ला।

साहित्यिक कृतियाँ

1. 'थोड़ी यात्रा थोड़े कागज' कालेज समय 1967 में की गई भारत यात्रा पर लिखी पहली पुस्तक सन् 1999 में परिदृश्य प्रकाशन, मुम्बई द्वारा प्रकाशित। इस पुस्तक पर सन् 2001 का 'अखिल भारतीय अम्बिकाप्रसाद दिव्य साहित्य पुरस्कार' मध्यप्रदेश से मिला।
2. 'ज्योति की आलोक यात्रा'असम के मूर्धन्य साहित्यकार और बहुआयामी व्यक्तित्व ज्योतिप्रसाद अगरवाला पर जीवनीपरक औपन्यासिक शैली में लिखी पुस्तक 'असम साहित्य सभा' द्वारा प्रकाशित। इस पुस्तक को सन् 2004 में 'महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी' द्वारा 'मुंशी प्रेमचन्द पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया।
3. 'ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे' नामक असम का यात्रा-वृत्तांत सन् 2006 में सुप्रसिद्ध संस्थान 'भारतीय ज्ञानपीठ' द्वारा प्रकाशित। इस पुस्तक के गुजराती और मराठी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। अब असमिया और बांग्ला अनुवाद भी शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।
4. 'अरुणोदय की धरती पर' नामक अरुणाचल प्रदेश का यात्रा वृत्तांत सन् 2008 में 'हेरिटेज फाउण्डेशन' गुवाहाटी द्वारा प्रकाशित हुआ।
5. 'लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव' असम के महान् सन्त श्रीमन्त शंकरदेव (1449-1568) के जीवन पर बहुत शोध कर लिखी गई यह पुस्तक सन् 2010 में 'हेरिटेज फाउण्डेशन' गुवाहाटी द्वारा प्रकाशित। श्रीमंत शंकरदेव के सर्वोच्च सत्र (मठ) श्रीश्री आउनीआटी सत्र, माजुली ने अपना 'श्रीमंत शंकरदेव शोध पुरस्कार' दिया गया। इस पुस्तक का मलयालम , मराठी और असमिया अनुवाद भी हो रहा है।
6. 'फेनी के इस पार' नामक त्रिपुरा पर लिखी यात्राकथा बोधि प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित हुई है। हाल फिलहाल 21 फरवरी 2018 को सौ वर्षीय पुरातन संस्था मारवाड़ी हिन्दी पुस्तकालय, गुवाहाटी ने सज्जन जैन स्मृति साहित्य पुरस्कार प्रदान किया है।

संप्रति मेघालय की यात्राकथा लिखने में संलग्न हैं। यदि ईश्वर ने सब कुछ अनुकूल रखा तो पूर्वोत्तर के शेष राज्यों मिजोरम, मणिपुर, नागालैंड और सिक्किम पर भी लिखने की योजना है।

सम्पर्क
शिव मार्केट, दूसरी मंजिल, फैन्सी बाजार, गुवाहाटी-7810011 (असम)

704, वृन्दावन अपार्टमेंट, सालासर ब्रज भूमि,
मेक्सस मॉल के सामने, भायन्दर (पश्चिम), मुम्बई-401101
मो.नं.918638727870

अपने ही आईने में

सांवरमल सांगानेरिया

अपने अतीत में झाँकता हूँ तो मेरी पारिवारिक पृष्ठभूमि से अपने आपको कहीं से भी साहित्यिक नहीं पाता। अपना होश संभाला तो खुद को गुवाहाटी के मारवाड़ी बाहुल्य व्यावसायिक क्षेत्र फैन्सी बाजार में पाया। वहीं हमारा पुश्तैनी मकान है। वहीं के हीरालाल स्कूल से प्राइमरी और लालचंद ओंकारमल गोयनका हिन्दी हाईस्कूल से मैट्रिक की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।

बचपन से दादी से रामायण और महाभारत की कहानियाँ सुनते-सुनते हिन्दी-साहित्य में न जाने कब मेरी रुचि जागृत हो गई। अपने स्कूली जीवन में मैंने हिन्दी के नामी-गिरामी लेखकों की अनेक कहानियाँ और उपन्यास पढ़े। हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम के माध्यम से भक्तिकालीन तथा आधुनिक रचनाकारों को पढ़ा और जाना। अपने स्कूली जीवन से ही मुझे लिखने का चस्का लग गया। शुरूआत मैंने कविताओं से की, किन्तु धीरे-धीरे मैं हिन्दी गद्य की ओर झुकता गया।

गुवाहाटी कॉमर्स कॉलेज से बी.कॉम. किया। इसी दौरान अपने साहित्यिक रुझान के चलते राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के गुवाहाटी केन्द्र से पढ़कर कोविद की परीक्षा उत्तीर्ण की।

अपने कॉलेज के दिनों में अपने सहपाठी मित्र आत्माराम बजाज के साथ भारत की रेल से सवा दो महीने में सत्रह हजार किलोमीटर की यात्राएँ कीं। उस यात्रा से लौटने के बाद मैंने स्वांतः सुखाय उन यात्रा संस्मरणों को लिपिबद्ध किया जिन्हें पूरा करने में पाँच साल लग गये। इक्यावन साल पहले की गई उस रेल यात्रा के बारे में आज 74 साल की उम्र में सोचता हूँ तो लगता है कि युवावस्था में की गई वह यात्रा क्या आज करना मेरे लिए संभव है। तभी तो कहा है कि *सैर कर दुनिया की गाफिल जिंदगानी फिर कहाँ, जिंदगानी गर रही तो नौजवानी फिर कहाँ।*

यात्रा केवल भौगोलिक लकीरों पर चलना मात्र ही तो नहीं है। इसमें इतिहास के पड़ावों के साथ संस्मरण भी होते हैं। वह यात्रा वृत्तांत बत्तीस सालों तक फाइल में सिमटा रहा। समय का आवरण उस पर चढ़ता जा रहा था। आखिर 1999 में उसके मुद्रित होने की बारी आई, किन्तु इसके पहले तीन दशकों से चढ़ी समय की धूल को झाड़-पोंछ कर साफ करना आवश्यक था। तीस वर्षों में कालकलवित हो चुकी बातों को बुहार कर संशोधित किया जो पाठकों के हाथ में थोड़ी यात्रा थोड़े कागज के नाम से पुस्तकाकार में 1999 में आई जिसका विमोचन मुम्बई में हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार जगदंबाप्रसाद दीक्षित द्वारा हुआ। उन्होंने पुस्तक को खूब सराहा, किन्तु तब मेरी साहित्यिक समझ बहुत कच्ची थी। कदाचित् वह पुस्तक मेरी पहली और आखिरी होती। मैंने तो उसे शौकिया तौर पर इसे लिखा था। उस पुस्तक पर सन् 2001 का मध्यप्रदेश से अखिल भारतीय अम्बिकाप्रसाद दिव्य साहित्य पुरस्कार मिला तो मैं अपने लेखन को आगे भी लिखने के लिए काफी प्रेरित और प्रोत्साहित हुआ।

मुम्बई में अपने व्यापार की दृष्टि से रहते हुए मुझे असम के बारे में बहुत-से लोगों से कई अनर्गल बातें सुनने को मिलती थीं। असम ही क्यों पूरे पूर्वोत्तर के बारे में देश के लोगों में फैले भ्रम को तोड़ने के लिए मैंने असम पर लिखना शुरू किया। अब तक अपने पुत्र और पुत्रियों के विवाह कर पारिवारिक दायित्व से मुक्त हो चुका था। तब अपना व्यापार बेटे को समझाया और लेखन में लग गया। मेरे लेखन का विषय केवल पूर्वोत्तर भारत ही रहा है। यह भी सच है कि हिन्दी साहित्य में यात्रा साहित्य को दोयम दृष्टि से परखा जाता है, किन्तु मुझ पर उसी क्षेत्र विशेष पर लिखने का जुनून था। कहानियाँ, उपन्यास और कविताएँ तो हजारों लोगों ने लिखकर अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की है। कुछ प्रसिद्ध लेखकों ने पूर्वोत्तर पर भी थोड़ा-बहुत लिखा है जो उनके नाम के चलते अच्छे प्रकाशकों के यहाँ से सहज ही छप गया, किन्तु मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ। केवल मेरी पुस्तक ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे भारतीय ज्ञानपीठ से सन् 2006 में इसलिए छप पाई, क्योंकि उस समय डॉ. प्रभाकर जी श्रोत्रिय जैसे ज्ञानपीठ के निदेशक और डॉ. गुलाबचंद जी जैन जैसे साहित्यिक सलाहकार थे। अब तक इस किताब के चार संस्मरण भारतीय ज्ञानपीठ से निकल गये हैं। इस पुस्तक के गुजराती, मराठी, असमिया और बांग्ला अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं।

असम के वैष्णव संत कवि, नाटककार, संगीतकार शंकरदेव (1449-1568) पर पाँच सौ पृष्ठों की पुस्तक ''लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव'' दिल्ली जाकर भारतीय ज्ञानपीठ के तत्कालीन निदेशक और हिन्दी के बड़े लेखक के पास गया तो उन्होंने पांडुलिपि देखने तक से मना कर दिया। फिर उसी पुस्तक को दिल्ली के नामचीन एक बड़े हिन्दी प्रकाशिक ने मोटी रकम की एवज में छापने की शर्त रखी। मेरे लेखकीय स्वाभिमान को प्रकाशक की वह शर्त स्वीकार नहीं थी। आखिर में इस पुस्तक को गुवाहाटी के एक एन.जी.ओ. हैरिटेज फाउंडेशन ने 2010 में प्रकाशित किया। इस पुस्तक पर मुम्बई विश्वविद्यालय की छात्रा अंकिता मिश्रा ने 2013 में एम.फिल. किया। इस पुस्तक के मलयालम और असमिया अनुवाद प्रकाशित हो गये हैं। मराठी अनुवाद भी छपने के लिये तैयार हैं।

इस पुस्तक की प्रस्तावना में भारतीय ज्ञानपीठ से पुरस्कृत असमिया लेखिका सुश्री इंदिरा रायसम गोस्वामी ने लिखा, हिन्दी *जगत् में श्रीमंत शंकरदेव को परिचित कराने में श्री सांवरमल सांगानेरिया द्वारा लिखित उपन्यासोसम रोचक, विस्तृत सूचनों से समृद्ध ग्रंथ 'लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव' महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने में पूर्णतः सक्षम है। इसके पहले भी असम में ही पले-पढ़े श्री सांगानेरिया डांगरिया (महोदय) ने पूर्वोत्तर पर साहित्य रचनाएँ कर हिन्दी-साहित्य को समृद्ध करने के साथ-साथ अपनी जन्मभूमि असम की कीर्ति को भारतीय जनमानस तक पहुँचाने का स्तुत्य कार्य किया है। मैं श्री सांवरमल डांगरिया का अभिनंदन और धन्यवाद करती हूँ। (यह असमिया से अनुदित है।)*
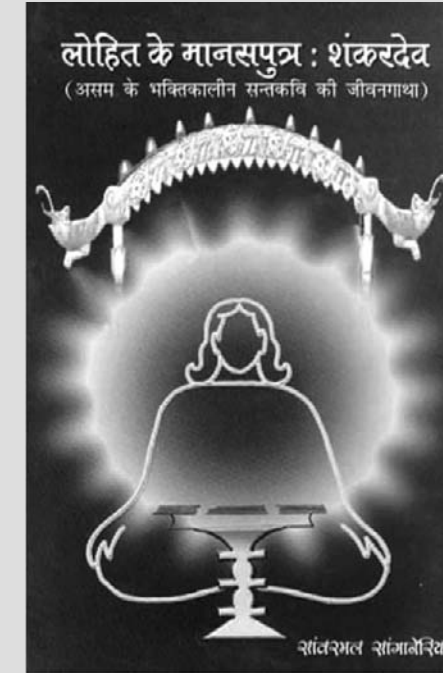
इसी पुस्तक के असमिया संस्करण की पांडुलिपि पढ़कर असमिया के मूर्धन्य साहित्यकार श्री लक्ष्मीनंदन बोरा ने लिखा कि *असमिया में अनूदित इस ग्रंथ लुइतर मानसपुत्र : शंकरदेव को पढ़कर मैं सचमुच में संतुष्ट, अभिभूत और उपकृत हुआ हूँ। गुरुदेव के जीवन की तथ्यपूर्ण बातों को बहुत सुंदर तरीके से लिखा गया है। असमिया पुरस्कारों और गुरुचरित में नहीं मिलने वाले बहुत-से तथ्य भी इस ग्रंथ में समाहित हैं। बहुत सुगढ़तरीके से चरित्रों को प्रस्तुत किया गया है। शंकरदेव की कथा को औपन्यासिक शैली में बहुत ही सरस और पठनीय भाषा में लिखा गया है। इसमें लेखक ने अपनी सृजनशीलता का परिचय भी दिया है। (यह भी असमिया से अनूदित है।)*

असम के भूतपूर्व राज्यपाल श्री बनवारीलाल जी पुरोहित ने मेरी पुस्तकों, विशेष कर लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव को पढ़कर मुझे राजभवन बुलाकर घंटे भर चर्चा की और पुस्तकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। मेरी तीन पुस्तकों के बारे में गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने अपने पत्र में लिखा, पौराणिक नाते से जुड़ी हुई संस्कार साभार पुस्तकें भेजने के लिए शुभेच्छा।

मेरे लिए यह सुखद अचरज था जब मेरी पुस्तकों पर जे.जे.टी. विश्वविद्यालय, झुंझनू (राजस्थान) ने मुझे मानद डी.लिट्. देने के लिए मेरा चयन किया। इसी के साथ श्रीमंत शंकरदेव के सर्वोच्च सत्र (मठ) से लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव पुस्तक के लिए मुझे श्रीमंत शंकरदेव गवेषणा पुरस्कार देने की घोषणा हुई।

इसी तरह पूर्वोत्तर पर लिखे यात्रा वृत्तांतों पर असम विश्वविद्यालय, सिलचर से हिन्दी की एक छात्रा ने पी.एच.डी. और नेहु विश्वविद्यालय, शिलांग के एक छात्र ने एम.फिल. किया।

इन सम्मानों को पाकर लगा कि भले ही हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं ने मेरी एक-दो पुस्तकों को छोड़कर शेष की समीक्षा नहीं करवाई और न ही विशेष चर्चा हुई, परन्तु अब इनका असमिया अनुवाद आने के बाद असमिया भाषी पाठकों में बहुत सराही जा रही है, असमिया अखबारों में समीक्षाएँ छप रही हैं। यह संतोष भी मन में है कि जिन्होंने मेरी हिन्दी पुस्तकों को पढ़ा उन्होंने भी सराहा अवश्य है। इस समय मैं मेघालय का यात्रा वृत्तांत लिखने में लगा हुआ हूँ।

पूर्वोत्तर भारत की राजनीतिक, मीडिया और साहित्यिक दृष्टि से सर्वदा उपेक्षा की गई है जैसे यह क्षेत्र भारत का हिस्सा ही न हो। इसी दूरी को पाटने का मैं हिन्दी-लेखन के माध्यम से लघु प्रयास कर रहा हूँ। स

शराईघाट का वीर

डॉ. सांवरमल सांगानेरिया

असम के इतिहास का एक कलंकित पृष्ठ उनकी आँखों के सामने फिर से फड़फड़ाने लगा। हृदय में उठती टीस ने उन्हें व्यग्र कर दिया। आहोम राज्य की राजधानी गढ़गाँव में सभी जन निद्रा देवी के आगोश में समाये थे, परन्तु अपने पर्यंक पर लेटे महाराज चक्रध्वज सिंह की आँखों में नींद प्रवेश नहीं कर पायी। एक दीपक की बाती ही बस उनका साथ दे रही थी। उनके मानस-पटल पर रमणी आइदेव (मातृदेव) का बिम्ब रह-रह कर उभर आता। उन्हें किसी भी क्षण दिल्ली से आइदेव के पत्र की प्रतीक्षा थी। रात्रि का दूसरा प्रहर आरम्भ हुआ। प्रहरी ने आकर उन्हें एक पत्र थमाते हुए कहा, ''स्वर्गदेव (महाराज)! आपकी आज्ञानुसार दिल्ली से आये कटकी (दूत) से यह पत्र लेकर उसे विश्राम करने अतिथिशाला भेज दिया है। अब मेरे लिए क्या आज्ञा है?''

''तुम ! अतन बूढ़ागोहाइँ (प्रधानमंत्री), बरगोहाइँ (उप प्रधानमंत्री) तथा बरपात्रगोहाइँ (मंत्री) को अभी उपस्थित होने का संदेश भिजाकर मंत्रणा-कक्ष में जाकर दीप प्रज्वलित कराओ।''

मंत्रणा-कक्ष में मंत्री-परिषद् के पहुँचने की सूचना पाकर महाराजा चक्रध्वज सिंह पधारे। अतन बूढ़ागोहाइँ ने बात आरम्भ करते हुए कहा, ''आप सभी जानते हैं कि हमारे स्वर्गदेव (महाराजा) के स्वर्गीय पिता जयध्वज सिंह के शासनकाल में दिल्ली में मुगल सिंहासन के लिए गृह-कलह चल रही थी जिसका कूटनीतिक लाभ उठाते हुए उन्होंने मुगलों के अधीन गुवाहाटी से उन्हें खदेड़कर कामरूप और ग्वालपाड़ा का भी उद्धार किया था। इतना ही नहीं उन्होंने सोनकोष नदी तक अपने राज्य का विस्तार कर पूरी ब्रह्मपुत्र उपत्यका को आहोम शासन के अन्तर्गत कर लिया।''

बरगोहाइँ ने उनकी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा, ''लेकिन औरंगजेब के बादशाह बनने के बाद उसके आदेश पर बंगाल के सूबेदार मीरजुमला ने फिर हम पर आक्रमण किया। उसकी सेना ने पाण्डु, गोवाहाटी, काजली, कलियावर, शिमलगढ़सहित गढ़गाँव तक को जीत लिया और हमारी जनता पर अमानुषिक अत्याचार किये। उसने यहाँ राज परिवार की मैदामों (समाधियों) तक को नहीं छोड़ा। धन की लालच में उन्हें खोदा और उनमें दबी हुई अथाह सम्पत्ति उसने लूटी। उन बातों को हम भूले नहीं हैं?''

''आखिर विवशतावश उससे स्वर्गदेव जयध्वसिंह को संधि करनी पड़ी और युद्ध-क्षति के रूप में तीन लाख रुपये और नब्बे हाथी देना स्वीकारना पड़ा। संधि की जो सबसे लज्जाजनक शर्त थी वह आज भी मेरे हृदय में शूल की भाँति चुभ रही है। मीरजुमला औरंगजेब के मुगलिया हरम के लिए स्वर्गदेव की युवा पुत्री रमणि गाभरू और भतीजी राजकन्या को दिल्ली भेजने अपने साथ ले गया था।'' - चक्रध्वज सिंह ने इतना कहकर दीर्घ निःश्वास लिया।

बरगोहाइँ ने कहा, ''राजकन्याओं और युद्धखर्च लेकर मीरजुमला ने गढ़गाँव तो छोड़ दिया, किन्तु यहाँ के भयंकर मौसम ने उसे नहीं छोड़ा और असम की सीमा में ही उसकी कब्र बन गयी। जाते-जाते वह अपने अधीनस्थ सीमा में फौजदार रसीद खाँ को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त कर गया था।''

''हमारे पिता स्वतंत्रता की अतृप्त प्यास लिये ही स्वर्ग सिधार गये, परन्तु हमें अपने राज्य का कोई भी भाग मुगलों की अधीनता में रहना स्वीकार नहीं था। इसलिए अपने मोमाई तामुली बरबरुवा के समरकुशल पुत्र लाचित को अपना बरफुकन (सेनापति) बनाया। उसके कुशल नेतृत्व में आहोम सेना ने गुवाहाटी पर पुनः अधिकार कर फिर एक बार मुगलों को असम-सीमा के बाहर खदेड़ा। इन बातों से आप सभी अवगत हैं। अब हमारी सेना और नौ-शक्ति सुदृढ़है। सेना के लिए धन-धान्य की भी समुचित व्यवस्था है। हम किसी भी आक्रमण को विफल करने में सक्षम हैं।'' चक्रध्वज सिंह इतना कहकर दिल्ली से आये पत्र को बरपात्रगोहाइँ को देते हुए कहा, ''अब आप इसे पढ़कर सबको सुनायें।'' पत्र में लिखा था- ''स्वर्गदेव ! मराठा वीर शिवाजी के आगरा दुर्ग से पलायन कर जाने से औरंगजेब पहले से ही क्षुब्ध था कि फौजदार फिरोज खाँ के अधीन गुवाहाटी पर आहोम सेना द्वारा अधिकार कर लिये जाने की बात जानकर और मुगल सेना की हार से वह तिलमिला गया है। वह शकी स्वभाव का है। उसे यह संदेह भी सता रहा है कि शिवाजी को पलायन कराने में आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह ने सहायता की है, किन्तु वह उसे प्रत्यक्ष रूप से सजा नहीं दे सकता, क्योंकि उसे राजपूतों के विद्रोह कर देने का भय है। इसलिए उसने रामसिंह को सुसज्जित विशाल वाहिनी के साथ फिर से असम विजय करने के लिए भेजा है। उसका शायद यह सोचना है कि असम जैसे खतरनाक मोर्चे पर वह जीतता है तो असम फिर से उसके राज्य के अधीन हो जायेगा और अगर वह मरता है तो एक काँटा निकल जायेगा। रामसिंह असम के काले जादू से भयभीत है। सुना है कि इससे बचने के लिए वह रास्ते में पटना में सिख गुरु तेग बहादुर से मिलेगा और उन्हें सहायता के लिए असम आने के लिए कहेगा।

''स्वर्गदेव ! मैं मुगल जनानखाने में रहमन बाबू बनकर अपने दुर्दिन कैसे-तैसे काट रही हूँ, किन्तु मेरे और तिमाई बाइदेव (भगीनी देवी) के भाग्य में जो दुर्भाग्य आया वैसा असम की किसी कन्या के भाग में न आये और उन्हें अपना धर्म बदलने के लिए यह विधर्मी बादशाह मजबूर न कर सके। यही मेरी प्रार्थना है।'' - रमणी गाभरू।

पत्र के शब्दों की स्याही सभी की आँखों से बहकर उनके गालों को भी स्याह कर गयी। कक्ष का वातावरण विषादमय हो गया। दीपशिखाएँ धुँधला गयीं। सबके गले अवरुद्ध हो गये। वहाँ छाये सन्नाटे को तोड़ते हुए अतन बूढ़ागोहाइँ की आवाज गूँजी, ''स्वर्गदेव! आज संध्या बीतने के बाद ही गुप्तचर ने आकर सूचित किया था कि रामसिंह पहले औरंगजेब के मामा और बंगाल के नवाब शाहिस्त खाँ से ढाका जाकर मिला है। यह वही शाहिस्त खाँ है जिसकी ऊँगलियाँ शिवाजी ने काट ली थी और किसी तरह वह अपनी जान बचाकर भागा था। रामसिंह उसकी सैन्य सहायता लेकर कुल 63,000 सैनिकों की फौज, जिसमें करीब चालीस हजार पदाति, इक्कीस हजार अश्वारोही, पंद्रह सौ तीरंदाजों के अलावा पाँच सौ बंदूकची भी हैं- के साथ असम के विजय अभियान पर निकल पड़ा है। रामसिंह असम के काले जादू से इतना भयभीत है कि बंगाल से जादू-टोटके के जानकार चार पीरों को भी साथ लेकर आ रहा है।'' अपने अवसाद से मुक्त होकर चक्रध्वज सिंह ने पूछा, ''अब आप लोगों की क्या राय है?''

''मेरी समझ में रामसिंह के रंगामाटी में पहुँचते ही उसे घेर कर मोर्चा लिया जाए।' - बरपात्रगोहाइँ ने कहा।

''रंगामाटी में मुगल सेना से भिड़ना हमारे लिए हानिकारक हो सकता है।'' अतन बूढ़ागोहाइँ ने सलाह देते हुए कहा, ''रंगामाटी समतल क्षेत्र है। शस्त्रास्त्र से सुसज्ज शत्रु-सेना हमसे भारी है और ढाका से वह इलाका नजदीक होने से मुगल सेना को रसद, गोला-बारूद भी आसानी से मिलते रहेंगे, किन्तु गुवाहाटी तक आते-आते उनकी सेना की पूर्ति-रेखा दुगुनी लम्बी हो जायेगी। यहाँ की भयानक मौसमी बरसात और बाढ़भी उनके लिए मुसीबत बनेंगे, क्योंकि मुगल सेना इनकी अभ्यस्त नहीं है। छापामार तंत्र से अपनी हानि हुए बिना हम दुश्मन को ज्यादा से ज्यादा हानि पहुँचा सकते हैं। ब्रह्मपुत्र को पार करना भी उनके लिए सहज नहीं होगा, फिर गुवाहाटी पहाड़ियों से घिरा है, वहीं मोर्चा लेना हमारे लिए सबसे ज्यादा निरापद होगा।''

--------''--------

सेनापति ने रामसिंह के ग्वालपाड़ा के रंगामाटी पर सहज ही अधिकार कर लिया और गुवाहाटी के पास ब्रह्मपुत्र के उत्तर पार के अगियाठुरी पहाड़ तक आ पहुँचा। वहाँ के हाजो स्थित हयग्रीवमाधव और केदारनाथ मंदिर में जाकर उसने अपनी विजय के लिए पूजा की।

हिन्दू भी बड़ी विचित्र जाति है जो एक स्वतंत्र हिन्दू राज्य को विजय कर मुगल साम्राज्य में मिलाने के लिए एक धार्मिक हिन्दू राजा विष्णु और शंकर की पूजा-आराधना करता है। क्या उसकी पूजा को उन देवताओं ने स्वीकारा भी होगा? लाचित बरफुकन और रामसिंह की सेना ब्रह्मपुत्र के दोनों किनारों पर खड़ी थी। ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तट पर बसे गुवाहाटी के इटाखुली पहाड़ स्थित दुर्ग पर स्वयं लाचित अपने सरदारों और सैनिकों के साथ डटे थे। ब्रह्मपुत्र में नावों का बेड़ा तैयार खड़ा था। लाचित को पता चला कि ब्रह्मपुत्र के उस पर स्थित अमीनगाँव के पास एक दुर्ग की प्राचीर कमजोर है। उसकी मरम्मत का काम उन्होंने अपने मामा के सुपुर्द कर कहा, ''मामा! यह काम रात-दिन एक करके किसी भी तरह सुबह तक पूरा हो जाना चाहिये। शत्रु का क्या भरोसा, कब अचानक आक्रमण कर दे। यह याद रखना कि दुश्मनों की सेना आपसे ज्यादा दूर नहीं है। यह अत्यन्त आवश्यक और गुरुत्तर कार्य है, इसीलिए आपके जिम्मे किया है।'' रात को अचानक काम देखने लाचित घोड़े पर चढ़कर आये। काम बंद देखकर उनकी आँखों में लहू उतर आया। सोये हुए मामा को जगाकर लाचित ने पूछा , ''मामा! काम कैसे बंद है? शत्रु दहलीज पर खड़ा है और तुम काम छोड़कर चैन की नींद सो रहे हो!''

''अरे लाचित तुम ! जो काम बाकी रह गया है उसे अभी आरम्भ कराये देता हूँ। मैं बहुत थक गया था, इसलिए विश्राम करने चला आया। लगता है कि मेरे पीछे दूसरे लोग भी सो गये। तुम चिन्ता मत करो।''

''तुम जैसे लोगों की वजह से ही देश परतंत्र होता है। मौत और दुश्मन कभी पूछकर आते हैं ? तुम भी अपने आखिरी प्रयाण के लिए तैयार हो जाओ''- कहते हुए लाचित ने अपनी तलवार म्यान से निकाल ली।

''तुम मेरे पर, अपने मामा पर तलवार का वार करोगे?'' भयभीत मामा ने अविश्वास प्रकट किया।

''गद्दार! मेरे लिए देश से बढ़कर मामा नहीं।'' इतना कह तलवार के एक आघात से मामा का सिर धड़ से अलग कर दिया। यह दुःसाहस देखकर सभी अवाक् रह गये। सैनिकों के कौतूहल को शांत करते हुए लाचित ने आज्ञा दी, ''अपना समय और नष्ट किये बिना काम को पूरा करो और जल्द से जल्द इस गद्दार की लाश को मेरे सामने से हटाओ।'' अब तक काम फिर शुरू हो चुका था और सूर्योदय से पहले दुर्ग की अभेद्य प्राचीर की मरम्मत पूरी हो गयी। वह दुर्ग 'मोमाइकाटा गढ़' कहलाने लगा।

--------''--------

लाचित बरफुकन ने प्रत्युत्तर में दूत के हाथ सरसों के तेल की शीशी और बालू भरा थैला देकर संदेश भेजा, ''लड़ने से हम जरा भी नहीं डरते हैं, किन्तु तुम लोगों को लड़ने की इतनी ही खुजली है तो दक्षिण में शुवा (शिवाजी) के साथ क्यों नहीं लड़े और उन्हें धोखे से क्यों कैद किया ? तुम्हारी सरसों के दानों जितनी सेना को पीसकर शीशी जैसा तेल निकाल देंगे। तुम्हारी सेना सरसों के दानों जितनी है तो मेरी सेना बालू के कणों जितनी है। तुम्हें तो गोला-बारूद बहुत दूर से लाना पड़ता है, हमारे पास इसका अक्षय भंडार है, तुम्हें चाहिये तो हम भेज देंगे, किन्तु हम मरते दम तक तुमसे लड़ेंगे।''

दो सालों तक छिटपुट लड़ाईयाँ चलती रहीं। कभी छापामार युद्ध तो संधिवार्ता के प्रयत्न। असमिया सेना अपने गोरिल्ला आक्रमण प्रायः रात में ही करती थीं। युद्ध की इस स्थिति से विरक्त होकर रामसिंह ने एक प्रस्ताव भेजा, ''दोनों ओर से इतना प्राणनाश करने के बदले असम के राजा मुझसे द्वन्द्व युद्ध करें और जिसकी विजय हो उसकी शर्तों पर संधि कर ली जाए।'' इस पर लाचित बरफुकन ने कहला भेजा, ''तुम औरंगजेब के नौकर हो। हमारे स्वर्गदेव चक्रध्वज सिंह किसी नौकर से युद्ध नहीं करेंगे, चाहे तो स्वयं औरंगजेब आ जाए, उससे वे अवश्य युद्ध करेंगे।'' आखिर हताश होकर रामसिंह ने भेदनीति का सहारा लिया। लाचित के नाम एक पत्र लिखकर उनके सहयोगी सरदार मिरि संदिकै फुकन के हाथों में चालाकी से उसे पहुँचाया। पत्र में लिखा था, ''लाचित बरफुकन, कल ही तो तुमने हमसे एक लाख रुपये लेकर मान्य किया था कि युद्ध नहीं करूँगा। विश्वास है कि तुम मुगलसेना से केवल युद्ध का दिखावा मात्र करते हुए अपने वचन का पालन करोगे। - तुम्हारा शुभचिंतक, राजा रामसिंह''

मिरि संदिकै ने वह पत्र चक्रध्वज सिंह के पास गढ़गाँव भेज दिया। पत्र पढ़कर राजा की भौंहे तन गयीं, ''अब समझा कि लाचित देशद्रोह पर उतर आया है, तभी तो मुगलों से आमने-सामने की लड़ाई में नहीं उतरता।''

''स्वर्गदेव! ऐसा सोचना तो अपने आप पर संदेह करना है।'' बूढ़ागोहाइँ ने इतना कहकर आगे समझाया, ''इसमें जरूर कोई छलना है।''

''हम कुछ नहीं सुनना चाहते। लाचित को आदेश भिजवाइये कि वह अपनी राजभक्ति का प्रमाण दे अथवा बरफुकन कहलाना छोड़ दे।''

''स्वर्गदेव ! आपकी आज्ञा मैं अभी उसे भिजवा देता हूँ। आपकी तबीयत ठीक नहीं है, इस समय आप अपने शयनकक्ष में जाकर विश्राम कीजिये।''

--------''--------

लाचित ने अपने सैनिकों में जोश भरते हुए कहा, ''मैं जानता हूँ कि खुले

मैदान में मुगल सेना को मात देना मुश्किल है, किन्तु गढ़गाँव से मिले स्वर्गदेव के आदेश पर हमें इस युद्ध के लिए मैदान में उतरना पड़ेगा। यह लड़ाई रामसिंह की सोची-समझी योजना के अनुसार हो रही है।''

असमिया सेना ने मुगल सेना का दृढ़तापूर्वक मुकाबला किया। रामसिंह ने लाचित की सेना को अपनी सेना पर भारी पड़ते देखकर अपनी घुड़सवार सेना को दूसरी ओर से आक्रमण करने की आज्ञा दी। अचानक हुए हमले से आहोम सेना के पग उखड़ गये और युद्ध में दस हजार असमिया सैनिक मारे गये। इससे लाचित शोकमग्न हो गये, उनकी आँखें छलछला आयीं।

इतनी सैन्य हानि करके भी रामसिंह कुछ हासिल नहीं कर सका। आखिर अपनी शान बचाने के लिए उसने लाचित को फिर एक संदेश भेजा, ''मैं तुम सब लोगों को मुँहमाँगा धन दूँगा। केवल गुवाहाटी मुझे सौंप दो। मैं संधि कर वापस लौट जाऊँगा।'' इसका लाचित बरफुकन ने उत्तर दिया, ''हमारे स्वर्गदेव उदयगिरी (पूर्व) के राजा हैं और तुम्हारे बादशाह औरंगजेब अस्तगिरी (पश्चिम) के राजा। तुम और हम तो सेवक हैं। हम सेवकों के बीच संधि नहीं हो सकती।'' इस बीच चक्रध्वज सिंह की मृत्यु हो गयी और उनका भाई उदयादित्य राजा बना। उदयादित्य में चक्रध्वज जैसी योग्यता नहीं थी। वह चापलूसों से घिरा था, प्रजा के कष्ट बढ़गये थे। बड़े-बड़े सरदारों और मंत्रियों के परिवार उसके द्वारा लांछित हो रहे थे। इन समाचारों को जानकर लाचित बड़े व्यथित हुए और उनका मन एकबार गढ़गाँव जाने को हुआ, किन्तु उन्होंने गुवाहाटी का मोर्चा नहीं छोड़ा। उन्होंने मन में निर्णय किया, ''उनकी निष्ठा किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, राज्य और प्रजा के प्रति है। अगर इस समय गुवाहाटी छोड़कर चला जाऊँगा तो सारे बलिदान व्यर्थ चले जायेंगे। दस हजार रणबाँकुरों का आत्म बलिदान व्यर्थ चला जायेगा जिसका अभिशाप उसके सिर पर होगा।'' ढाई-तीन साल से डेरा डाले पड़ी मुगल सेना उबने लगी। दिन आते रहे, रातें जाती रहीं। मूसलाधार वर्षा शुरू हो गयी। रामसिंह भी समझ गया कि जलयुद्ध किये बिना गुवाहाटी को नहीं जीता जा सकता। उसने हजारों कारीगर लगाकर सैनिकों, अश्वारोहियों, तोपें चढ़ाने के लिए छोटी-बड़ी अनेक नौकाएँ तैयार करा रखी थीं। वर्षाकाल समाप्त होते ही उसने आक्रमण करने की ठान ली। एक दिन गुप्तचर ने आकर रामसिंह से कहा, '' इस समय लाचित बरफुकन सन्निपात ज्वर से पीड़ित होकर मूर्च्छा की स्थिति में पड़ा है। उस पर आक्रमण करने का यह अच्छा अवसर है।'' यह जानकर रामसिंह ने हमला करने का आदेश दे दिया। मुगल नौकाएँ बंदूक और तोपों की मार करते हुए शराईघाट की ओर आगे बढ़ने लगीं।

बरफुकन की बीमारी की बात सैनिकों में दावानल की तरह फैल गयी। सैनिक हताश होकर अपनी नावों में उलटे भागने लगे। यह स्थिति देखकर ब्रह्मपुत्र के उत्तर पार अश्वक्लांत पहाड़ी पर डटी हुई असमिया सेना में भी खलबली मच गयी। भीषण बुखार में भी लाचित बरफुकन अपने इटाखुली दुर्ग से मुगलों का आक्रमण देख रहे थे। सारी स्थिति को भाँपकर वे युद्ध में जाने को उद्धत हुए। ''आपकी तबियत इस लायक नहीं कि आप युद्ध कर सके।'' - वैद्य ने लाचित को समझाया।

''मैं भी आपको युद्ध में जाने की सलाह कदापि नहीं दूँगा।'' - राजज्योतिषी ने भी वैद्य की बात का समर्थन करते हुए आगे कहा, ''मेरी गणना के अनुसार इस समय आपका युद्ध के लिए प्रस्थान करना हानिकारक हो सकता है।''

''इससे बढ़कर क्या हानि हो सकती है कि शत्रु हमारी भूमि को हड़प ले और हम मुँह देखते रह जायें। यहाँ बिस्तर पर मरने से तो अच्छा है कि मैं युद्ध करते हुए मरूँ।'' लाचित ने दृढ़तापूर्वक आगे कहा, ''मुझे युद्ध में जाने से कोई ज्योतिषीय गणना नहीं रोक सकती।''

बिस्तर से उठने की भी लाचित बरफुकन की अवस्था न थी, फिर भी उन्होंने एक सैनिक का सहारा लेकर उठते हुए अपने सहयोगियों से कहा, ''तुम मेरा पलंग उठाकर नौका में रखो। इस वक्त एक-एक पल हमारे लिए भारी है, जरा-सी चूक भी हुई तो सारी सेना का विनाश निश्चित है। सामने देखो, मुगल सेना की नौकाएँ अश्वक्लांत से आगे उमानन्द द्वीप तक पहुँच रही हैं।'' इतिहास भी वह अविस्मरणीय दृश्य देख रहा था। एक ओर ब्रह्मपुत्र में पूर्व की ओर बढ़ती मुगलों की सैकड़ों नौकाएँ, दूर भागती असमिया सेना की नावें और दूसरी ओर जलधारा के साथ बहती हुई एकमात्र नौका पर क्रोध से उन्मत अपना खड्ग हाथ में लिये खड़े वीर लाचित बरफुकन। ऐसे साहसी क्षण ही इतिहास में अमर होते हैं, इतिहास की धारा पलटते हैं। दुश्मनों पर अपनी रुग्णावस्था के उपरांत भी अकेले टूट पड़े अपने सेनापति को देखकर आहोम सेना में तीव्र आदेश पैदा हुआ। नौकाओं के मुँह फेर दिये गये। नाव से नाव भिड़ गयी। घमासान युद्ध छिड़ गया।

लाचित ने अपनी सेना को ललकारा, ''वीरों! मुगलों को इस बार ऐसा सबक सिखाओ कि फिर कभी भविष्य में ये असम की ओर रुख करने का साहस न कर सके। यह इनके साथ आखिरी और निर्णायक युद्ध होना चाहिये। इस अवसर को चूक गये तो असमिया बुरंजी (इतिहास) तुम्हें कभी क्षमा नहीं करेगी।'' इस वाणी ने असमिया वीरों में नयी स्फूर्ति भर दी और वे दुगुने जोश से जी-जान की बाजी लगाकर लड़ने लगे। असमिया नौवाहिनी के गोताखोरों ने ब्रह्मपुत्र की ऊपर से शांत दिखनेवाली, किन्तु भीतर से अति प्रवाहमान धारा में गोते लगाकर मुगलों की अनेक नावों में छिद्र-छिद्र कर उन्हें डुबो दिया।

इस प्रबल प्रत्याक्रमण से मुगल सेना के पैर उखड़ने लगे। अपने सिपहसालार रहीम खाँ को असमिया सेना द्वारा मारा गया देखकर वे और हताश हो गये। स्वयं रामसिंह भी उस प्रत्याक्रमण के सामने नहीं टिक पाया। वह समझ गया कि असमिया सेना के साथ जलयुद्ध में और जूझना आत्मघात के समान होगा। आखिर मुगल सेना के सामने शराईघाट छोड़कर पीछे हटने के सिवाय कोई चारा नहीं बचा। लाचित की सेना ने भागती मुगल सेना की नौकाओं और शस्त्रों को लूटने की लाचित से अनुमति माँगी, परन्तु लाचित ने कहा, ''इन भगोड़ों को लूटकर मैं स्वर्गदेव और अपने मंत्रियों की प्रतिष्ठा पर बट्टा नहीं लगाना चाहता। जाओ, शत्रु को असम की सीमा के बाहर मानाह नदी के पार तक खदेड़कर आओ।'' शाम ढल रही थी, शराईघाट की पहाड़ियों के पीछे उतरते सूरज की रंगोली का रंग धीरे-धीरे ब्रह्मपुत्र में घुल रहा था, जिसके साथ मिली रणबांकुरो के लहू की लालिमा से उसका जल और भी लाल होकर अपने 'लोहित' नाम को सार्थक करने लगा। स

शोणितपुर की उषा

सांवरमल सांगानेरिया

जहाँ भी पहुँचता हूँ, ब्रह्मपुत्र मुझे ढूँढ़लेता है। चाहत की तासीर ही ऐसी है। तुलसी बाबा भी तो कह गये हैं- 'जाकर जापर सत्य सनेहू/सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू।' अग्निगढ़पहाड़ी पर बैठे मुझ एकाकी का संगी यह ब्रह्मपुत्र ही तो है। यह बिना किसी अपेक्षा के मेरा मनमीत है। यहाँ भी इसने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। इसकी उम्र बाबा के भी पड़बाबा-सड़बाबा की है, पर अब भी तो अपने अल्हड़पन से शिशुपन में समाया है। मेरे संगी-साथी तो अब बाबा क्या बने, अपने शैशव की स्मृतियाँ ही विस्मृत कर बैठे। वे भले ही व्यक्ति-मन के बजाय बाह्य भूषा को अपने सम्बन्धों का आधार मानें, परन्तु इससे हमारा मन, हमारे विचार क्या ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं हैं? आखिर कबीरदास भी तो यही कहते थे- ' मन न रँगायो, रँगायो जोगी कपड़ा।' ब्रह्मपुत्र भी न मेरा आभिजात्य देखता है और न वाक्पटुता। यह तो मन बाँचता है। तभी तो यह अपनी प्रीत आज भी पाले है। इसे दिखावटीपन से चिढ़है। मैं भले इसे भूल जाऊँ, यह मुझे नहीं बिसारता।

अग्निगढ़ पहाड़ी से ढ़ाई-तीन सौ फुट नीचे बह रहे ब्रह्मपुत्र के साथ हो रहे मेरे एकालाप में अचानक उस पर बने कोलीयाभोमरा सेतु ने व्यवधान डाला। सामने दिखते पुल पर एकाएक मेरी दृष्टि क्या पड़ी, मन की दिशा ही परिवर्तित हो गयी। बचपन की स्मृतियाँ वर्तमान के धरातल पर उतर आयीं। अभी कुछ घण्टों पहले ही तो इस तीन कि.मी. लम्बे पुल को पार कर ब्रह्मपुत्र के उत्तरी किनारे बसे तेजपुर में प्रवेश किया था। आहोम राजा कमलेश्वर सिंह (1795-1810) के सेनापति कोलीया भोमरा बरफुकन ने दो सौ वर्षों पहले जिस भोमरागुड़ी स्थान पर ब्रह्मपुत्र पर पत्थर और लकड़ी के खूँटों पर पुल खड़ा करने का जो सपने देखा था, उसे अब सन् 1987 में भारत सरकार ने साकार कर उसके नाम को भी अमर कर दिया।

हरियाली पहाड़ियों और हरियल चाय बागानों से घिरे तेजपुर का कला-साहित्य-संस्कृति में अमूल्य योगदान रहा है। अरुणाचल की गोद में बसा यह नगर अपने में पौराणिकता को भी समेटे है। यह पौराणिक नगर शोणितपुर भी प्राग्ज्योतिषपुर की तरह कामरूप से ओत-प्रोत रूप से जुड़ा रहा है। शालस्तम्भ वंश के राजाओं ने इसे अपनी राजधानी बनाया और अपने आराध्यदेव हारुपेश्वर महादेव के नाम पर इसका नामकरण हारुपेश्वर किया। इतिहास में इसे हाटकेश्वर भी लिखा गया है। हारुपेश्वर के यशस्वी राजा हर्जर (820-835 ई.) द्वारा लिखाया गया नौ पंक्तियों का शिलालेख ब्रह्मपुत्र किनारे भैरवपद देवालय के पास खड़ी चट्टान पर आज भी देखा जा सकता है। ब्राह्मी लिपि में संस्कृत में लिखे इस शिलालेख में 'महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक हर्जर वर्मन' का समयकाल 510 गुप्ताब्द बताया गया है। हर्जर के बाद हुए राजा वनमाल देव (835-860 ई.) ने भी यहाँ अनेक मन्दिर तथा राजप्रसाद बनवाये।

तेजपुर पहुँच एक होटल में टिकने के बाद नगर-भ्रमण के लिये मैंने एक ऑटो कर लिया था। समकोणी, चौड़ी और सीधी सड़कों के संग छोटी-बड़ी कई झीलों को अपने में समोये इस नगर में सर्वप्रथम इस अग्निगढ़की पहाड़ी पर आना ही मेरा अभीष्ट था।

यह शोणितपुर कभी राजा बाण की राजधानी थी। परम प्रतापी हिरण्यकशिपु का वह वंशज था। हिरण्यकशिपु के परम हरिभक्त पुत्र प्रह्लाद के पुत्र विरोचन और उनके पुत्र बलि की दानवीरता की कथा प्रचलित है, जिनसे स्वयं विष्णु को दान लेने के लिये वामन अवतार लेना पड़ा। उसी दानवीर बलि का पुत्र बाणासुर था। वह शिव-भक्त होकर भी अत्यन्त अहंकारी था।

इस अग्निगढ़पहाड़ी पर बने सीमेण्ट के आधुनिक शिल्पों में उषा-चित्रलेखा के भित्तिचित्र बरबस ध्यान आकर्षित करते हैं। इसमें चित्रलेखा अपना चित्रांकन उषा को दिखा रही है। बाण-सुता उषा ने स्वप्न में एक सुन्दर पुरुष को देखा तो तड़के अपनी सखी को बताया। बाण के मंत्री कुम्भाण्ड की चतुर कला-मर्मज्ञ पुत्री चित्रलेखा उषा की अन्तरंग सहचरी थी। उसने अपनी तूलिका से विभिन्न देशों के राजकुमारों के चित्र बना-बनाकर उसे दिखाये। उषा द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का चित्र देखकर स्वप्न में देखे पुरुष को पहचान लेती है।

चित्रलेखा ठहरी कामरूप की मायाविनी। वह अपनी माया से द्वारकापुरी में सो रहे अनिरुद्ध को शोणितपुर उठा लायी और दोनों का गन्धर्व विवाह करवा दिया। राजा बाण को इसका पता चला तो उसने अनिरुद्ध को कारागार में डाल, उषा को भी उसके ही अग्निगढ़प्रासाद में बन्दी बना दिया। प्रासाद भी ऐसा कि जिसके चारों ओर प्रज्वलित अग्नि-शिखाओं का पहरा था। पंछी की भी क्या बिसात जो भीतर पर मार जाए। इसी प्रासाद में उषा ने अपने प्रियतम अनिरुद्ध के लिए अपने पिता बाण से कैसा उत्पीड़न भोगा होगा।

श्रीकृष्ण द्वारका से अपने पौत्र को मुक्त कराने अपने सैन्यबल के साथ शोणितपुर आये। बाण ठहरा परम शिव-भक्त। भक्त की प्रार्थना पर महादेव शंकर को उसके पक्ष में श्रीकृष्ण से ही युद्ध करना पड़ा। पुराणों में यह हरि-हर युद्ध के नाम से विख्यात हुआ। अन्ततः दोनों प्रेमियों का मिलन हुआ।

उषा-अनिरुद्ध की कथा क्या एक पौराणिक कथा मात्र है? नहीं, इसके साथ असम की मूलभूत संस्कृति भी जुड़ी हुई है। इस प्रसंग पर असमिया साहित्य के मध्यवर्तीकाल में वैष्णव भक्त अनन्त कन्दली द्वारा 'कुमार हरण' तथा पीताम्बर नामक कवि द्वारा 'उषा-परिणय' लिखे गये। अनन्त कन्दली ने ही सर्वप्रथम इस नगर को *तेजपुर नामा इतो नगरा विशेषा* कहकर तेजपुर लिखा था। वैसे असमिया में शोणित या खून को तेज कहा जाता है। लगता है, इसी कारण यह नगर शोणितपुर से तेजपुर कहलाने लगा हो। आधुनिक काल में उषा-अनिरुद्ध के आख्यान पर रूपकुँवर ज्योतिप्रसाद अगरवाला ने 'शोणित कुँवरी' नाटक लिखा।

तेजपुर के साथ असमिया संस्कृति के पुनरुद्धाटक मनीषी ज्योतिप्रसाद का जैसे अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। उनका नाम असमिया मानस में रचा-बसा है। केवल उनके ही नहीं, अपितु उनके दादा हरविलास अगरवाला और उनके परिवार के प्रति भी विशेष आदर तथा प्रेम का भाव असमिया मानस में अंकित है। उनकी सन्तानों में चन्द्रकुमार और यज्ञेश्वरी में जहाँ जन्मजात साहित्यिक प्रतिभा थी, वहीं उनके पुत्र परमानन्द संगीतज्ञ थे। चन्द्रकुमार असमिया साहित्य के तीन प्रमुख कवियों में से एक माने जाते हैं। इनके साथ हरविलास के सौतेले भाई काशीराम के पुत्र आनन्दचन्द्र अगरवाला अँग्रेजी साहित्य के धुरन्धर विद्वान् थे, जिन्होंने अनेक अँग्रेजी ग्रन्थों का सुललित असमिया अनुवाद किया था। ज्योतिप्रसाद अगरवाला का जन्म 17 जून 1903 को डिब्रुगढजिले के तामुलबाड़ी चाय बागान में पिता परमानन्द अगरवाला के घर माता किरणमयी देवी के गर्भ से हुआ। बालक ज्योति को पारिवारिक साहित्यिक परिवेश और अपने पिता परमानन्द से संगीत के संस्कार विरासत में मिले। उनकी इसी तेजपुर में खड़ी पारिवारिक कोठी 'पकी' में ही गाँधीजी अगस्त 1921 और 1939 के अपने तेजपुर-प्रवासों में ठहरे थे। इसी 'पकी' भवन में जवाहरलाल नेहरू जैसे देश के अनेक नेता भी समय-समय पर ठहरे थे। ज्योतिप्रसाद का नाटक-संगीत के प्रति अनुपम अनुराग था। वे तेजपुर के बाण रंगमंच से आखिर तक जुड़े रहे। उन्होंने अपने संगीत-प्रेम के चलते यहाँ 1940में 'तेजपुर संगीत विद्यालय' की स्थापना की। वे देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन से आखिर तक जुड़े रहे। उनकी राजनीतिक गतिविधियों के चलते ब्रिटिश सरकार ने उन्हें पन्द्रह महीनों की जेल की सजा दी और पाँच सौ रुपयों का दण्ड लगाया। जेल में बीमार पड़ने

पर सरकार ने उन्हें आगे से किसी आन्दोलन में भाग नहीं लेने की शर्त पर छोड़ने की पेशकश की। इसे उन्होंने ठुकरा दिया और अपनी सजा पूरी कर कारागार से मुक्त हुए।

वे असमिया फिल्मों के दादा साहब फाल्के थे। उन्होंने इसी तेजपुर के अपने 'भोलागुड़ी' चाय बागान में 'चित्रबन' नाम से अस्थायी तौर पर एक स्टुडियो बनाकर सन् 1934 में कितनी ही बाधाओं को झेलकर पहली असमिया फिल्म 'जयमती' बनायी थी। उन्हें स्वयं ही निर्माता, निर्देशक, संवाद-लेखन, गीतकार, संगीतकार, कला-निर्देशक, नृत्य-संयोजन आदि सभी कार्य करने पड़े। उन्होंने एक और असमिया फिल्म 'इन्द्रमालती' सन् 1939 में बनायी, इसी इन्द्रमालती से आज के प्रसिद्ध संगीतकार डॉ. भूपेन हजारिका ने केवल तेरह वर्ष की उम्र में अपनी फिल्मी यात्रा शुरू की थी। इसके साथ ही वे साहित्य-सृजन भी करते रहे। ज्योतिप्रसाद को कैंसर हो गया था। आखिर 17 जनवरी 1951 को केवल 48 वर्ष की अल्पायु में इसी तेजपुर के अपने 'पकी' की गोद में उन्होंने अन्तिम साँस ली।

दूरदृष्टा ज्योतिप्रसाद की लिखी बात आज भी प्रासंगिक है-''कोई भी कला-संस्कृति अपनी जन्मभूमि की परम्पराओं का अतिक्रमण कर विश्वव्यापी नहीं हो सकती। आज हमारी सांस्कृतिक प्रगति हम असमियों में भारतीय परम्पराओं के तथ्यों के आधार पर ही आवश्यक रूप से प्रतिष्ठित करनी होगी। आज हमें विश्व प्रगति की चकाचौंध राह पर मिला चाहे गणतन्त्र हो, समाजतन्त्र हो या साम्यतन्त्र हो, जिसे भी हम अभारतीय मनीषियों से लेना चाहते हों, लेकिन हमें उसे (तन्त्र को) अपने देश में प्रतिष्ठित करने के लिए हमारी प्राचीन परम्पराओं में उन्हीं तन्त्र सम्बन्धी परम्पराओं का ही सहारा लेना होगा। हमारी परम्पराएँ जिस तन्त्र का समर्थन नहीं करतीं, वैसा तन्त्र हमारा अपकार ही करेगा।''

इसी प्रकार असम की सभ्यता-संस्कृति के बारे में ज्योतिप्रसाद अपने आलेख 'असमिया-संस्कृति' में भी लिख गये हैं- ''असम के इतिहास के प्रारम्भ में आसुरी सभ्यता-संस्कृति का आविर्भाव हुआ था। पहले असम का नाम कामरूप था। कामरूप से पहले इसका नाम प्राग्ज्योतिष था। उस युग में प्राग्ज्योतिष की सभ्यता मध्यभारत, पश्चिम भारत और दक्षिण भारत की सभ्यता से उन्नत थी, इसे हम उस युग की ललित कला से समझ सकते हैं। भारतीय ललित कला के इतिहास लेखक तथा उस विषय के जग-प्रसिद्ध पण्डित डॉ. आनन्दकुमार स्वामी ने अपने 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फाइन आर्ट्स' में लिखा है- 'भारतीय इतिहास के अनुसार चित्रलेखा ही आदि चित्र-शिल्पी थीं।'''चित्रलेखा और उषा ने पार्वती से नृत्य-शिक्षा प्राप्त की थी और विवाह के पश्चात् उषा ने द्वारिका में नारियों को नृत्य सिखाया था। प्राचीन प्राग्ज्योतिष की जिस सभ्यता के बारे में प्राचीन भारत में वर्णन किया गया है वह आर्य सभ्यता की तरह की थी। दानव-असुरों के महल, पार्थिव सम्पदा और समृद्धि देवताओं के स्वर्ग की तरह ही थी। दैहिक सौन्दर्य में दानव कन्याएँ आर्य कन्याओं से भी सुन्दर थीं।

इस युग में दानव-कन्या उषा भारत की सबसे सुन्दर कन्या थी। इसलिए सभ्यता-संस्कृति की दृष्टि से या मानव-जाति की तुलना में दानव-असुर निम्न श्रेणी के नहीं होते थे। शारीरिक, मानसिक गुणों में ये असुर, देवताओं के समकक्ष ही थे - कभी-कभार तो वे देवताओं से भी उन्नत होते थे। पर एक ही तरह की सभ्यता होने के उपरान्त इन लोगों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण अलग था। गीता में कहे गये दैवी और आसुरी जीवन-दर्शन शायद ये ही दो सांस्कृतिक दृष्टिकोण हैं- आर्यों की दैवी (आध्यात्मिक आनन्द) और असुर दानवों का (सम्पूर्ण पार्थिव) आसुरी जीवन दर्शन। लेकिन दानव-असुरों पर भी आर्यों के दैवी आदर्श का प्रभाव पड़ा, जिसका प्रमाण है- हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रहलाद। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से आर्य संस्कृति आसुरी संस्कृति से उन्नत थी। ऐसी बात भी नहीं है कि आर्य पूर्णतया दैवी आदर्शवाले थे और असुर आसुरी आदर्शवाले ही थे। आर्यों में भी आसुरी स्वभाव था पर वे मुख्यतः दैवी भावापन्न थे और असुर-दानवों में दैवी प्रभावक्षीण था। शायद आध्यात्मिक अन्धेपन के कारण आर्य सभ्यता की तरह समृद्धशाली होते हुए भी असुर-दानव जाति संसार से विलुप्त हो गयी। दैवी संस्कृति का आदर्श था आध्यात्मिक ज्ञान के आलोक द्वारा मनुष्य के सभी सांसारिक प्रकाश को सु-नियन्त्रित कर, मनुष्य के जीवन मे ंसमता, शान्ति और आनन्द की सृष्टि करना, लेकिन दूसरी ओर आसुरी संस्कृति का आदर्श था- पार्थिव चरम उत्कर्ष और समृद्धि द्वारा इन्द्रियों के जरिये संसार के सभी सुख और आनन्द को प्राप्त करना। असुर-दानव लोग भौतिक समृद्धि और मानसिक उत्कर्ष में आगे थे, यह प्रमाणित है। उत्तर भारतीय आर्य असुर-दानवों को नगर-निर्माण करने के लिए ले जाते थे-इसका अर्थ है कि आर्यों से दानव अधिक श्रेष्ठ शिल्पी थे।''

पाण्डवों के इन्द्रप्रस्थ का निर्माणकर्ता महाशिल्पी मय,दानव-वंशज ही तो था। इतना ही नहीं, मय दानव की सभ्यता का विस्तार उत्तरी अमेरिका महाद्वीप तक फैला था जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण वहाँ पनपी प्राचीन मय-सभ्यता है जो आज 'माया सिविलाइजेशन' कहलाती है। अपने आलेख में ज्योतिप्रसाद आगे लिखते हैं- ''इसी तरह उस युग की चित्र-कला और नृत्य-कला सर्वश्रेष्ठ थी, फिर आयुर्वेद में भी देवगुरु बृहस्पति जो मन्त्र और रसायन नहीं जानते थे, उसे दैत्यगुरु शुक्राचार्य जानते थे जिनसे मृत संजीवनी सीखने के लिए कच आए थे। इस तरह देखा जाता है कि भारत में आर्य सभ्यता से पहले असुर-दानवीय सभ्यता का प्रचलन था जिसका केन्द्रस्थल था- पूर्वी भारत। धीरे-धीरे पूर्वी भारत में आर्य सभ्यता और आसुरी सभ्यता के बीच आदान-प्रदान हुआ। उषा-अनिरुद्ध का विवाह इसका प्रमाण है। इस प्रकार प्राग्ज्योतिष सभ्यता-संस्कृति आर्य सभ्यता के संस्पर्श में आकर कामरूपी सभ्यता में परिणत हुई। (आज भी) संसार में दो सांस्कृतिक आदर्श हैं- एक दैवी और दूसरा आसुरी। दैवी और आसुरी प्राचीन भाषा में कहा जाय तो आध्यात्मिक और भौतिकवादी।'' ज्योतिप्रसाद का उपरोक्त उद्धरण जहाँ असम की सभ्यता-संस्कृति की प्राचीनता को समझने में सहायक है, वहीं आज के विश्व में फैल रही पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृति को भी उसी परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।

इतना ही नहीं 'असम साहित्य सभा' द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ असम जनजाति (असम की जनजाति) में विद्वान् लेखक भवेन्द्र नार्जी गुजरात के गरबा नृत्य के बारे में लिखते हैं- 'शोणितपुर के किरातों की सौभाग्यवती नारियों ने अनिरुद्ध से ब्याही उषा को नाच-नाचकर द्वारका के लिए गार्बा (विदाई) दी। द्वारका से आये बारातियों को उनका नृत्य इतना भाया कि उन्होंने इसे अपना लिया। यही नाच गुजरात का लोकनृत्य गार्बा, गर्बा या गरबा है।

तेजपुर साहित्य और कला में पूरे असम में अग्रगण्य रहा है। यहाँ ज्योतिप्रसाद के साथियों में कलागुरु विष्णुप्रसाद राभा और फणी शर्मा थे। विष्णुप्रसाद राभा गीतकार, संगीतकार और नर्तक होने के साथ-साथ समाज सुधारक और राजनेता भी थे। 31 जनवरी 1909 को ढाका में जन्मे विष्णुप्रसाद ने इसी तेजपुर में अपनी स्कूली शिक्षा पायी थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अपनी पढ़ाई के दौरान उनका नृत्य प्रदर्शन देखकर सन् 1939 में विश्वविद्यालय के तत्कालीन उप-कुलपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने उन्हें स्वर्ण पदक के साथ 'कलागुरु' की उपाधि से विभूषित किया था। 1945 में कम्प्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बनने के बाद उन्होंने अपनी पैतृक सम्पत्ति करीब ढाई हजार बीघा जमीन को दीन-दुःखियों में बाँटकर स्वयं एक साधारण जीवन जीया। उन्होंने फिल्म निर्माण के साथ स्वरचित गीत गाये, नृत्य किया और अभिनय तो किया ही। वे असमिया के सिवाय 17 भाषाएँ और जानते थे। आधुनिक असमिया सांस्कृतिक जीवन पर अनेक पुस्तकों के लेखक विष्णुप्रसाद राभा का 20 जून 1969 को देहावसान हुआ।

इसी तेजपुर में 1910 में जन्मे फणी शर्मा ने ज्योतिप्रसाद के साथ उनकी फिल्म जयमती से अपनी अभिनय-यात्रा शुरू की थी। उन्होंने 1948 में 'शिराज' फिल्म का निर्माण किया। 1955 में उनके द्वारा निर्देशित देशभक्त 'पियली फुकन' फिल्म को राष्ट्रपति से योग्यता प्रमाण पत्र मिला। कई नाटकों के रचयिता फणी शर्मा ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में 'प्राग्ज्योति थियेटर' बना गाँव-गाँव में नाटकों की धूम मचायी। उनका 13 जुलाई 1970 में निधन हुआ।

तेजपुर की त्रिमूर्ति ज्योति-विष्णु-फणी के विचारों में खोया मैं अग्निरूढ़पहाड़ी से उतरकर पास की ही भैरवी पहाड़ी की ओर बढ़रहा था। यहाँ भैरवी रूपा पार्वती के दर्शन करने जाना उषा का नित्य-नियम था। उसके पिता बाण शिव-भक्त थे तो माता मधुमती 'देवी' की आराधिका थीं। माँ के संस्कारों की छाया पुत्री पर भी थी। ऑटोवाला मुझे तेजपुर भ्रमण कराता वहाँ से कुछ दूरी पर ब्रह्मपुत्र किनारे ही स्थित बामुनी पहाड़ ले गया। दरअसल यह तीन-सवा तीन सौ फुट ऊँची पहाड़ी है। इसके नीचे बहता ब्रह्मपुत्र यहाँ भी मेरे साथ था। इस नद के किनारे-किनारे भीमरागुड़ी से शिंगरी तक चली गयी पहाड़ी शृंखला पर न जाने कितने ही मन्दिर या उनके भग्नावशेष मिल जाएँगे। इस बामुनी पहाड़ पर भी चारों ओर पुरातात्त्विक महत्त्व के ध्वंसावशेष बिखरे हैं। आपस में गडमड अवशेषों को पहली नजर में कुछ भी समझना काफी मुश्किल है।

यहाँ कभी सात मन्दिर थे जिन्हें पुरातत्त्वविदों ने आठवीं से नौवीं शताब्दी के मध्य का माना है। इसके आयताकार परिसर में छह मन्दिर और बाहर एक मन्दिर था। भीतर के छह मन्दिरों में चार-कोनों में चार और मध्य में दो बृहदाकार मन्दिर थे। मध्य के दो मन्दिरों के गर्भगृहों के बीच बने रास्ते आज भी हैं। ये मन्दिर शिव, विष्णु आदि देवताओं के थे। उन मन्दिरों की गोलाकार सीढ़ी, द्वार-खिड़की के स्तम्भ आदि के भग्नावशेष यहाँ बिखरे पड़े हैं। कुछ पत्थरों पर जीव-जन्तुओं के मुख बने हैं। इनके अलावा हाथी पर चढ़े हुए सिंह, बाघ और घड़ियाल की मूर्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं। एक लम्बी चट्टान पर नरसिंह, परशुराम, वराह और राम की मूर्तियाँ हैं। छठभुजी नटराज तथा दुर्गा की मूर्तियाँ भी मिली थीं। एक लघु गणेश प्रतिमा, षट्भुजा नृमुण्डा-मालिनी, चतुर्भुज नरसिंह की प्रतिमाएँ आज भी देखने को मिलती हैं। इतिहासकारों की मान्यता है कि इनका निर्माण राजा वनमाल वर्मन ने करवाया था। बामुनी पहाड़ से पाँच कि.मी. पर दाह पर्वतीया मन्दिर के अवशेष देखने जाते समय रास्ते में 'पद्म पोखर' आया। इस कमल सरोवर में खिले कमल जैसे मध्याह्न के सूर्य से आँखें मिला रहे थे। इसी तरह दो सौ साठ बीघे में विस्तृत 'हर्जर पोखर' सरोवर में समाये जल में नौवीं शताब्दी का इतिहास भी मानो समाया है। इसे राजा हर्जर वर्मन ने बनवाया था।

असम के प्राच्य स्थापत्य एवं वास्तुकला का अनुपम नमूना दाह पर्वतीया में खड़ा द्वार-तोरण पर्यटकों का आकर्षण-केन्द्र है। इस पर पाँचवीं-छठवीं शताब्दी का गुप्तकालीन प्रभाव साफ झलकता है। यह तोरण कभी यहाँ खड़े ईंट और पत्थरों से बने प्राचीन मन्दिर का अवशेष है। यह मन्दिर वर्गाकार था। मन्दिर के गर्भगृह और मण्डप के अवशेष मिले हैं। बलुई पत्थरों के बने इन द्वार-स्तम्भों पर दायीं ओर गंगा देवी और बाँयी ओर यमुनादेवी की त्रिभंगी मुद्रा में उत्कीर्ण चित्ताकर्षक आकृतियाँ बरबस ही मन मोहती हैं। इन्हें देखकर बेलूर (कर्नाटक) में देखी त्रिभंगी नृत्यमुद्रा में बनी मूर्ति याद हो आयी। यह त्रिभंगी मुद्रा बड़ी कठिन है। इस मुद्रा में शरीर को तीन जगहों से एक साथ मोड़ा जाता है। एक लोच कमर में नीचे, दूसरी कमर और छाती के बीच और तीसरी लोच ऊपर की ओर। दोनों देवियाँ अपने-अपने दोनों हाथों में हार लिये न जाने किनकी और कबसे प्रतीक्षा कर रही हैं। क्या यहाँ आनेवाले पर्यटकों का स्वागत करने ही इन्होंने पुष्पमालाएँ थाम रखी हैं।

गंगा-यमुना के निचले हिस्से में उनकी सहचरियाँ खड़ी हैं। दोनों देवियों के सिरों के पीछे ईश्वरीय दैवी गुणों के प्रतिपादक गोलाकार प्रभा-मण्डल बने हैं। दोनों मूर्तियों के समीप उड़ते हुए दो राजहंस उत्कीर्ण हैं। गंगा-जमुना के पास घुटने टेके नागिनियाँ हैं। द्वार की सिर-पट्टी पर पाँच वर्तुल अलंकृत हैं। इसके मध्य में गरुड़ हैं तो अन्य वर्तुलों में सूर्य, कृष्ण आदि की देव प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इस तोरण-शिल्प का पता 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लगा था। इस तोरणद्वार और पाटलिपुत्र तथा वाराणसी में प्राप्त पाँचवीं-छठी शती के मूर्ति-शिल्प में अद्भुत समानता है। यहाँ से ऑटोवाला मुझे एक दीर्घाकार शिवलिंग दिखाने तीन-चार कि.मी. दूर केतकीबाड़ी गाँव ले गया। उसे क्या पता था कि उसने अनजाने ही मुझे गुप्तयुग के स्थापत्य के सम्मुख ला खड़ा किया था। सच तो यह है कि मैं भी इसके बारे में सर्वदा अनभिज्ञ ही था। एक टीन-टप्पर के नीचे पंचमुखी हाटकेश्वर महादेव का यह स्थावर शिवलिंग बस किसी तरह खड़ा भर है। आज यह भग्नावस्था में है। करीब बारह फुट ऊँचे इस शिवलिंग के शीर्ष पर शिव के पाँच मुख उकेरे हुए हैं। इसका करीब नौ-दस फुट चौड़ा योनिपीठ इससे दूर अलग पड़ा है। इसके पास लगे मिलिटरी कैम्प के जवान ही इसकी पूजा व्यवस्था देखते हैं। धार्मिक दृष्टि की उपेक्षा भी कर दे तो क्या पुरातत्त्व विभग का यह कर्त्तव्य नहीं बनता कि इसकी साज-सँभाल करें ? ऐसा विशाल और अद्भुत शिवलिंग इसके पहले मैंने कभी नहीं देखा है। यह मुझसे अनदेखा ही रह जाता यदि ऑटोवाला मुझे वहाँ नहीं ले आता। कोल पार्क पहुँचा तक तब शाम हो गयी थी। आज इसका नाम चित्रलेखा उद्यान कर दिया गया है, फिर भी आमतौर पर इसे कोल पार्क ही कहा जाता है। 1906 ई. में तेजपुर में उपायुक्त रहे कोल ने बामुनी पहाड़ के अवशेषों से स्तम्भों और मूर्तियों को यहाँ मँगवाकर सजवाया था। पार्क में एक मनमोहक झील है। रात ने धीरे-धीरे अँधेरे का चँदोवा तान दिया। उस तारांकित श्याम वितान तले पार्क में सजे पाषाण-स्तम्भ और मूर्तियों पर कलात्मक रूप से की गयी प्रकाश-व्यवस्था ने एक सपनीले संसार की सृष्टि कर दी थी।

अब ठण्ड बढ़ने लगी थी फिर मुझे अपने साले गोवर्धन जी की बेटी उषा के ससुराल से मिले रात्रि-भोजन के निमन्त्रण की याद हो आयी। होटल जाकर सोया तब रात के दस बज गये थे। सुबह महाभैरव शंकर के दर्शन कर मुझे गुवाहाटी प्रस्थान करना था। होटल से महाभैरव मन्दिर दूर नहीं था। सुबह तैयार हो वहाँ पहुँचा तब भक्तों की भीड़ लगी थी। अब न वह भैरव मन्दिर और न वह शिवलिंग ही है, जिसे शिव-भक्त बाणासुर ने प्रतिस्थापित किया था। ऐसा उल्लिखित है कि राजा बाण द्वारा स्थापित विशाल शिवलिंग स्थावर श्रेणी का था। दस फुट ऊँचा और रुद्र भाग में सात फुट गोलाई का वह शिवलिंग गुजरात के सोमनाथ के शिवलिंग से ही बड़ा था। प्राचीन मन्दिर के समय-प्रवाह में भग्न हो जाने पर छठी शताब्दी में वर्मन राज्य द्वारा इसे फिर से बनाया गया था। आहोम शासन में ईंटों और चूने-सूर्खी से इसकी मरम्मत की गयी थी। फिर 19वीं शताब्दी के मध्य में इसके भग्नावशेष पर एक संन्यासी नागा बाबा द्वारा जनता के सहयोग से इसे आज का रूप दिया गया। यहाँ से तीन किलोमीटर दूर स्थित अग्निगढ़से आकर उषा भी यहाँ नित्य पूजा किया करती थीं। राजा बाण द्वारा यहाँ स्थापित कीर्ति-स्तम्भ आज नहीं है। बस फिर से कोलीयाभोमरा पुल पर थी। नीचे बहते ब्रह्मपुत्र से फिर आँखें चार हुईं। काश! थोड़ी देर के लिए बस वहाँ रुक गयी होती। उसकी धारा पर पालवाली नौकाएँ चल रही थीं। उसके अजस्र प्रवाह को देखकर ज्योतिप्रसाद की एक कविता पंक्ति याद आती है- *लोहित का पानी जाए ओ बहता/सन्ध्या लोहित का पानी सुनहला।* स

सुधीजनों की दृष्टि में
सांवरमल सांगानेरिया का कृतित्व

श्री सांवरमल सांगानेरिया लोहित के मानसपुत्र शंकरदेव नामक ग्रंथ लिखने के लिए प्रशंसा के पात्र हैं। सांवरमल डाँगरिया (असमिया में आदरसूचक शब्द है जिसका मतलब है- महोदय) असम में ही पले-बढ़े हुए हैं। इन्होंने पूर्वोत्तर के विषयों नाना पुस्तकें लिखकर हिन्दी-साहित्य जगत् को लाभान्वित किया है। अपनी जन्मभूमि असम की ख्याति चहुँ ओर फैलाने में सफल हुए हैं। मैं सांवरमल डाँगरिया का अभिनंदन और धन्यवाद करती हूँ। (इन्दिराजी की लिखी हुई पूरी प्रस्तावना लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव की पुस्तक के पृष्ठ सात (7) पर दी हुई है। इन्होंने पाण्डुलिपि पढ़कर कहा था कि मैं हिन्दी पढ़तो लेती हूँ परन्तु लिखने में दिक्कत होती है। इसलिए उन्होंने असमिया में लिखकर दिया था जिसका हिन्दी अनुवाद पुस्तक में है।)

प्रसिद्ध असमिया लेखिका इन्दिरा गोस्वामी

सांवरमल सांगानेरिया एक सुलेखक और धर्मशास्त्र की व्युत्पत्ति का ज्ञान रखने वाले सदाशय व्यक्ति हैं। श्रीमंत शंकरदेव की जीवनी पर लिखे लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव हिन्दी ग्रन्थ ने समग्र भारत में यथेष्ट जनप्रियता लाभ की है और इसके कई संस्करण निकल गये हैं। मुम्बई विश्वविद्यालय की एक छात्रा ने इस पर शोध करके एम.फिल. डिग्री प्राप्त की है। प्रसन्नता की बात है कि इस पुस्तक का भारत की दो भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। इससे श्रीमंत शंकरदेव की गुण-गरिमा असम के बाहर प्रसार और प्रचार के लिए सांगानेरिया देव सचमुच प्रशंसा के योग्य हैं।

असमिया के प्रसिद्ध उपन्यासकार लक्ष्मीनंदन बोरा

गुवाहाटी के मारवाड़ी समाज के कई विशिष्ट व्यक्तियों ने असमिया भाषा साहित्य पर चर्चा करके असमिया समाज में सुप्रशंसा और आदर पाने में सफल हुए हैं। यह सही है कि सांवरमल सांगानेरिया का नाम इस तालिका में समाहित नहीं हो सकता, क्योंकि उन्होंने असमिया में आज तक नहीं लिखा है, किन्तु उससे भी बड़ा काम उन्होंने किया है और वह है कि उन्होंने हिन्दी भाषा में कितनी ही किताबें लिखकर एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया जिसके लिए ये असमिया समाज की गंभीर कृतज्ञता के पात्र हैं।

असमिया के प्रसिद्ध कहानीकार
और उपन्यासकार होमेन बोरगाहाई

जिन सात उत्तर-पूर्व के राज्यों के बारे में ज्यादातर लोग जानते नहीं, उन राज्यों के सांस्कृतिक तथा भौगोलिक तथ्यों को बेहद रोचक तरीके से पाठकों के बीच लाने का कार्य सांवरमल सांगानेरिया कर रहे हैं। इस बार उनकी पुस्तक त्रिपुरा जैसे बेहद उपेक्षित राज्य की सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक सम्पदा से हमें रूबरू कराती हैं। उत्तर-पूर्वी राज्यों की भौगोलिक परिस्थितियाँ बेहद कठिन हैं। सांगानेरिया ने वहाँ समय बिताकर बहुत गंभीरता से वहाँ का अध्ययन किया और बेहद रोचक और सरल तरीके से उसे प्रस्तुत किया।

करुणाशंकर उपाध्याय

लेखक सांगानेरिया में जो जिद और जुनून है वह कम लोगों में देखने को मिलता है। पूर्वोत्तर के तीन राज्यों पर उनकी पुस्तकें आ चुकी हैं, उम्मीद करेंगे जल्दी ही इनकी चार और राज्यों पर पुस्तकें आएँ ताकि हिन्दी भाषियों को उनके बारे में ज्ञान अर्जन हो।

शचीन्द्र त्रिपाठी, वरिष्ठ पत्रकार

एक व्यावसायिक पृष्ठभूमि से आने वाले सांवरमल सांगानेरिया अपने भ्रमण के अनुभवों को इस तरह से कागज और स्याही के माध्यम से प्रस्तुत करेंगे, इसका ज्ञान इन्हें भी खुद नहीं था। इनकी हार्दिक इच्छा सदैव से यही रही है कि पूर्वोत्तर, जो एक समृद्ध संस्कृति को अपने अंदर समेटे हुए हैं, उसके बारे में पूरे भारतवर्ष को बताया जाए जिससे पूर्वोत्तर के बारे में उत्पन्न भ्रांतियों को दूर किया जा सके। एक मारवाड़ी होने के नाते इन्हें भी ऐसा महसूस होता है कि सभी को जागरूक होकर पूर्वोत्तर की भाषा-संस्कृति को अधिक से अधिक जानने का प्रयास करना चाहिए, जिससे लोग एक-दूसरे की भाषा-संस्कृति, रीति-रिवाजों को जान सकेंगे और आपसी समन्वय बढ़सकेगा। एक मारवाड़ी होकर अपना पूरा समय साहित्य-साधना में व्यतीत करने का कार्य, सांवरमल सांगानेरिया जैसा व्यक्तित्व ही कर सकता है।बिना कोई प्रोत्साहन के इस व्यक्ति ने व्यापार और वाणिज्य में अपना समय नहीं देकर साहित्य को अपना कर्मक्षेत्र बनाया, जिसमें इन्होंने महारत हासिल कर ली है। सावरमल सांगानेरिया की हार्दिक अभिलाषा है कि सैकड़ों वर्ष से रहने वाला मारवाड़ी समाज साहित्य संस्कृति में भी उतनी ही रुचि ले, जितनी वह अन्य विधाओं में लेता है। आज 73 वर्ष की आयु में भी इनकी लेखनी संवेग चल रही है। ऐसे व्यक्तित्व को लाखों सलाम।

रवि अजित सरिया
स्तम्भकार

जिस समाज में रहता हूँ वहाँ लिखने की कोई कद्र ही नहीं है...

डॉ. सांवरमल सांगानेरिया से निर्मला डोसी की बातचीत

आज बड़े शहरों में विद्यार्थियों को बोर्ड की परीक्षा के बाद कौन-से विषय लेकर आगे पढ़ना चाहिये यह तय करने के लिये काउंसलिंग करवायी जाती है। कुछ वर्षों पहले बच्चे को पैतृक काम ही करना है, यही पारम्परिक सोच के कारण लड़कों का भविष्य निर्धारित हो जाता था और लड़कियों के लिये शिक्षा व अन्य गृहपयोगी कार्यों को सीखने की मोहलत तब तक मिलती थी जब तक कि वे किसी ठिये से लग न जाएँ। इससे होता यह था कि न तो माता-पिता को पता होता था, न ही बच्चे खुद में टटोलते कि आखिर स्वयं उन्हें अच्छा क्या लगता है। कौन से ऐसे विषय हैं जिन्हें पढ़ने में उन्हें मन के घोड़ों को अनुशासन के चाबुक से साधना नहीं पड़ता, बल्कि उन्हें पढ़ने में आनन्द आता था। वही विषय चुनकर आगे की राहें तलाशे बच्चा तो यकीनन उसका जीवन बोझिल होने की जगह खुशनुमा हो सकता है। जहाँ तक जीवन यापन की बात है तो पैसा कमाने की होड़ छोड़ दे इंसान तो ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें जाकर दो रोटी का जुगाड़ नहीं हो सकता। बात इच्छाओं के आकाश को सीमित करने व स्वयं के संतोष पाने की जरूर है।

उम्र के आठवें दशक में प्रवेश करने वाले किसी व्यक्ति को शौकिया तौर पर शुरू किये गये कार्य पर डी.लिट. की मानद् उपाधि मिले तो सोचना पड़ता है कि वही व्यक्ति अपने जीवन के युवाकाल से ही अपने शौक को अपनाता और उसे ही पूरा समय तथा ऊर्जा देता तो कितना कुछ और होता व बहुत पहले ही हो जाता। किशोर वय व युवाकाल का संधिकाल वह समय होता है तब रास्ते के रोड़ों को किक् मारने की जबरदस्त हिम्मत होती है। वक्त को मोड़ देने का हौसला और मनचाहा कर लेने की जिद रहती है। मैं बात सांवरमल सांगानेरिया की कर रही हूँ जिन्हें राजस्थान सेवा संघ ने 'डॉक्टरेट' का सम्मान दिया है, बल्कि इस सम्मान के लिए सही प्रत्याशी को चुना है। सांगानेरिया जी ने पूर्वांचल क्षेत्र पर पाँच पुस्तकें लिखकर एक इतिहास बनाया है। पुस्तकें तो हजारों हजार लिखी जा रही हैं, पढ़ी भी जा रही हैं व सराही भी जा रही हैं, किन्तु कुछ कोने ऐसे होते हैं जिन पर गुणीजनों की दृष्टि कम जा पाती है और उन्हीं उपेक्षित कोनों की पडताल करने का काम कोई करता है तो यकीनन इतिहास रचता है। भारत का पूर्वांचल क्षेत्र प्राकृतिक सुषमा, लोककला तथा ज्ञान-विज्ञान से भरपूर समृद्ध है, किन्तु इसके बारे में बाकी भारत में ही जानकारी कम है तो भारत से बाहर की तो क्या बात की जाए। सांगानेरिया जी ने हमेशा से उपेक्षित असम प्रदेश से समूचे भारत को परिचित कराने का कष्टसाध्य कार्य किया है। गौरतलब यह कि शुद्ध रूप से व्यावसायिक घराने के युवक का रूझान घूमने और उससे उपजे अनुभवों से कागज कोरे करने का कैसे हुआ होगा। क्या स्वयं उन्हें अपने भीतर की यायावरी का पता था या फिर उनके घरवालों को इसकी खबर थी। नहीं कतई नहीं। वे स्वयं नहीं जानते थे कि उन्हें प्रकृति का साथ, नई जगह, नए लोग, नए परिवेश लुभाते हैं और कभी वे उन सब को पृष्ठों पर साकार करके कालजयी बना देंगे।

बारह-तेरह साल के किशोर ने बालहठ करके पैंतीस-चालीस रुपए का कोडक कैमरा खरीदा। उससे खींचे चित्र उनकी अनमोल पूँजी हैं। फिर दो पहिये की साइकिल मिली तब तो लगा जैसे पंख ही लग गए हैं। कहने का अर्थ है बिना किसी से काउंसलिंग किये भी समझा जा सकता था कि वे किन चीजों में रुचि रखते थे। स्नातक की परीक्षा देने के बाद उनका घुमंतू स्वभाव नई-नई योजनाएँ बनाने लगा। वैसे देशाटन का चस्का विरासत में मिला था। अल्पवयस में विधवा हो गई उनकी दादी ने खुद को भगवद्भजन मे ंरमा लिया था। विषम आवागमन के साधनों में भी उन्होंने चारोंधाम तथा अन्य तीर्थों की यात्रा कर ली थीं। दादी जब सिधार गईं तो उनकी अस्थियाँ प्रवाहित करने गए पिता ने बालक सांवर को भी साथ ले लिया। उस यात्रा का अक्श सांवरमलजी के बालमन पर वृद्ध होने के बाद भी स्पष्ट देखा जा सकता है। जिसे उन्होंने अपनी प्रथम पुस्तक में विस्तार से लिखा है। घर में, परिवार में, विवाह शादी की बारातों में जाने का अवसर अक्सर वे लपक लेना चाहते थे। इसका कारण विवाह में जाने का उत्साह नहीं होता था। बस घर से बाहर जाकर नई जगह की यात्रा का उत्साह लहरें मारता था।

छात्र जीवन में ऐसा स्वर्णिम मोड़ आया सन् 67 में। मात्र 245 रुपये में 16927 किलोमीटर की यात्रा की अपने सहपाठी मित्र आत्माराम के साथ। टिकट सरकूलर था सो बार-बार टिकट कटाने का झंझट नहीं था। थोड़े-से सामान के साथ यात्रा का पहला कदम बढ़ा दिया। लगभग सत्तर दिन की यात्रा की। उस वकत तो सिर्फ सोचा इतना भर कि इतने कम पैसे में इतनी लंबी यात्रा का अवसर क्यों छोड़ा जाए। जो कुछ देखा, सुना, समझा उसे पृष्ठों पर उतारने का मन बना लिया सिर्फ इसलिये कि कालांतर में अपने लिखे को पढ़कर वापस इन स्मरणीय विरल पलों को ताजा कर लिया करेंगे। यही वह क्षण थे और यही वो समय, जब उनकी यायावरी प्रवृत्ति ने अपनी धरती ढूँढ़ी और उसमें लेखन के उर्वर बीज छींट दिये, बिना किसी फल की चाह के। ईमानदार कोशिश ने रंग दिखाया और नतीजे के रूप में पहली पुस्तक 'थोड़े कागज थोड़ी यात्रा' ने आकार धरा। साहित्यप्रेमीं लोगों के बीच पुस्तक खासी सराही गयी। एकमत से साहित्य मर्मज्ञों ने माना कि असम की भूमि से, उसके गाँवों से, उसकी संपदा से, उसकी सादगी से पहली बार इतनी आत्मीयता से परिचय इससे पूर्व किसी ने नहीं करवाया। सांगानेरिया जी का परिवार राजस्थान से कोई 140 वर्ष पहले से ही जीवन यापन के लिये पूर्व की तरफ आ गया था। उनका जन्म गोहाटी में हुआ और शिक्षा-दीक्षा भी। जिस भूमि में उनकी गर्भनाल जुड़ी थी उससे उनका आत्मा का नाता जुड़ गया था और अपनी जन्मभूमि के ॠण से उॠण तो होना ही था। 1980 में व्यवसाय के सिलसिले में मुम्बई आए। पहले लूम चलाए, फिर टिंगर का काम कई वर्ष किया। लिखने का शौक बचपन से था तो गोहाटी से निकलने वाली पत्रिका 'जागरी' के सह-संपादक के बतौर भी काम किया। घर-संसार का जुआँ कँधों पर धरा था। जिम्मेदारियाँ थीं, सो उसी में लगे रहना स्वाभाविक भी था और जरूरी भी। 'छिटपुट' लिखने के संदर्भ में 'जनसत्ता' में कार्यरत राकेश श्रीमाल को उस पहली यात्रा पर लिखी पाण्डुलिपि दिखायी और उन्हीं की प्रेरणा से पहली पुस्तक 'थोड़ी यात्रा थोड़े कागज' आयी उस पर पुरस्कार भी मिला व भरपूर प्रशंसा भी। सांगानेरिया जी बताते हैं कि तब लोग उनसे पूर्वोत्तर प्रदेशों के बारे में बड़े अजीब-अजीब प्रश्न करते तो उन्होंने जाना कि लोग उस क्षेत्र के बारे में कितना कम जानते हैं।

दूसरी पुस्तक 'ज्योतिप्रसाद अग्रवाल' पर लिखी। असमिया संस्कृति की नींव रखने वाले रूपकुँवर ज्योतिप्रसाद असमिया भाषा के कवि, गीतकार, नाटककार, रंगकर्मी, संगीतकार, नृत्य संयोजक, कथाकार, फिल्मकार, पत्रकार, दार्शनिक होने के साथ-साथ स्वतंत्रता सेनानी भी थे। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व से हिन्दी भाषी लोगों को परिचित कराने का प्रयास किया गया।सन् 1875 में तेजपुर में ज्योतिप्रसाद के दादा के बनाए मकान को देख कर लेखक के मन में उनकी जीवनी लिखने का ख्याल आया। स्वयं तेजपुर जाकर उनके घरवालों से मिलते रहे। और 'ज्योति की आलोक यात्रा' ने हिन्दी को समृद्ध किया। पुस्तक तो लिख ली पर प्रकाशन की समस्या सामने थी। अन्ततः असम साहित्य सभा ने सहर्ष उस पुस्तक को प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया। सांवरमल जी ने दिल्ली में पुस्तक छपवाने की शर्त पर अपनी पाण्डुलिपि उन्हें सौंप दी। उस पुस्तक में ज्योतिप्रसाद जी की कुछ कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया है। पुस्तक में भी असमी व हिन्दी को एक ही पृष्ठ पर आमने-सामने रख कर पाठकों को समझने की सहूलियत दी है। उनका कहना है कि अनुवादक की अपनी सीमाएँ होती हैं। इससे यह तो पता चलता है कि असमिया भाषा हिन्दी से कितनी मिलती है। ज्योतिप्रसाद के शिष्य रह चुके भूपेन हजारिका ने इस पुस्तक का विमोचन किया।

सांगानेरिया जी की तीसरी पुस्तक 2006 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुई। 2007 में उसका दूसरा संस्करण छपा और मराठी तथा गुजराती में अनुवाद भी हुआ। असमी तथा बंगला में अनुवाद का काम चल रहा है।

वर्षों तक भारत के लोग कश्मीर से कन्याकुमारी तो जानते हैं, परन्तु इधर पंजाब से, गुजरात से कलकत्ता तक ही जानते थे उसके आगे जो पूर्वोत्तर भारत के सात राज्य और भी हैं जहाँ अनेक क्रांतिकारी, कलाकार, साहित्यकार व शंकरदेव जैसे विद्वान्

हुए। उन्हें जाने बिना हम भारत को पूरी समग्रता से जानने का भ्रम कैसे पाल सकते हैं। 'ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे' पुस्तक में इन्हीं राज्यों के बारे में विस्तार से काफी कुछ पढ़ने को मिलता है। चौथी पुस्तक आयी 'अरुणोदय की धरती पर' जो अरुणाचल की यात्रा और उसके चप्पे-चप्पे का सहज व दिलचस्प वृत्तांत है। पाँच सौ वर्ष पूर्व अरुणाचल में एक संत हुए शंकरदेव जो संत कबीर के समकालीन थे। उन्होंने उसी वक्त कह दिया कि देश को जोड़े रखने के लिये एक लिंक लेंगवेज होनी जरूरी है। उन्होंने एक भाषा बनाई 'ब्रजावली' जो हिन्दी के करीब है। गौरतलब यह कि एक अहिन्दी भाषी क्षेत्र का व्यक्ति गुलामी के दौरान भी सोचता है कि हमें एक लिंक लैंग्वेज की जरूरत है, जबकि आजाद होने के बावजूद हम विदेशी भाषा अपनाने में ज्यादा सहज हैं। अजीब विडंबना ही है यह।

डॉक्टरेट मिलने के बाद कैसा लगता है तो बड़ी सरलता से बोले कि मैं जिस समाज से हूँ वहाँ लिखने की कोई कद्र नहीं है और मुझे भी इसके लिये काफी कुछ सहना, सुनना पड़ा था। सभी पूछते कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ यदि उससे पैसा नहीं मिलता है तो फिर उसका औचित्य क्या है। व्यर्थ श्रम व समय बर्बाद करना है। यह सब सुनकर वे बेहद दुःखी व निराश रहते थे।

शंकरदेव की पुस्तक पर असमिया सरकार ने बड़ा पुरस्कार दिया पहली बार किसी मारवाड़ी लेखक को। तब सबके कान खड़े हुए और राजस्थान सेवा संघ ने डॉक्टरेट दी। सांगानेरिया जी की प्रथम सवा दो महीने की यात्रा और उसके बाद की छोटी-छोटी यात्राएँ जो व्यवसाय व घरेलू कारणों से होती रही। उन सबने कुछ न कुछ चीज उनके जेहन में दर्ज कर दिये। फिर बाद में तो उन्होंने लिखने के मंतव्य से यात्राएँ कीं, कर रहे हैं, तो जाहिर है वे तमाम अनुभव जब लिखने बैठते हैं तो अनायास कलम की नोंक पर बैठ कर स्वयं को लिखा ले जाते हैं। पारिवारिक व व्यावसायिक जिम्मेदारियों के समापन के उपरांत उन्होंने अपने लेखन पर ध्यान दिया। प्रथम पुस्तक 'थोड़ी यात्रा थोड़े कागज' के प्रकाश में आने का श्रेय वे श्री राकेश श्रीमाल को देना नहीं भूलते। उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी तब कि लेखन कार्य आगे जाकर रहेगा। प्रथम पुस्तक पर आयी गुणीजनों की उत्साहवर्धक प्रतिक्रिया, प्रोत्साहन तथा पुरस्कारों ने आगे का मार्ग प्रशस्त कर दिया। उनके लेखन में न रोमांच है, न रोमांस। किन्तु जो भी है वो अछूता है, पठनीय है, मनोरंजक है और ज्ञानवर्धन तो है ही।

'शंकरदेव' का स्थान असम में वही है जो हिन्दी वालों के लिये कबीर का है, सूर का है या तुलसी का है। उन पर हिन्दी में प्रथम पुस्तक सांगानेरिया जी ने ही लिखी है, जबकि अंग्रेजी व अन्य असमी भाषाओं में काफी लिखा गया है। और उसके लिये वे अद्भुत बात कहते हैं कि वो पुस्तक मैंने नहीं लिखी, उस दिव्यात्मा ने मेरा हाथ पकड़ कर लिखवा ली है। मैं तो मामूली-सा आदमी हूँ, मेरी बिसात है क्या जो उस विराट व्यक्तित्व को शब्दों में व्यक्त कर सकूँ। 'अरुणोदय की धरती पर' लिखने के लिये उन्होंने सायास कई महीने की बीहड़ यात्रा की थी। पुरानी यायावरी फिर से जाग उठी थी। यात्रा के दौरान नोट्स लेना, स्थानीय लोगों से लंबी बातचीत, पुस्तकें पढ़ना सब कुछ किया और तुरन्त लिखा भी। सन् 1998 से वे पूरी तरह से लेखन में लगे हैं। सभी पुस्तकें असम में बैठ कर ही लिखी हैं, जबकि परिवार मुम्बई में हैं। चूँकि विषय पूर्वोत्तर भारत है तो वहीं रह कर जानकारी जुटा लेना आसान लगता है। वैसे भी किसी भी कला की बात करें तो उसका स्फुटन हमेशा अपनी इच्छा से होता है दबाव में कलाएँ परवान कहाँ चढ़पाती है। लेखन कला तो इसमें सबसे दुरूह है।

सांगानेरिया जी असमी पढ़लेते हैं, समझ भी लेते हैं काम निकलने जैसी बोल भी लेते हैं। अरुणाचल की एक घटना का जिक्र करते हुए वे कहते हैं बोमडीला में किसी मारवाड़ी की दुकान पर मेरा परिचय लेखक कह कर करवाया गया तो उसने कोई तवज्जो नहीं दी। यहीं गोहाटी के काम का हवाला देकर सेठ साहूकार कहा जाता तो वो चाय के साथ नाश्ता तक भी करवाता। इस बात पर उन्हें गुस्सा तो नहीं आता, हँसी जरूरी आती है कि हमारी सोच कैसी है। लेखन के क्षेत्र में भी ईर्ष्या, द्वेष, खेमेबाजी कम नहीं हैं। फिर भी बुरे लोगों से ज्यादा अच्छे लोग हैं इसलिये वे आशावादी हैं ज्यादा सोचते नहीं हैं। यात्रा वृत्तांत लिखना श्रमसाध्य कार्य है। इसके लिये यात्रा करना व तथ्य एकत्रित करना होता है। कोरे शब्दों के जाल से पाठक को नहीं भटकाया जा सकता। सांगानेरिया जी की पुस्तकों में यह देखा गया है कि वे जिस क्षेत्र विशेष का विवरण कर रहे होते हैं उसे पाठक का हाथ थाम वहीं ले चलते हैं। सहजता व प्रवाह उनके लेखन की खूबी है और आत्मीयता स्वभाव। इसलिये पाठक और लेखक के बीच जल्दी ही नाता जुड़ जाता है। स्वाभाविक रूप से उनकी भाषा में अलंकार भले आते हों, पर जबरदस्त की ठेलमठेल नहीं करते। आगे की योजना स्पष्ट है कि जो पाँच राज्य बचे हैं मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, नागालैण्ड व मणीपुर इन पर लिखना है। असम व अरुणाचल पर काम कर चुके हैं। मेघालय व त्रिपुरा पर काम चल रहा है। कुछ हुआ है तो कुछ होना बाकी है। पूर्वोत्तर के सात राज्यों को सेवन सिस्टर कहा जाता है। एक भाई सिक्किम भी है। पाँचों पर ही लिखना है। जिस उम्र में वे हैं अर्थात् जीवन का उत्तरार्ध। तो जो करना है वो कितना हो सकेगा इसकी चिंता है। इतने काम के लिये स्वस्थ रहना व क्रियाशील रहना भी जरूरी है। आयु लंबी मिले पर शरीर साथ न दे तो क्या फायदा। गोहाटी में उनका घर है। जब जाते हैं तो वहाँ अपना घर खोलते हैं। वहीं से काम करना सहज लगता है। मेघालय में ससुराल है, कईबार जाते रहे हैं किन्तु उस वक्त लिखने का लक्ष्य नहीं था सामने। वहाँ की भाषा बिल्कुल अलग है 'खासी' भाषा असमिया या हिन्दी से जरा भी न मिलती। किसी स्थानीय व्यक्ति, जिसे कामचलाऊ हिन्दी आती हो को साथ रखकर अपना काम चलाते हैं। उन्होंने अरुणाचल पर लिखने के लिये जो बीहड़ यात्रा की यदि उसमें कोई सरकारी या गैर सरकारी सहायता मिलती तो और भी विस्तृत लेखन हो सकता था। जगहें छूट गईं, क्योंकि वहाँ जाना सुलभ नहीं हो पाया। अपना वाहन लेकर ही वहाँ जाया जा सकता था। उन्होंने सारी यात्रा बसों से कीं और बसों की अपनी सीमा होती है। वे गाँवखेड़े के भीतर नहीं जातीं। जबकि यात्रा विशेष को पड़तालने, परखने भीतर उतरना पड़ता है। फिर बसों के समय को ध्यान में रखकर वापस लौटना भी होता था। वैसे इसका उजला पक्ष यह भी उनके लेखन में स्पष्ट दिखता है। पैदल, बैलगाड़ी, साइकिल और बाईक में चढ़कर गाँवों में जाना, स्थानीय लोगों के साथ रहना, शुद्ध शाकाहारी होने के कारण मुड़ी चाय पर ही गुजारा कर लेना कोई आसान काम नहीं होता, किन्तु उस क्षेत्र विशेष की महीन से महीन बात को पकड़ना और लिखना जरूर उनके लेखन में उतर आया। दुर्गम जगहों पर ट्रेन, प्लेन से जाकर व होटलों के कमरों में बंद होकर लिखना और उनकी तरह चप्पे-चप्पे पर अपने कदमों के निशान छोड़ते हुए लिखना अर्थात् दोनों में जो मूल रूप से फर्क होता है उसे सुधी पाठक न पकड़े ऐसा तो है नहीं और यही कारण है कि सांगानेरिया जी के काम को कद्रदानों ने पहचाना है, पढ़ा है, परखा है और सराहा है। अरुणाचल की यात्रा के दौरान 'वनवासी कल्याण आश्रम' से संपर्क किया तो उन्होंने जहाँ-जहाँ उनके कार्यालय थे, वहाँ ठहरने की व्यवस्था करवा दी थी। भोजन तो हर जगह सामिष बनता था जो उनके उपयोग का नहीं होता। कुछ फल-फूल, दूध, चाय, मुड़ी, कुरमुरे या साथ रखा अल्पाहार ही काम आता था। यह जरूर होता कि उनके कार्यकर्ता स्थानीय लोगों से मिलवा देते जो काम हो रहा है उसकी जानकारी दे देते। इससे भी थोड़ी सहूलियत तो होती ही थी। सांगानेरिया जी जमीन से जुड़े व्यक्ति हैं। बिल्कुल सुलझे हुए, किन्तु सरलता व सहजता उनका विरल गुण है जो उनके व्यक्तित्व में भी दिखता है और लेखन में भी। यह जरूर है कि अब उनके सामने अपना लक्ष्य बिल्कुल स्पष्ट है इसलिये उसे प्राप्त करने के प्रयास उन्होंने तेज कर दिये हैं। वे अपने लेखन के जरिये समूचे पूर्वोत्तर राज्यों को पुस्तकों में लिपिबद्ध कर देना चाहते हैं और बड़ी पते की बात कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति में जब अहंकार आ जाए तो उसका पतन शुरू हो जाता है। मजे की बात यह कि इस परिवर्तन का अहसास खुद को तो होता ही नहीं।

पहले वे हाथ से लिखा करते थे फिर कम्प्यूटर सीख हिन्दी में लिखने का टाइप करने का कड़ा अभ्यास किया और अब उस पर सारा काम करते हैं। अपने लिखे ड्राफ्ट को 20-25 बार एडिट करते हैं। जब तक करते हैं तब तक पूरा संतोष न हो जाए। यकीनन इतना श्रम उन्हीं के बूते की बात है वो भी इस उम्र में, तो सफलता पर उनका हक बनता ही है।

ए-5 ओरिजन सेक्टर-1 चारकोप-कांदीवली
वेस्ट मुम्बई- 4000007

संजय सिंह बैस

बुनता हूँ रोज नए सपने

बुनता हूँ
रोज
नए सपने

समय से लड़ने की
नौकरी की चाहत के साथ
प्रेमिका के आँखों में
डूब जाने की
और
और भी बहुत कुछ...

लेकिन
आँख खुलते ही
बिखर जाते हैं
सारे सपने
झूठ की तरह।

माँ और ईश्वर के बीच संवाद

माँ पूछ बैठी ईश्वर से
सुगिया का क्या कुसूर
किसी को पता नहीं
आप ही बताओ
देशद्रोह का मुकदमा कैसा?
ईश्वर मुस्कुराए
बोले यही कुसूर है सुगिया का
कि वह बेकसूर है।

माँ बोली बेकुसूर होना
अपराधी होना है क्या ?

ईश्वर बोले-'बिल्कुल सच
बेकसूर हो, तो अपराधी घोषित कर जेल में डाल दिए जाओगे।''

माँ से रहा नहीं गया
एक सवाल और पूछ बैठी
'अगर हम अपराधी हो गए तो?''

कुछ नहीं होगा
नाम होगा
राजनीति में आने का
यह सुनहरा अवसर होगा।

निरपराध माँ
खुद को
अपराधी
सुगिया मानती रही।

दंश

आँखों में आँसू
देख दीवारें
बोल नहीं पा रहीं
महसूस कर रहीं
युवाओं के दर्द को

सत्ता के तमाशों से
उन्हें परेशान देख
बेचैन हो जाती दीवारें

बेरोजगारी का दंश
नहीं जाने देता उन्हें घर
त्यौहारों पर भी

बंद कमरे में
उनके आँसू देख
दीवारें भी नहीं रोक पाती
खुद को आँसू टपकाने से

घर की याद में सिसक
वह बिस्तर पर
औंधे मुँह
निराश सो जाता

शहर को जश्न में डूबा देख
तड़प उठतीं दीवारें
उनकी पीड़ा की एक मात्र साक्षी
सब कुछ कह जाती दीवरें।

ग्राम-मझिगवां पोस्ट-लमसरई
जिला-सिंगरौली, मध्यप्रदेश
मो.8085805286

संदीप नाईक

देवताओं लहसून खाओ

भगवान लहसून क्यों नहीं खाते आपके
मंदिर के ठीक सामने बैठी
गांव से रोज बीस पच्चीस किलो लहसून लाने वाली
सुशीला पूछ रही है मुझसे अभी जब मैं लेने रुका

सुबह सात बजे भैंसों का चारा पानी करके
बच्चों का खाना बनाकर
पति के साथ सायकिल पर चली आती है देवास
पति मजदूरी करने जाता है
और यह लहसून की पोटली लिए बैठी रहती है
सूरज डूबने तक
हेण्डपम्प का पानी पीते तीन बजा देती है
ठीक तीन बजे जब मन्दिर के भोग को बांटा जाता है
तो लाईन में खड़ी होकर घूंघट में छुप
प्रसाद खा लेती है
या कभी एकाध गर्म समोसा भी

रोज सुबह गेंदे के फूल बेचने वाली से
झगड़ती है जगह के लिए
दिन भर अचरज करती है कि
लोग सौ रूपये के हार खरीद लेते हैं

बगैर हील हुज्जत के
और बीस रूपये के एक किलो लहसून में भाव करते हैं

वह भगवान से पूछती है कि
हे खेड़ापति हनुमान!
तुम्हारे घर सब्जी नहीं बनती
किसी को कच्चे लहसून खाने की
सलाह नहीं दी डाक्टर ने
लोग प्रसाद में मिठाई नारियल के बदले
एक किलो लहसून खरीद लें
पुजारी जी भी बांट दें दो- कलियाँ भक्तों को
तो सब स्वस्थ और निरोगी काया वाले हो सकेंगे

खेत गिरवी है, प्याज फेंकना पड़े,
सोयाबीन में दाना नहीं पड़ा
सब्जियां हुई नहीं, अबकी पानी ही नहीं-
सूखे की मार पड़ी है- खेत सूखे हैं
गेहूं को एक पानी दे नहीं पाएंगे तो
चने का क्या

बस लहसून था बीस-तीस बोरी पर
भाव नहीं आज तक
गेंदे से सस्ता लहसून क्यों है
जबकि गेंदा तो एक ही दिन में सूख जाता है
भगवान भी खाते भी नहीं
फिर क्यों बिकता महंगा

भैयाजी पांच किलो ले जाओ
और मैं ले लेता हूँ एक सौ का नोट थमाकर
आंखें नीची है मेरी
कोई जवाब नहीं है
मेरे पास सुशीला के प्रश्न का

सोचता हूँ कब डॉक्टर पर्ची पर
लिखकर देगा-लहसून
कब भगवान सतनारायण की कथा में
जरूरी सामान होगा-लहसून
कब मिठाई की जगह मंदिर में चढ़ेगा- लहसून
कब सुशीला देवास आना बन्द करेगी
और बच्चों पर ध्यान देगी

ध्यान रहे मैं यहां सरकार से कुछ नहीं कह रहा स

मो.9425919221

दुर्गाप्रसाद झाला

मैं पढ़ना चाहता हूँ

मैं नहीं चाहता पढ़ना
बड़े-बड़े बोल बोलती
किताबों को।

मैं पढ़ना चाहता हूँ
उस पहाड़ को
चट्टानों से घिरा हुआ जो
अपने अंतस को पिघला
बहाता है तपती धरती को सरसाने
वाली जलधारा।

मैं पढ़ना चाहता हूँ
उस नदी को
जिसके आजू-बाजू
फैली हुयी है
सूखी रेत ही रेत
और जो जुटी रहती है
रेत को पानीदार बनाने में।

मैं पढ़ना चाहता हूँ
उस पेड़ को
जो तूफानों से जूझता
तना रहता है
और अपनी सारी महक
सौंप देता है उन फूलों को
जो सौंप देते हैं
वह सारी महक उस हवा को
जो घर-घर जाकर
महका देती है
घर-घर को।

और आखिर में
मैं पढ़ना चाहता हूँ
उस आदमी को जिसमें
बहती है
पहाड़ से निकली जलधारा
सूखी रेत को पानदार बनाती नदी
और मिलती है ज़मीन उस पेड़ को
जो अपनी सारी महक सौंप देता है
उन फूलों को
जिनसे महकती हुयी हवा
महकाती रहती है
घर-घर को।

हाँ, मैं नहीं चाहता पढ़ना
बड़े-बड़े बोल बोलती
किताबों को।

आदमी की आब

तुम हो तो-
क्या कुछ नहीं है
तुम्हारे पास।
आकाश है
उगा ही देता है
कभी सूरज
कभी चाँद
आँखों-आँखों में।

हवा
बहती दिशा-दिशा में
गमक-गमक ही
उठती है
साँसों-साँसों में!

नदी है
भिगोती रेत को
हो-ही उठती है
तरंगित
प्राणों-प्राणों में।

कविता है
होती हुयी लय में लीन
धड़कती रहती है
सपनों-सपनों में

मिट्टी है
मिट्टी में अंकुर है
अंकुर में फूल है
फूल में फल है
और फल पर
आदमी की आब है।

वह आब है तो-
क्या कुछ नहीं है
तुम्हारे पास! स

19, स्टेशन रोड
शाजापुर (म.प्र.) 465001

चित्रों में शेषेन्द्र शर्मा

चित्रों में शेषेन्द्र शर्मा

परिजनों के साथ

चित्रों में सांवरमल सांगानेरिया
બ્રહ્મપુત્રને
કિનારે કિનારે
थोड़ी यात्रा
थोड़े कागज
ज्योति की आलोक यात्रा
लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव
ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे
अरुणोदय की धरती पर
फेनी के
इस पार

कथाराग-16

समावर्तन के अधबीच कहानी केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ

विशेष सम्पादक : **मुकेश वर्मा**
सहयोग : **श्रीराम दवे**

कथाकार अखिलेश

सक्रमण काल के कुशल चितेरे - मूर्धन्य कथाकार अखिलेश

मुकेश वर्मा

कथाराग में इस बार एक अलग और अनोखे अंदाज के कहानीकार अखिलेश की बहुचर्चित कहानी ''हाकिम कथा'' को पढ़ना एक अद्भुत अनुभव से गुजरना है जिसपर हमारे समय के महत्वपूर्ण आलोचक अरूणेश शुक्ल की गंभीर समीक्षा कहानी के मर्म को बेहतरी से रेखांकित करती है। यूँ तो अखिलेश पर बहुत कुछ कहा-लिखा गया है लेकिन उनके बारे में चुनिंदा आलोचकों और रचनाकारों के वक्तव्यों को इस कहानी की रौशनी में पढ़ना बेहद जरूरी है। जैसे कि युवा आलोचक राजीव कुमार का यह कथन बहुत ही मुफीद और मुनासिब है कि कहानी हो, उपन्यास हो या संस्मरणात्मक कृति, अखिलेश एक अप्रतिम गद्यकार के रूप में सामने आते हैं। एक ऐसा गद्यकार जिसमें कोई रैटारिक नहीं है, कोई जॉर्गन नहीं है, दर्शन का आडम्बर नहीं है जिसे हर शब्द की अनंत क्षमता की अचूक पहचान है जिसके सहारे वह ऐसा वाक्य गढ़ता है जो प्रस्तुत सम्वेदना, विचार अथवा मंतव्य को उसी शेड्स में प्रस्तुत कर देता है जो कि अपेक्षित है। यही कारण है कि अखिलेश को पढ़ते हुए समृद्ध सम्वेदना एवं वैचारिक सचेतता के साथ साहित्यिक आह्लाद भी हम पाते हैं। ओड़िया के विख्यात लेखक सम्यप्रिय महालिक अखिलेश की रचना-प्रक्रिया पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि अखिलेश का कथा-कर्म सदैव आक्रामक एवं गतिशील है। सामाजिक मूल्य के साथ व्यक्ति-मूल्य का जो अनथक संघर्ष और आवाहन बार-बार लेखकीय सत्ता को काबू करना चाहते हैं, उसकी प्रामाणिक अभिव्यक्ति इन रचनाओं में हुई है। महानगर के जीवन-संघर्ष में दाम्पत्य प्रेम, छल, जिजीविषा आदि का जो शब्द-चित्र अखिलेश रचते हैं, वह अन्यत्र कहाँ ?....महाविनाशकारी बाजार और उपभोक्तावादी संस्कृति ने व्यक्ति की तमाम नैतिकताओं और सहजता को रौंद डालने में सफलता हासिल की है। संबंध की नई परिभाषा रचने में यह कामयाब हो गई है। यह संबंध आज पारंपरिक संबंध की सीमा में आबद्ध नहीं है। एक नया सामाजिक रिश्ता पुराने संबंध के सामने खड़ा हो गया है। उसने एक अदृश्य भविष्य का भयानक भूगोल निर्मित किया है। अखिलेश की अधिकांश कहानियों के पात्र इस सामाजिक द्वन्द्व का सामना करते हैं। युवा कथाकार शशिभूषण के मतानुसार एक कथाकार के रूप में अखिलेश आज किसी पहचान के मोहताज नहीं हैं। अपने लेखन की शुरूआत में ही उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को कुछ क्लासिक कहानियाँ दे दी थीं। धीरे-धीरे कथा कहने का उन्होंने अपना एक शिल्प भी हासिल कर लिया। कवि-आलोचक जितेन्द्र श्रीवास्तव की टिप्पणी है कि अखिलेश पिछले पैंतीस वर्षो से कहानियाँ लिख रहे हैं। उनके लेखन के साथ यह एक सुखद पक्ष जुड़ा हुआ है कि उनकी प्रतिभा को उनके लेखन के आरंभिक दौर में ही पहचान लिया गया। वे एक ऐसे कथाकार के रूप में स्वीकृत हैं जो अपनी कहानियों के लिए किसी दूर की कौड़ी पर भरोसा नहीं करते। वे धूल मिट्टी से लतपथ, प्रेम और छल, विश्वास और विश्वासघात, नैतिकता और अनैतिकता, शक्ति और सरलता, समरसता और साम्प्रदायिकता के द्वन्द्व में फँसे ठेठ हिन्दोस्तानी समाज के विश्वसनीय कथाकार हैं। उनकी कहानियों में भारतीय समाज के साँवलेपन की तरलता है तो अँधेरे की बेधक पहचान भी। युवा आलोचक अजय वर्मा का कथन है कि अखिलेश की कहानियों में बीती सदी के उत्तर दौर में बन रहे नए जीवन-यथार्थ की बहुरंगी छवियाँ हैं। अपने समय और समाज के बदलते यथार्थ की पेंचीदगी और जटिलताओं को उन्होंने बखूबी समझा है बिना किसी सैद्धांतिकी और रूढ़विचारधारा में बँधे। इसका मतलब यह नहीं कि उन्होंने विचारधारा से मुक्ति पाली है, दरअसल उनकी विचारधारा मनुष्य की वास्तविक मुक्ति की आकांक्षा से बनी है और बदलते समय की जो वास्तविकता है उसकी पहचान करना उनका उद्देश्य है। दूसरे युवा आलोचक अमिताभ राय अखिलेश की सामर्थ्य को इन शब्दों में आंकते हैं कि कहानीकार के रूप में अखिलेश की ताकत का ज्ञान दो बातों से होता है; पहली, बाद के कहानीकारों पर पड़ने वाले उनकी कहानियों का प्रभाव और दूसरा, कहानीकार के रूप में उनका विकास। अखिलेश के बाद की पीढ़ी के बहुत से कहानीकारों ने उनकी भाषा, शैली, संरचना और विवरण प्राचुर्य को अपनाया है। यह कहानीकार के रूप में उनकी स्वीकृति से ज्यादा उनके सामर्थ्य को प्रस्तावित करता है। वे आगे कहते हैं कि अखिलेश की कहानियों में विषय की पर्याप्त विविधता है। उन्होंने साम्प्रदायिकता, बेरोजगारी, राजनीति, दलित चेतना, विषमतामूलक विकास, मानवीय छल-छद्म आदि तमाम विषयों को अपनी कहानी का विषय बनाया है। विषय चाहे जो हों, परन्तु उनकी कहानियों के केन्द्र में निम्नवर्गीय अथवा निम्न मध्यवर्गीय जीवन है और उस पर पड़ने वाले प्रभावों का ही चित्रण किया है। ख्यात कवि-कथाकार प्रियदर्शन के अनुसार अखिलेश की कहानियों के शिल्प में अपनी तरह की वक्रता है लेकिन यह वक्रता कहानियों का रास्ता नहीं रोकती बल्कि उनके भीतर के उलझावों को कहीं बेहतर ढंग से सामने लाने में मददगार होती है। अखिलेश बहुत एहतियात से ये कहानियाँ बुनते हैं। उनके सूक्ष्म ब्यौरों पर नजर रखते हुए वे उनके व्यापक आशयों को ओझल नहीं होने देते। अचानक हम पाते हैं कि ये सिर्फ कहानियाँ नहीं हैं, समकालीन भारत में दलित-वंचित, स्त्री और अल्पसंख्यक समुदायों के भीतर बन रहे दुखों का समाजशास्त्रीय पाठ भी है। युवा कवि और आलोचक आशीष त्रिपाठी के मत में भी अखिलेश हमारे समय के सर्वाधिक समर्थ कहानीकारों में से एक हैं। बहुपठित और चर्चित। उत्तर आपातकालीन भारत, जिसमें उदारीकरण, भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, लोकतांत्रिक संस्थाओं-प्रकियाओं पर अलोकतांत्रिक कब्जे, राजनीति के अपराधीकरण जैसी अनेक घटनाएँ-प्रकियायें विस्फोटक रूप ले चुकी हैं जिनमें तंत्र अत्यंत धूर्त और चालाक होकर उभरा है तथा सामान्य जन हाशिए पर सिकुड़ते जाने को मजबूर हुआ है, जहाँ व्यवस्था में पक्ष और विपक्ष का आचरण और भाषा अद्भुत तरीके से पूर्वनिर्धारित है, ऐसे समय और समाज की पहचान अखिलेश की कहानियों से उभरती है। विलक्षण बात यह है कि उन्होंने प्रायः नए और अनछुए यथार्थ को चित्रित किया है और अपने समय के बारे में हमें अक्सर नई तरह से सोचने के लिए विवश किया है। वरिष्ठ आलोचक मधुरेश का मानना है कि अखिलेश की कहानियों का मूल वैशिष्ट्य उनकी पठनीयता में निहित है। इस मायने में वे अपने दौर के उन कुछ कथाकारों में हैं जिनके यहाँ पात्रों की एक भरी-पूरी दुनिया है- जीवंत और विश्वसनीय। अपने समय का प्रामाणिक भाष्य बनकर भी ये कहानियाँ कैसे भी अमूर्तन और गैरजरूरी जटिलता से अपने को बचाती हैं। अपनी पठनीयता और बतरस के रसायन के कारण अपनी प्रकृति में वे शुरू से आखिर तक कहानियाँ ही बनी रहती हैं।

साहित्यिक पत्रिका 'युग तेवर' के संपादक कमल नयन पांडेय का कहना है कि इधर के दशकों में अखिलेश की जो कहानियाँ प्रकाश में आई हें, उनमें इन दशकों में हुए परिवर्तनों के पदचिन्ह देखे जा सकते हें। उनकी ध्वनि सुनी जा सकती हे। धमक महसूस की जा सकती है। इस तरह संभावना बनती है कि आज का हमारा वर्तमान, भविष्य में जब इतिहास बनेगा तो अखिलेश की कहानियाँ हमारे इस कालखण्ड के समय, समाज, राजनीति, संस्कृति, अर्थतंत्र और जीवन को समझने का सृजनशील स्त्रोत बनेगीं। इस तरह की रचना-वृत्ति किसी भी रचनाकार को महत्वपूर्ण बनाती है। कुल मिलाकर यह कि अखिलेश हमारे समय के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। सुपरिचित कथाकार मनोज कुमार पांडेय भी उल्लेखनीय और प्रतिनिधि कहानीकार के तौर पर अखिलेश की यह खूबी मानते हैं कि उनकी कहानियाँ पाठकों से ही नहीं बात करती चलतीं बल्कि खुद उनके भीतर भी कई तरह के समानांतर संवाद चलते रहते हैं। वे खुद भी अपने चरित्रों से बतियाते चलते हैं, उनके भीतर चल रही उठापटक को अपने अखिलेशियन अंदाज में सामने लाते हुए।

अखिलेशियन अंदाज की यह विशिष्ट कहानी अब आपके सामने। क

मोबाइलः 94250-14166

हाकिम कथा

अखिलेश

पुनीत ने तलाक क्या दिया, गायत्री काफी कुछ बदल गई। जैसे कहाँ वह पौधों से बेहद लगाव रखती थी, पर अब उसके पास फटकती भी नहीं। उसे भ्रम होता पौधों में कोई हरा साँप हिल रहा हैं। साँप का ही भय नहीं, वह अपनी चारपाई दीवारों से एक हाथ दूर रखती, छिपकली न गिर पड़े। कभी-कभी वह सारी सीमाएं तोड़ देती, गर्मी न पड़ने पर भी आँगन में सोती कि कहीं कमरे की छत न गिर न पड़े। दिन में वह अकेली रहती और यही सब सोचती। दिन में भी चैन नहीं था।

पुनीत ने उसके दो चिढ़ाने वाले नाम रखे थे- गेंद और ग्रामोफोन। ये नाम प्यार के दिनों की सर्जना थे। गायत्री उछलती कूदती खूब थी, इसलिए गेंद, और बातूनी भी कम नहीं, इसलिए ग्रामोफोन। लेकिन अब उछलना-कूदना और बातूनीपन, सब गायब हो गए थे। सभी का ख्याल रखने वाली गायत्री को अब किसी से, यहाँ तक कि अर्पणा और संध्या दोनों बेटियों से भी लगाव नहीं रहा। वह मकान और उसके भीतर के कीमती सामानों के लिए ही चिंतित थी।

तलाक हो जाने पर पुनीत गायत्री को इन चीजों से बेदखल करना चाहते थे लेकिन उस दिन गायत्री को विषाद ने इतना पवित्र, निश्छल और सुंदर बना दिया था कि पुनीत के सामने प्रेम के पुराने दृश्य कौंधने लगे और भावुकता में उन्होंने गायत्री को यह सब उपहार दे दिया। मकान, सामान और दो बेटियाँ सौंपकर वह जिम्मेदारी से मुक्त हो गए थे।

बेटियाँ भी बाप पर गई थीं। वैसा दिमाग और वैसी ही आत्मा। गायत्री महसूस करती, शुरू से ही दुनिया में अँधेरा रहा है। यह सही नहीं था। दुनिया क्या, खुद उसकी जिंदगी में कभी उजाला था। उसने और पुनीत ने प्रेम-विवाह किया था।

पुनीत एक जिलाधिकारी की संतान थे। जिसने गुलाम और आजाद दोनों ही सूरतों में भारत सरकार की सेवा अच्छे-बुरे सभी तरीकों से निष्ठापूर्वक की थी। गायत्री अपने पिता की इकलौती संतान थी। बाप ने बनियान के कारोबार में अतुल धनराशि अर्जित की थी। पुनीत ने इस धन के कारण गायत्री से प्यार नहीं किया था। धन नहीं होता। तब भी वह गायत्री से प्यार करते। इतना जरूर है कि धन ने उनके प्रेम को टिकाऊ बनाया था, उनमें गायत्री से विवाह करने की लालसा पैदा की थी सोलह साल की गायत्री का विवाह धूमधाम से हुआ।

पर समय ने पुनीत के साथ बड़ा मजाक किया। इधर विवाह किया और उधर गायत्री की माँ ने गर्भधारण किया। समय आने पर गोल-मटोल गोरा-चिट्टा सुपुत्र पति को सौंप दिया, पुनीत के सपनों की इमारत चूर-चूर हो गई, उन्हें लगता गायत्री ने उनके साथ धोखा किया है। उसका दिल गायत्री से उखड़ गया। लेकिन बेटी देकर गायत्री ने पुनीत से क्षमादान पा लिया था। लगभग दो घंटे शब्दकोश देखकर पुनीत ने बेटी का नाम रखा था अपर्णा। दूसरी बेटी हुई संध्या। फिर तलाक ही हुआ। जाड़े का मौसम था। गायत्री के आँगन से धूप का आखिरी टुकड़ा भी खिसक गया। वह बुझे मन से भीतर आई और रजाई लपेटकर आराम से लेट गई। एक अजीब-सी गंध से भरने लगी वह। रजाई के भीतर आते ही उसे पास में पुनीत की अनुभूति होने लगती थी। अचानक वह भय से सिहर गई। हमेशा ऐसा ही होता रजाई उसे मादकता की नदी में डुबोकर खौफ की झाड़ी में फेंक देती थी। वर्तमान का अहसास खौफ की झाड़ी ही था उसके लिए। वह रजाई से डरती थी, लेकिन उसे छोड़ना भी नहीं चाहती थी। इसी सप्ताह पुनीत का जन्म दिन था। बेटियाँ जाने की जिद कर रही थीं, उसका भी मन था, बेटियाँ पिता से मिल आएँ। वैसे उसके न चाहने पर भी कौन रूकनेवाला था। रजाई के भीतर गायत्री का दिल डूबने लगा। बेटियाँ पुनीत की दूसरी बीवी मंदिरा को अपनी माँ बतलातीं। मंदिरा उन्हें लंबे-लंबे भावुक पत्र और कीमती सामान भेजकर इस रिश्ते को मजबूत बनाती, क्योंकि वह डरती थी, लड़कियाँ कहीं फिर गायत्री और पुनीत के बीच पुल न बन जाएँ। उसकी रणनीति थी कि बेटियों और गायत्री के बीच दूरी बढ़ती रहे।

गायत्री बेचैन हो गई। उसे गर्मी-सी लगने लगी। वह रजाई से बाहर आ गई। लेकिन बेचैनी का क्या करें ? वह आँगन में पहुँचकर चहल-कदमी करने लगी। कोई फायदा नहीं हुआ। पास के कमरे में आकर सोचने लगी, ''पुनीत को जन्मदिन पर क्या उपहार भेजा जाए?' महँगा सामान भेजकर साबित कर दे कि वह किसी से कम नहीं। या कोई मामूली चीज भेजकर वह दिखलाए कि उसे पुनीत में कोई दिलचस्पी नहीं, या कुछ भी न भेजकर उसके गालों पर तमाचा जड़ दे। उसे वे ज्यादतियाँ याद आने लगीं, जिसके कारण उसे पुनीत से घृणा हुई थी। और जिन्हें अस्वीकार करने पर पुनीत से उसके संबंध बिगड़े थे। पुनीत उसकी शालीनता और भोलेपन पर रीझे थे और उन्हीं की वजह से उन्होंने संबंध तोड़ा। पुनीत को जल्दी-जल्दी प्रमोशन मिले थे। क्लब, पार्टीयाँ वगैरह उनके लिए हवा-पानी की तरह जरूरी हो गए। वह दूसरों की बीवियों पर रीझने लगे और चाहते, दूसरा भी उनकी बीवी पर रीझे। किसी सहकर्मी, अफसर को गायत्री का सान्निध्य देकर उसकी लिप्सा को जगाते फिर हटा लेते। इस खेल में वे असीम आनंद का अनुभव करते थे। लेकिन बड़े अफसरों के लिए वे उदार थे। इतना की गायत्री की अनुदारता उन्हें काट खाती थी।

गायत्री नारी सुलभ गालियाँ देते हुए थककर कुर्सी पर बैठ गई। अहसास हुआ कि अब तक कल्पना की दुनिया में थी। पर अभी उसकी घृणा खत्म नहीं हुई। उसका चेहरा लाल होने लगा और वह फिर कल्पना की दुनिया में खो गई ''मुझे डांस नहीं आता था...चिपटना-सटना नहीं आता था.....''

पोस्टमैन की आवाज से उसकी तंद्रा टूटी। बेटियों के आने का वक्त हो गया था। वह उठ खड़ी हुई। अपर्णा के कमरे का चादर ठीक करने लगी। उसे लगा पायल बज रही है। उसने अपने को पायल की रूनझुन को पकड़ने में व्यस्त कर लिया। इस पायल पर वह विशेष ध्यान देती थी। गोया यह बताना चाहती थी कि पुनीत का स्थान अब उसके पैरों में है। उसका दिल थोड़ी देर पायल की आवाज पकड़ने में लगा रहा, फिर वह पानी लाने के लिए बोली। नौकरानी पानी लेकर आई, तो वह अलमारी में लगी किताबें गिन रही थी। घूँट भर पानी मुँह में रखकर चबाने लगी जैसे बच्चे खेल-खेल में करते हैं। इस काम में मन लगाने की कोशिश कर रही थी कि पानी गले के नीचे उतर गया। वह नाखून कुतरने लगी। कुछ देर कुतरा होगा कि बाहर से लेटरबाक्स खुलने की आवाज सुनाई पड़ी। अपर्णा थी।

छोटे कद, अच्छे-नाक-नक्श की अपर्णा गोरी, कुलीन और होशियार थी। वह भाँति-भाँति के कपड़े पहनती थी। डाक टिकटों का संग्रह करना उसकी हॉबी थी। युनिवर्सिटी से आकर घर में घुसने के पहले उसने लेटर बाक्स का ताला खोला। एक साइंस की पत्रिका थी, जिनका चंदा उसके पापा ने जमा किया था और जिसे वह कभी नहीं पढ़ती थी। उसने डाक लेकर ताला लगाया। वह चाहती थी, माँ को उसकी चिट्ठियाँ कभी न मिलें और माँ की हर चिट्ठी की जानकारी उसे हो। इस प्रबंध के लिए वह डाकिया को प्रतिमाह पंद्रह रूपए देती थी। घर में आकर उसने किताबें फेंक दीं और बिस्तर पर गिर पड़ी। उसकी भवें सिकुड़ गईं, ''चादर महक रहा है,'' आवाज में व्यंग्य था। उसकी बात को अनसुनी करते हुए गायत्री कमरे के बाहर आ गई। उसके जाते ही संध्या पहुँची। वह युनिवर्सिटी से जल्दी लौटती थी। संध्या की इच्छा हुई कि

वह भी बिस्तर पर गिर पड़े लेकिन यह अपर्णा का बिस्तर था। उसे अपनी इच्छा दबानी बड़ी। दोनों बहनों के बीच विशेष यह था कि अपर्णा संध्या को तुच्छ समझती और संध्या अपने को वैसा महसूस भी करती, क्योंकि कद में छोटी होने के बावजूद अपर्णा उससे अधिक सुंदर थी।

कद की कमी से भी कभी-कभी अपर्णा को बहुत दुख होता था। लेकिन अपने को यह दिलासा देकर संतोष कर लेती कि नई फिल्मी नायिकाएं भी कुछ खास लंबी नहीं। फिर रामबाण ऊँची हीलवाली चप्पलें तो कहीं गई नहीं थीं। नौकरानी दोनों के लिए काफी रख गई अपर्णा ने संध्या से कहा तू अपनी काफी उठाकर अपने कमरे में जा।''

एकांत पाकर अपर्णा ने अलमारी से परीक्षित की तसवीर निकाली और गौर से देखने लगी। परीक्षित कुछ दिन पहले तक उससे मूक प्रेम करता था और उसे कभी पसंद नहीं आया था। लेकिन समय की ताकत, वह आई.पी.एस. अफसर बनने वाली परीक्षा में पास हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि अपर्णा को उसका प्रेम अर्थवान लगने लगा। अपर्णा ने यह भी गणित लगाया कि सुंदरता की दृष्टि से उसकी लंबाई परीक्षित से बहुत ज्यादा है, इसलिए वह दबेगा। आई.पी.एस. पति दबेगा। वह अपने सामने दरोगाओं को एड़ियाँ उठाकर जयहिंद बोलते हुए देखने लगी। उसने परीक्षित की तसवीर अलमारी में उछाल दी और खुद मंसूबों के कुलाबे भरने लगी। वह देर तक बेखुदी में रहती लेकिन गायत्री की आवाज ने दिक्कत पैदा कर दी। वह नौकरानी से कह रही थी कि अपर्णा के मन की सब्जी पूछ ले, तब बाजार जाए। नौकरानी आई, तो अपर्णा झुंझला उठी। मगर वह फैशन को जड़ से जज्ब कर चुकी थी। वह जानती थी कि झुँझलाहट में चेहरा खराब हो जाता है इसलिए उसको जबान पर रख लेना चाहिए, ''सभी मम्मी लोग अपने बच्चों की पसंद जानती हैं लेकिन मेरी मम्मी- भई वाह! क्या कहने हैं...''

नौकरानी के चेहरे पर खीझ की रेखाएँ उभर आईं। वह झोला झुलाती हुई चली गई। गायत्री अकेली हो गई। अपर्णा के व्यंग्य से पैदा हु तिलमिलाहट से भरी थी वह। यकायक उसमें प्रश्न कौंधा, वह किसलिए जीवित है? उसे लगा इस संसार में कोई नहीं है। और वह बड़ी गहराई तक डर गई।

अजीब बात थी एक तरफ उसमें अकेलापन का ज्वार-भाटा तेज हो रहा था, दूसरी तरफ भीतर पुनीत और बेटियों के साथ बीते हुए सुखद दृश्यों की बरसात भी जोरों पर थी। बादलों में बिजली की तरह माँ-बाप की स्मृतियाँ चमकती-बुझती थीं। पुनीत नायक और खलनायक दोनों की तरह याद आ रहे थे, कभी-कभी चेहरे का एक हिस्सा नायक और दूसरा खलनायक की तरह लगता। धीरे-धीरे सब कुछ गड्मड हो गया। उसे लगने लगा, पुनीत उसके लिए सिर्फ पति हैं। वह गिड़गिड़ा उठी, ''पुनीत, मैं आपको तोहफा दूँगी। आपके जन्म-दिन पर मैं आ नहीं सकती लेकिन मेरा तोहफा पहुँचेगा। मेरा प्रेजेंटेशन जरूर पहुँचेगा पुनीत।''

पुनीत की कनपटी के बाल पकने शुरू हो गए थे। उन्होंने सुबह के वक्त घूमना भी शुरू कर दिया था।

वह ग्यारह दिसंबर को पैदा हुए थे। इस बार उन्होंने अपना जन्म-दिन नौ दिसंबर को मनाना तय किया। क्योंकि उनके चीफ दस को बाहर जाकर चौदह को लौटने वाले थे।

चीफ अपनी पत्नी के साथ आए थे। पार्टी अब ढलान पर थी। लोगों ने दूसरों की बीवियों से बात करने की गति बढ़ा दी थी। दो-चार लोग बाहर लॉन में उल्टियाँ करके ढुनक गए थे। संगीत की हल्की ध्वनि गूँज रही थी लेकिन अब किसी के कान उस तरफ नहीं थे...

अर्दली पुनीत के पास आया और कागज का टुकड़ा सामने कर दिया। अपर्णा और संध्या आई थीं। पुनीत के चेहरे पर प्यार और आंनद का गुलाबीपन छा गया। उसने चीफ से दो मिनटों की मोहलत माँगी।

बाहर आकर पुनीत ने दोनों बेटियों को गले से लगा लिया। हँसते हुए वह आने लगे। पुनीत दोनों को पीछे के दरवाजे से भीतर लाए बोले, ''देखो बेटा लोगो, तुम अपने सबसे अच्छे कपड़ों में तैयार हो जाओ। और हाँ, मम्मी के टेबल की नीचेवाली ड्रार में परफ्यूम्स रखे हैं। जल्दी करो। हरिअप्।'' ''पर पापा, पार्टी तो एलेवैंथ को थी?'' ''अँ हाँ...हम अपने बच्चों को सरप्राइज देना चाहते थे।'' ''ओ पापा...ऽ..ऽ...'' दोनों शेखी बघारने लगीं। ''अच्छा तुम लोग जल्दी से तैयार होकर आओ।'' कहकर वह चीफ के पास चले गए। मौका पाकर मंदिरा पुनीत के एक दोस्त के पास खिसक आई थी। पुनीत को देखते ही चीफ के पास चली गई। पुनीत ने फुसफुसाकर बेटियों के आने की खबर दी।

वह उल्लास और ममता को उभारने की कोशिश करने लगी। इसके अलावा वह जूड़ा वगैरह भी ठीक करने लगी। उसकी तैयारी देखकर लोगों को लगा, कोई वी.आई.पी. आनेवाला है। पुरूषों के नशे हिरन होने लगे। महिलाओं को मेकअप ताजा करने के लिए बाथरूम जाने की तलब महसूस हुई। अपर्णा और संध्या ने प्रवेश किया। वी.आई.पी. की आशंका से लोगों में जो बेचैनी पैदा हुई थी, उसकी जगह उत्साह की लहर दौड़ गई। अपर्णा उदास राजकुमारी-सी लग रही थी। अधिकांश महिलाएँ हीनता से ग्रस्त होकर कुपित हो गईं। कुछ अपर्णा की तारीफ करने लगीं, तो कुछ नुक्ता-चीनी पर गईं। संध्या ने पुरजोर कोशिश की थी लेकिन अपर्णा के साथ होने के कारण मामला जम नहीं रहा था। पुनीत ने दोनों को पास बुलाया। मंदिरा ने दोनों का हाथ लेकर छोड़ दिया और मुस्कराने लगी।

''ये मेरी बेटी अपर्णा है।'' चीफ भी पुनीत के अतीत से परिचित थे, इसलिए चौंक नहीं। ''अपर्णा, तुम सर से बातें करो।'' पुनीत अपर्णा को चीफ के पास छोड़ शेष से संध्या को मिलाने लगे।

यह पार्टी का आखिरी कार्यक्रम साबित हुआ जो बहुत देर तक चला। शाब्बाश...कहकर अपर्णा की पीठ सहलाते-सहलाते चीफ के हाथ थक गए थे। देखते-देखते श्रीमती चीफ की आँखें दुखने लगी थीं। उन्होंने पति को चलने के लिए कहा।

चीफ दंपति क्या गए, सभी को देर होने लगी। सब चले गए। उनके पीछे शराब की गंध बची थी।

पुनीत मंदिरा और बेटियों के साथ दूसरे कमरे में आ गए। शराब ने पुनीत और मंदिरा की नींद उड़ा दी थी। अपर्णा को भी चीफ ने चखा दी थी, फिर पार्टी जीतने का नशा- वह काफी मूड में थी। थकी हुई संध्या सोने चली गई। कमरे में वह तीनों रह गए थे। ''कहो बेटे पार्टी में कैसा रहा?'' मंदिरा ने पूछा।

अपर्णा हँस दी। नशे में होने के कारण उसके होंठ कुछ ज्यादा खिंच गए। कुछ देर बाद ही अपनी जगहों पर वापस आ सके। मंदिरा उसके बालों सहलाने लगी, ''मम्मी'', कहकर अपर्णा चिपट गई। उसने सूँघा, मम्मी ने कहीं ज्यादा अच्छा परफ्यूम तो यूज नहीं किया है? ''मेरे लिए क्या लाए हो बेटे?'' पुनीत की आवाज लरज रही थी। अपर्णा पास के कमरे में जाकर लौटी और एक पैकेट, पुनीत को पकड़ा दिया, उसमें से एक जरकिन निकला, ''थैंक यू माय बेबी।'' पुनीत की पलकें झुकी जा रही थीं, जबकि वह उन्हें उठाने का भरसक प्रयास कर रहे थे। ''पापा, ये अमेरिका का है।'' वह मुस्कराई लेकिन नशे के कारण उसका चेहरा वीभत्स हो गया, ''और ये मेरी ग्रेट मम्मी ने आपके लिए भेजा है।''

वह कैसेट था।

पुनीत भौंचक हो गए। मंदिरा चुप। अपर्णा बोलने को तत्पर हुई लेकिन दोनों के रूख ने उसे रोका। पास में टेपरिकार्ड रखा था। पुनीत ने लड़खड़ाते हुए जाकर कैसट लगा दिया और खुद वहीं कालीन पर बैठ गए। कैसट शुरू हो गया। गायत्री ने पुनीत से आधा घंटा तक कुछ कहा था। भीगी आवाज में भेद देनेवाले शब्द थे।

थोड़ी ही देर बाद, पुनीत रोने लगे।

अपर्णा ने चुप कराना चाहा, ''पापा...'' पुनीत ने हाथ उठाकर रोका। उनकी आँखों से गिरे आँसुओं की कतार टूट नहीं रही थी।

गायत्री बोलती जा रही थी।

कैसेट खत्म हुआ, तो पुनीत उठकर सोफा पर लेट गए। आँखों पर बाईं बाँह रख ली। मंदिरा और अपर्णा भी जहाँ थीं, वहीं पड़ गईं। कब वे सो गए, पता न चला। कमरे में केवल घड़ी और हीटर जल रहे थे। लग रहा था, अगले दिन से इस घर के लोग बदल जाएँगे, बेहतर हो जाएँगे।

सुबह नाश्ते के बाद से ही पुनीत क्रोध में जल रहे थे। उनका मन होता, गायत्री के पास पहुँचकर उसका गला दबा दें। उसकी आँखें निकाल लें। या उसका सिर दीवार से टकरा दें...

अपर्णा ने नाश्ते के दौरान बताया था कि एक डॉक्टर बरनवाल से मम्मी शादी करनेवाली है। डॉक्टर अकसर आते हैं घर पर। तभी से पुनीत उद्विग्न थे। हत्या तक के लिए उद्यत। डॉक्टर द्वारा गायत्री को स्पर्श करने मात्र विचार से उनमें कँपकँपी आ जाती। मांसपेशियाँ तन जातीं। कभी-कभी फड़कने लगतीं।

आफिस में भी वह अशांत रहे। घर लौटे, तो सबसे पहले अपर्णा और संध्या को अपने पास बैठाया। आनन-फानन प्यार-स्नेह करने के बाद उन्होंने पूछा, ''डॉक्टर की उम्र क्या होगी?'' संध्या ने उम्र बता दी। पुनीत फौजदारी के वकील की तरह डॉक्टर बरनवाल के रहन-सहन, मुखाकृति, डील-डौल, धन-प्रतिष्ठा आदि के बारे में सवाल करने लगे।

लड़कियों से जो जानकारी मिली, उससे उनके अंदर की आग और भड़क उठी। लड़कियों के अनुसार डॉक्टर बरनवाल आकर्षक व्यक्तित्व वाले शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वह बैडमिंटन के शौकीन थे और राजनीति में उनकी अच्छी घुसपैठ थी।

पुनीत को डॉक्टर पर गुस्सा नहीं आ रहा था। वह गायत्री को ही सबक सिखाना चाहते थे। उनका मन हो रहा था कि गायत्री को जलती सिगरेट से जलाएं।

उनकी दशा देखकर मंदिरा घबड़ा गई। उसने अपर्णा से विनती की कि पापा को खुश करो।

मंदिरा की चापलूसी में संध्या पहले बोल पड़ी, ''बस भी करो पाप्पा। अब हम लोगों को घुमाओ-उमाओ नाँ।''

क्षण-भर इधर-उधर देखने के बाद पुनीत ने मंदिरा से कहा, ''ड्राइवर से बोल दो,गाड़ी निकाले, तब तक तुम लोग तैयार हो लो।'' मंदिरा राहत की साँस लेती हुई बोलने चली गई। पुनीत ने सिगरेट सुलगा ली।

बेटियों के जाने बाद गायत्री खुशी में डूबने-उतरने लगी थी। उसे ऐसे कामों को निपटा लेने का मौका मिला था, जिन्हें करने में बेटियों की खुफिया निगाहें बाधक थीं। उसने डॉक्टर बरनवाल से प्रेम करने से लेकर शापिंग तक की। जिस दिन उसे मालूम हुआ, डॉक्टर विधुर है, वह उनसे प्रेम करने लगी थी। उसने पड़ोस और दो-तीन बाहर के लोगों को बुलाया। खाना खिलाया और बेटियों की तारीफ की। कहा की बेटियाँ उस पर जान देती हैं और वह बेटियों पर जान देती है। कुल मिलाकर वह खुश और उत्साहित थी।

अखिलेश

जन्म : 6 जुलाई 1960, सुल्तानपुर (उत्तर प्रदेश)

विधाएँ : कहानी, उपन्यास, संस्मरण, संपादन।

मुख्य कृतियाँ : आदमी नहीं टूटता, मुक्ति, शापग्रस्त, अँधेरा

उपन्यास : अन्वेषण, निर्वासन

संस्मरण : वह जो यथार्थ था।

संपादन : तदभव (साहित्यिक पत्रिका), श्रीलाल शुक्ल की दुनिया (श्रीलाल शुक्ल के रचनाकर्म पर एकाग्र), एक किताब एक कहानी (दस किताबों की एक श्रृंखला), दस बेमिसाल प्रेम कहानियाँ, रिश्तों की (रिश्ते-नातों पर आधारित ग्यारह किताबों की एक श्रृंखला)

सम्मान : श्रीकांत वर्मा पुरस्कार, वनमाली कथा पुरस्कार, इंदु शर्मा कथा सम्मान, परिमल सम्मान, अयोध्या प्रसाद खत्री पुरस्कार, स्पंदन सृजनात्मक पत्रकारिता पुरस्कार, राजकमल प्रकाशन कृति सम्मान : 'कसप'- मनोहर श्याम जोशी पुरस्कार, कथा-क्रम सम्मान।

संपर्क : 18/201, इंदिरा नगर, लखनऊ 226016 (उत्तरप्रदेश)

फोन - 91-522-2345301, 91-9415159243

लेकिन कई लोगों के पास पहुँचे पत्र ने सबकुछ बदल दिया। वह स्तब्ध और बदहवास हो गई। डॉक्टर बरनवाल, पड़ोसियों, रिश्तेदारों और खुद उसके पास वह पत्र पहुँचा था। उसमें डॉक्टर और उसको नाजायज संबंधों में लिप्त बताया गया था। उसे वेश्या कहा गया था।

शाम को वह डॉक्टर के पास पहुँची। डॉक्टर उसका इंतजार कर रहा था। उसे कंधे उचकाने की आदत थी। उसने आत्मीय लहजे में गायत्री से कहा, ''देखो, चूँकि मेरे किसी रिलेटिव के घर लेटर नहीं आया है, इसलिए यह तुम्हारे ही किसी परिचित की शरारत है।'' उसने कंधे उचकाए। ''मुझे मालूम है। मैं लैंग्वेज से ही जान गई। यह पुनीत की बदमाशी है।'' ''पर यह हुआ कैसे?'' डॉक्टर डर गया था। ''बेटियों ने जाकर बताया होगा।'' ''ओ गॉड !'' उसने फिर कंधे उचका दिए। ''लेकिन अब प्राब्लम ये है कि आगे क्या हो?'' गायत्री चाहती थी कि शादी हो और उसकी इच्छा थी कि प्रस्ताव डॉक्टर ही करे। पर डॉक्टर ने घाघपन से कहा- ''जो होना है, हो'' वैसे वह गायत्री का आशय समझ रहा था। ''मेरा मतलब यह नहीं। मैं चाहती हूँ...'' ''देखो गायत्री, लेटर्स इतनी जगह पहुँच गए हैं कि हमारे चाहने-वाहने से कुछ होनेवाला नहीं।'' भीतर ही भीतर वह अपनी चालाकी पर पुलका।

गायत्री ने सोचा, डॉक्टर परेशान होने के कारण इशारा समझ नहीं पा रहा है। उसने दूसरे दिन बात करना उचित समझा।

रास्ते में उसे आशंका हुई कि कहीं डॉक्टर उससे शादी न करे। सड़क पर चहल-पहल थी। नियान लाइट के उजाले में सब कुछ बड़ा अलौकिक-सा लग रहा था। लेकिन गायत्री डर से सिहर गई। वह रिक्शे पर सिकुड़ चली। उसका डर बढ़ने लगा। उसे चिंता हुई कि रिक्शा कहीं उलट न जाए। सामने आतीं कारों, बसों, ट्रकों आदि को देखकर उसे भयानक घबराहट हो रही थी। उसे महसूस होता, रिक्शा-वाला भाग जाएगा और गाड़ियाँ रिक्शा को कुचलती हुई उस पर चढ़जाएँगी। उसका दिल तेजी से धड़क रहा था। साँस की गति बढ़ गई थी। एक नौजवान साइकिल चलाता हुआ आ रहा था। वह डरी कि कहीं वह उसे 'रंडी' न कह दे।

किसी तरह वह घर पहुँची। रिक्शावान को किराया पकड़ाकर तेज-तेज चलने लगी। उसे रिक्शावान शातिर बदमाश लग रहा था।

ताला खोलकर वह घुसी और सोफा पर बैठकर हाँफने लगी। उसके सिर के कई बाल पसीने से गीले हो गए थे। थोड़ी राहत मिलने पर वह संदूक खोलने लगी। संदूक से एक बॉक्स निकाला। बॉक्स भी खोल दिया। सोने के गहने भरे थे। गहनों को वह दीवानी-सी देखने लगी। उसे राहत और ताकत मिल रही थी। जब भी बुढ़ापा, विपत्ति आदि सवाल उससे टकराते, ये गहने उसके लिए आरामदेह जवाब होते थे। उसने बॉक्स बंद कर दिया। खोला। बंद किया। खोल दिया। वह यह खेल कर रही थी कि कालबेल घनघनाने लगी। रास्ते की घबड़ाहट फिर सिर उठाने लगी। उसे संदेह हुआ, कोई उसका गहना लूटने आया है। रिवाल्वर लेकर खड़ा होगा। जल्दी-जल्दी उसने सब कुछ ठीक किया। संदूक में ताला लगाने के बाद वह उठी, तो कालबेल की चीख बढ़गई थी।

बेटियाँ थीं। दोनों बढ़कर माँ से लिपट गईं। गायत्री की तरफ से ठंडापन था। वे भीतर आईं। अपर्णा ने अटैची खोली और सामान निकालने लगी। वह गायत्री को बताती जा रही थी, ''ये पापा ने दिया है। ये मम्मी ने दिया है। ये संध्या के लिए हैं। ये मेरे लिए हैं।'' ''अपर्णा वो वाली बात बतलाओ ना'', संध्या ने इठलाते हुए कहा। ''कौन-सी?'' अपर्णा के चहरे पर दबी हुई मुस्कराहट और नकली जिज्ञासा थी। ''अरे बनो मत।'' ''सच्ची में नईं मालूम। बता दे न।'' वह मुस्कराहट रोक न सकी। ''मम्मी, अपर्णा की च्वाइस पापा ने इक्सेप्ट कर ली।'' ''कैसी च्वाइस?'' गायत्री न चाहते हुए भी बोली। ''परीक्षित आ .पी.एस. में आ गया था। मेरा दोस्त है। पापा बीच में यहाँ आए थे। बात पक्की कर गए। अगले महीने उन्नीस तारीख को डेट पड़ी है।'' अपर्णा उत्साह और संयम दोनों भावों का इस्तेमाल कर रही थी। ''लेकिन इतनी जल्दी तैयार कैसे होगी?'' गायत्री की उदासीनता बरकरार थी। ''मैरिज वहीं लखनऊ से होगी। पापा सब अरेंजमेंट कर लेगें।''

गायत्री को धक्का लगा। उसे तकलीफ हुई कि इतना कुछ हो गया और उसे जरा भी भागीदार नहीं बनाया गया। लेकिन उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। नौकरानी को बुलाकर कहा, ''बेटी लोगों को कुछ खिलाओ-पिलाओ।''

कुछ ही देर में नाश्ता और खाना दोनों हो गया। सब लोग सोने की तैयारी करने लगे। रात-भर गायत्री बुरे सपने देखती रही। सुबह कोहरे से ढकी थी। नौकरानी बड़ी देर से खटर-पटर कर रही थी। उन तीनों की नींद गायब हो चुकी थी लेकिन वे रजाई में पड़ी पैर हिला रही थीं। आखिर गायत्री उठी। नाश्ता किया और डॉक्टर बरनवाल के पास चल दी। वह बाँटे गए पत्रों से भयभीत हो गई थी। और जितनी जल्दी हो सके, डॉक्टर से शादी कर लेना चाहती थी। आज उसने तय किया था कि वह खुद ही शादी का प्रस्ताव करेगी।

बहुत दिनों बाद दोनों बहनों ने नाश्ता बिस्तर पर किया। अपर्णा ने संध्या को भी अपने बिस्तर पर बुला लिया था।

आफिस खुलने तक दोनों तैयार हो गईं। बैंक जाकर उन्हें पापा का दिया ड्राफ्ट भुनाना था। फिर शापिंग करनी थी। ''शापिंग का यह सिलसिला कब तक चलेगा, अपर्णा?'' ''जब तक तू मुझे यहाँ से भगा नहीं देगी। अच्छा यार, आओ, अब चलते हैं।'' ''जीजाजी को ले लें रास्ते में।'' ''कौन? अरे वो तुम्हारे एस.पी. साहब? वह तो बनारस ड्यूटी पर होंगे।'' दोनों के जाने-के थोड़ी देर बाद गायत्री वापस आ गई। वह फिर डरी थी। दिनोंदिन उसका डर बढ़ता जा रहा था। डॉक्टर ने उसके प्रस्ताव को टाल दिया था लेकिन अब वह डॉक्टर की मंशा भाँप गई थी।

वह पैरों को पेट से चिपकाकर बैठी थी। इस वक्त उसकी आत्मा बूढ़ी हो गई थी जिसकी हल्की छाप उसके चहरे पर भी दिखाई दे रही थी।

वह सोचने लगी। 'कुछ दिनों बाद यह घर पूरी तरह खाली हो जाएगा, तब? एक दिन वह बुढ़िया हो जाएगी।' वह काँप उठी। 'या पुनीत को बदमाश भेजे। वह रात में आकर उसे चाकुओं से गोद डाले। या मकान पर पेट्रोल छिड़ककर आग लगा दे तब? या वह रास्ते में जाती रहे, कोई बम फेंककर उसके परखचे उड़ा दे, तब...'

उसने नौकरानी को बाहर भेज दिया और संदूक खोलकर बॉक्स निकाला। चमकते हुए गहनों को देखने लगी। उसका वश चलता तो वह अपनी आँखें बॉक्स में टाँग देती। कुछ लोगों से संबंध बिगड़ने के बाद से सोना ही उसका दोस्त था।

शादी सलीके से हो रही थी। महँगे होटल में सारा प्रबंध था। होटल का खर्च एक व्यापारी उठा रहा था। पुनीत ने दंद-फंद करके दो मंत्रियों का भी आगमन करा लिया था। उसके आस-पास अनेक लोग मँडरा रहे थे। बहुत सारे लोग इस बात के लिए लालायित थे कि किसी तरह उनकी तसवीर मंत्रियों के साथ खिंच जाए। वर पक्ष वाले भी स्तरीय लोगों को लाए थे, लेकिन टक्कर में पुनीत भारी पड़ रहे थे। पुनीत ने इसी अफरा-तफरी में अपने ट्रांसफर की भी बात पक्की कर ली थी। इस जगह के लिए लोग पचास हजार तक देने के लिए तैयार रहते, पर काम नहीं होता। और उसने तीस हजार पर बात बना ली थी। वह दृढ़ता से बुदबुदाया, ''मैं दो सालों में ही फैक्ट्री लगवा दूँगा। अपर्णा के नाम।'' नशे का असर उस पर अच्छी तरह हो चुका था। उसकी इच्छा हुई कि वह जाकर दलाल के पैरों पर गिर पड़े जो मंत्रियों को यहाँ तक ले आया था। लेकिन उसने घुटनों के बल गिरकर मंदिरा के पाँव पकड़ लिए, ''मंदिरा, तुम मेरी बीवी नहीं, मेरी देवी हो। तुम्हीं ने मुझे इतने प्रमोशन दिलवाए। तुम्हीं ने मेरे ट्रांसफर करवाए। तुम्हीं ने मुझे हर बार चीफ के करीब पहुँचाया। तुम औरत नहीं, देवी हो, जल्दी ही तुम्हारा यह भक्त तुम्हारे चरणों में एक फैक्ट्री अर्पित करेगा। तुम बहुत बड़ी उद्योगपति बनो मंदिरा। तेरे भक्त का यह आशीर्वाद है...''

मंदिरा ने उसे असीम प्यार-दुलार से देखा और मत्थे पर झुक आए बालों को सहलाकर ठीक कर दिया। उसने पुनीत का गाल भी थपथपा दिया। फिर बोली, ''यह इमोशनल होने का टाइम नहीं है डार्लिंग! इतना अच्छा चान्स है। इसे एक्सप्लायेट करो।''

वैसे वक्त का सही इस्तेमाल अपर्णा कर रही थी। उसने सोचा, बाद में नामालूम इन लोगों से मुलाकत हो या न हो। खास-खास लोगों से घनिष्ठता

> उसे सबकुछ घिनौना लगने लगा। वह अपने को एक बेबसी से जकड़ी हुई महसूस करने लगी। साँस फूल आई। वह पस्त हो गई थी। उसे अपने उपर गुस्सा आने लगा, क्यों अपने को सोशल बनाया। जब तक घर में थी, ठीक था। पता तो नहीं चलता था परीक्षित क्या गुल खिला रहा है। लेकिन संयोग ही था कि उसे एक दिन लगा, इस तरह की जीवन-शैली की मियाद खत्म हो गई और अब कुछ समाज-सेवा होनी चाहिए। उसी सप्ताह समाज-सेवा शुरू कर दी। पुरस्कार वगैरह बाँटने लगी। वाद-विवाद प्रतियोगिताओं आदि में जज बनने लगी। इसी सामाजिकता में परीक्षित की पोल खुल गई थी। सबसे पहले उसे मालूम हुआ, परीक्षित बड़ा क्रूर आदमी है। रूपए लेकर तीन फर्जी एनकाउंटर कर चुका है। बड़े आदमियों और नेताओं से उसके ताल्लुकात प्रसिद्ध थे। उन्हें लाभ पहुँचाने में वह पटु था। उन सबसे अपर्णा को को तकलीफ नहीं हुई थी।

स्थापित करने का अभियान चला रखा था उसने। हालाँकि वह सफल नहीं हो पा रही थी। क्योंकि हर कोई संपर्क बढ़ाओ अभियान में व्यस्त था। इधर बहुत देर से वह फकीर को प्रभावित करने की कोशिश कर रही थी। क्योंकि उसने साफ-साफ देखा था कि बड़े-बड़े अधिकारी-उनकी बीवियाँ-यहाँ तक कि दोनों मंत्री फकीर से मुताअसर दिखलाई पड़ रहे थे। फकीर ने दोनों मंत्रियों को तीन-तीन अँगूठियाँ दी थीं। उसकी हसरत थी कि एक ही सही, अँगूठी उसे भी मिल जाए। अँगूठी तो नहीं मिली लेकिन उसका साहस और कौशल अंत तक अटूट रहा। यहाँ तक कि विदा के समय सारे सामान उसने खुद ही रखवाए। बातें करती और मशविरे लेती-देती वह विदाई हो गई। जाते-जाते उसने पुनीत, मंदिरा और गायत्री के सीने पर कीलें ठोंक दीं...

पुनीत ने सोचा था, जाते समय अपर्णा उनके प्रति भावुक होकर रोएगी। लेकिन अपर्णा ने उनकी आकांक्षा पूरी नहीं की। वे दुखी थे। मंदिरा अपमानित महसूस कर रही थी। उसे दुख था, विदा होते समय भी अपर्णा ने उसे किसी प्रकार का विशेष सम्मान नहीं दिया, ''डायन कितना तो चूना लगा गई।''

गायत्री शादी की रात ही वापस लौट आई थी। उसने अपर्णा की एक उँगली में अँगूठी देखी थी। उसके नग ने उसे परेशान कर रखा था। उसे यह अँगूठी अपने संदूक के भीतर रखे हुए बॉक्स की निधि लगी थी। कुछ देर वह टालती रही लेकिन मन माना नहीं, वह वहाँ से चल दी।

उधर अपर्णा विदा हो रही थी और इधर गायत्री ने संदूक खोला। बॉक्स नदारद। वह भागती हुई एक पड़ोसी के घर पहुँची और लखनऊ के लिए कॉल बुक कराया।

जब फोन पर बातें हुईं, तो अपर्णा को गए डेढ़घंटे बीत चुके थे।

उसके हाथ से फोन छूट गया। पड़ोसी मिस्टर नारायन घबड़ा गए, ''क्या हुआ? बेटी तो ठीकठाक है न?'' ''हाँ।'' वह घुटनों पर हाथ रखकर किसी तरह खड़ी हुई। चलते समय उसकी चप्पलें घिसट रही थीं।

घर आई, तो सिर में दर्द होने लगा था। हलक सूख गया था। उसमें कुछ नुकीला-सा धँस रहा था। लग रहा था, जैसे चेहरा चिचुककर लंबा हो गया है।

उसने नींद की गोलियाँ मँगाईं। एक गोली गटककर लेट गई। नौकरानी को उसने डपट दिया कि वह जगाए नहीं। लेकिन कुछ देर बाद संध्या ने उसे 'मम्मी-मम्मी' कहकर जगा दिया। वह लखनऊ से आ गई थी। क्योंकि पढ़ाई में पिछड़ जाने का डर था।

गायत्री का फूला किंतु बुझा हुआ चेहरा देखकर संध्या को जिज्ञासा हुई। उसने पलकें उठा-गिरा नौकरानी से पूछा।

नौकरानी ने संध्या को दूसरे कमरे में ले जाकर सबकुछ बता दिया। गहने वाली बात से संध्या स्तब्ध हो गई। उसे यकीन नहीं आ रहा था कि अपर्णा ने उसके साथ इतना बड़ा धोखा किया है। माँ के गहनों पर आखिर उसका भी अधिकार बनता था। वह अपर्णा के खिलाफ अपने को गायत्री के पक्ष में पाने लगी। वैसे भी उसे गायत्री का नींद की गोलियाँ खाना बड़ा प्यारा लग रहा था। अपर्णा को लेकर वह बार-बार कड़वाहट से भर जाती थी। तभी उसके दिमाग में मकान का विचार कौंधा। अपर्णा गहने ले गई , तो मकान उसे मिल सकता है। वह गायत्री के पास जाकर लाड़ जताने लगी। लेकिन गायत्री पर खास असर नहीं हो रहा था। उसे झपकी आ रही थी। वह आँखें बंद कर लेती, फिर झटके से खोलकर आस-पास देखने लगती। संध्या ने उस पर लिहाफ डाल दिया। इस काम से फुरसत पाकर कर वह अपर्णा के कमरे में आई। उसके होंठों पर कुटिल मुस्कराहट और आँखों में भयानक चमक थी।

उसने अपर्णा की अलमारी, मेज का ड्रार वगैरह सब कुछ तलाश डाला, अपर्णा के विभिन्न प्रेमियों द्वारा लिखे गए प्रेम पत्र नहीं मिले। बिखरी हुई किताबें चिढ़ा रही थीं। उसके दाँत भिंच गए, ''कुतिया ने एक भी लेटर नहीं छोड़ा। नहीं चखाती मजा।'' वह कसमसा रही थी, ''साली ने गहने गायब किये, लेटर्स भी गायब कर दिए। ओ गॉड एक ही लेटर दिला दो।''

वह थक गई। हताश-सी आई और लेट गई। लेटे हुए ही उसने नौकरानी से कहा, ''जरा दूध में ग्लूकान-डी मिलाकर देना।''

नौकरानी खाना पका रही थी। कूकर उतार दूध चढ़ा दिया। संध्या धीरे-धीरे शांत होने लगी। रात हो गई थी। घर उसे अजीब-सा लगने लगा। पहली बार उसे अपर्णा के न होने का अहसास हुआ। वह खालीपन महसूस करने लगी। लेकिन बुरा नहीं लग रहा था, क्योंकि उसे सब कुछ खुला-खुला-सा एकदम उन्मुक्त महसूस हो रहा था। आज उसने पहली बार अनुभव किया कि उसका भी व्यक्तित्व है। इन अहसासों के बीच अपर्णा के प्रति उसका क्रोध भी कम हो गया।

ग्लूकान-डी लेने के बाद उसने मुँह पोंछा। वह सोचने लगी कि उसमें स्फूर्ति आ गई है। माँ को देखा, सो रही थी। नौकरानी किचन में थी। फिर उसका क्या!

वह दबे पाँव दूसरे कमरे में रखे आदमकद आईने के सामने आ खड़ी हुई। अपने को निहारा और कलात्मक अँगड़ाई ली, ''मुझमें अपर्णा से ज्यादा सेक्स अपील है।'' शरीर के विभिन्न हिस्सों को ऐंठा-घुमाकर अपना जायजा लेने लगी, ''मूझे फिल्मों में काम मिल जाता, तो कितना फंटास्टिक होता। हंड्रेड परसेंट फंटास्टिक।''

उसने धीमे से उत्तेजक धुनों वाला रिकार्ड चला दिया। कमरा बंद करके वह धुन पर थिरकने लगी। वह कल्पना करने लगी, सिनेमा हाल के पर्दे पर उसकी फिल्म चल रही हैं। उसने थिरकने को नाचने में बदल दिया।

वह कब तक फिल्मलोक में भ्रमण करती रही और कब सो गई , उसे पता न चला। सुबह देर से उठी। देखा, गायत्री नाश्ता कर रही है। वह बेड-टी से फुर्सत पाई, तो गायत्री नींद की गोली गटक रही थी।

गेट के एक तरफ 'पुलिस अधीक्षक (नगर)' का बोर्ड टँगा था। दूसरी तरफ छोलदारी थी। छोलदारी में दो बक्सों के ऊपर हनुमानजी की तस्वीर रखी थी। ऊपर टँगी रस्सी पर दो लँगोट लटक रहे थे। तख्त पर कुछ सिपाही बैठकर भुट्टा खा रहे थे जिसे उन्होंने राह चलते एक ठेलेवाले से घुड़कर लिया था। गाड़ी की आवाज आई तो सभी ने भुट्टा रखकर सैल्यूट मारा। एक सिपाही आगे बढ़कर गेट खोलने लगा।

पेक्षा और उत्तर के रूप में अपर्णा की ठोढ़ी हल्की-सी काँप गई। कार भीतर आई। सामने के सीट पर बैठे सिपाही ने कार का दरवाजा खोला। वह साड़ी को चुटकी से हल्का उठाकर उतरी और आगे बढ़गई। ड्राइवर और सिपाही बाजार में खरीदे गए सामान उतारने लगे। वे इतनी तत्परता से सामान उतार रहे थे कि जैसे अभी कार भाग जाएगी।

अपर्णा बदामदे में आई, तो देर से बैठे दरोगा हरमान सिंह ने तगड़ा सैल्यूट ठोंका। उसने प्रत्युत्तर में सिर हिला दिया। थोड़ी देर बाद अपर्णा का बुलावा आया। दरोगा ने अपने बगल बैठे समाजसेवी दिवाकर चौबे को अपना ब्रीफकेस थमा दिया। चौबे के जाते ही वह जाँघों के बीच हाथ डालकार चिंतित हो गया। दिवाकर ने लौटकर ब्रीफकेस दरोगा को पकड़ाया। उसे हल्का पाकर उसका चेहरा खिल गया।

गेट के बाहर आकर वह मूँछ उमेठने लगा। खँकारकर थूक दिया, ''इंचार्जी मिल गई। अब सालों की डंडा कर दूँगा। हरामजादो...'' उसने समूची सृष्टि को माँ-बहिन की गालियाँ देते हुए मोटर साइकिल स्टार्ट की।

समाजसेवी दलाल के जरिए रूपया अपर्णा को मिलता था। इसे अपनी

महत्ता में वृद्धि मानती थी वह। लेकिन ऐसा अनायास नहीं होता था, बल्कि इसके पीछे परीक्षित का दिमाग था। रूपए भी आ जाते थे और उसका स्वाभिमान भी बरकरार रहता था।

रूपए रखकर अपर्णा ने खानसामा को आवाज दी और सोफा पर बैठ गई। खानसामा कान में बीड़ी खोंसता हुआ नमूदार हुआ। ''शरबत बिस्किट्स ले आओ। हाँ सुनो, अर्दली से बोलो कि मेमसाहब ने बुलाया है।''

वह बढ़े हुए नाखूनों के सौष्ठव को निहारने लगी। उसके चहरे पर आत्ममुग्धता का भाव खेल रहा था। ''मेमसाहब, आपने बुलाया मेमसाहब।'' अर्दली था। ''साब कब गए?'' ''थोड़ी देर हुआ मेमसाहब। देर से आने को बोले हैं मेमसाहब। खाना नहीं खाएँगे मेमसाहब।''

उसे बहुत तेज धक्का लगा। हूक-सी उठी। तिलमिलाहट से चेहरा लाल हो गया। उसने अर्दली को देखा, कहीं उस पर हँस तो नहीं रहा है। पर ऐसा कुछ नहीं था।

उसने जोर से निचला होंठ काटा। उसके नथुने फड़फड़ा रहे थे। वह फोन की तरफ झपटी और डायल करने लगी। हास्पिटल के डॉक्टर गंगाबख्श सिंह का नंबर था। वह मुख्य चिकित्साधिकारी थे।

डॉक्टर गंगाबख्श ने अपर्णा ही नहीं, शहर के कई अफसरों, नेताओं और धनवालों की बीवियों की नींद हराम कर दी थी। पत्रकारों के मध्य वह नर्सों के सप्लायर के रूप में चर्चित थे।

अपर्णा ने फोन पकड़ रखा था। उत्तेजना में उसके हाथ काँप रहे थे। लगता था, फोन पर ही वह क्रुद्ध शेरनी की तरह डॉक्टर गंगाबख्श पर झपट पड़ेगी। लेकिन उधर से आवाज आई, तो हाथ की थरथराहट बढ़गई। चेहरे पर खिसियाहट उभर आई। उसने फोन रख दिया था। उसने सोचा था, इस हरकत से प्रेस्टिज बिगड़ेगी। इस तरह तो छोटे घर की औरतें लड़ती हैं। हालाँकि वह डॉक्टर गंगाबख्श को कड़ा से कड़ा दंड देना चाहती थी लेकिन फोन रख दिया और छत निहारने लगी।

उसकी आँखों में अथाह दुख की लहरें हिलने लगीं। उसके सामने परीक्षित और किसी नर्स के अश्लील दृश्य घूमने लगे। वह साँस रोककर उन्हें विभिन्न मुद्राओं में देख रही थी।

उसे सबकुछ घिनौना लगने लगा। वह अपने को एक बेबसी से जकड़ी हुई महसूस करने लगी। साँस फूल आई। वह पस्त हो गई थी। उसे अपने उपर गुस्सा आने लगा, क्यों अपने को सोशल बनाया। जब तक घर में थी, ठीक था। पता तो नहीं चलता था परीक्षित क्या गुल खिला रहा है। लेकिन संयोग ही था कि उसे एक दिन लगा, इस तरह की जीवन-शैली की मियाद खत्म हो गई और अब कुछ समाज-सेवा होनी चाहिए। उसी सप्ताह समाज-सेवा शुरू कर दी। पुरस्कार वगैरह बाँटने लगी। वाद-विवाद प्रतियोगिताओं आदि में जज बनने लगी। इसी सामाजिकता में परीक्षित की पोल खुल गई थी। सबसे पहले उसे मालूम हुआ, परीक्षित बड़ा क्रूर आदमी है। रूपए लेकर तीन फर्जी एनकाउंटर कर चुका है। बड़े आदमियों और नेताओं से उसके ताल्लुकात प्रसिद्ध थे। उन्हें लाभ पहुँचाने में वह पटु था। उन सबसे अपर्णा कोई को तकलीफ नहीं हुई थी। लेकिन एक पार्टी में मिसेज बतरा ने जो थुल-थुल, अधेड़ और मूर्ख महिला थीं, सारा दारोमदार मिसेज तिवारी पर थोपते हुए कहा, ''मिसेज तिवारी कह रही थीं।'' वह इस बात के लिए पूरी तरह सतर्क थीं कि एस.पी.साहब कुतिया के पिल्ले बाँटते हैं। खरगोश भी बाँटते हैं। वो मिसेज तिवारी ही कह रही थीं।'' असली अर्थ अभी उनकी खामोशी में छिपा हुआ था। ''क्या मतलब?'' ''मैं नहीं कह रही। वो मिसेज तिवारी ही कह रही थीं।'' ''क्या कह रही थीं?'' अपर्णा ने झुँझलाकर पूछा। ''मिसेज तिवारी कह रही थीं कि इससे उनकी इमेज बड़ी खराब बन रही है। मिसेज तिवारी कह रही थीं कि वह उन्हीं घरों में पिल्ले और खरगोश देते हैं, जहाँ ब्यूटीफुल जवान गर्ल्स रहती हैं।''

इस तरह की बातों से उसे बहुत बार गुजरना पड़ा। धीरे-धीरे सब कुछ साफ होने लगा। परीक्षित ऐसे अवसर पर गाड़ी नहीं ले जाता था और देर से आता था। आज फिर देर से आने के लिए कहकर जाना और गाड़ी यहीं पर।

वह उखड़ने लगी। उसे लग रहा था, चीजें उसके हाथ से निकलती जा रही हैं। कहाँ उसने गणित लगाया था कि सुंदर न होने के कारण परीक्षित दबेगा और कहाँ से यह परवर्टेड एप्रोच? उसे ताज्जुब होता था कि कभी मूक प्रेम करनेवाला निष्ठावान प्रेमी इस तरह कैसे बन गया?

वह पुराने दिनों में खो गई। आँखें अधमुँदी हो गईं। वह सारे अच्छे-अच्छे क्षणों का स्मरण कर लेना चाहती थी। वह खोज-खोजकर दृश्यों को सामने लाने लगी। इन सबमें ऐसा कुछ था कि उसमें आत्मविश्वास, शक्ति और स्फूर्ति पनपने लगी। खोई हुई दृढ़ता वापस लौट रही थी...

उसका पुराना खूँखार जागने लगा, जो शादी के बाद खो गया था। वह परीक्षित के क्रियाकलापों को धराशायी करने की योजना बनाने लगी। उसकी आत्मा में कुटिलता लबालब भर उठी। उसने परीक्षित को करारी शिकस्त देने के लिए ताना-बाना बुनना शुरू कर दिया। उसके दिमाग में लगी जंग अब साफ हो गई थी। उसका दिमाग अब सान चढ़े चाकू की तरह चमक गया था।

वह सोचने में इतना मशगूल हो गई कि उसकी साड़ी की क्रीज खराब हो चली। होंठों की लिपस्टिक बेतरतीब हो गई। नाक के नीचे पसीने की कतार खिंच आई थी।

लेकिन उसे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था...हिम्मत हारने लगी। वह अपने ही रचे व्यूह में गिरफ्तार हो गई थी। वह हाँफने लगी। किसी तरह उठकर लाइट बुझा। वह सोने की कोशिश करने लगी।

रात थोड़ी ही देर में खत्म होनेवाली थी। बुरे सपनों ने अपर्णा को नींद में भी त्रस्त कर रखा था। बार-बार वह क्रोध और नकली मुस्कराहट के बीच जूझती हुई दिख रही थी।

डरकर वह जाग गई। कमरे में उजाला फैला हुआ था। परीक्षित जूता का फीता खोल रहा था। वह अनमनी बनी रही। साँस रोककर परीक्षित की पदचापों का इंतजार करने लगी। थोड़ी देर बाद वह आया और उसकी बगल में लेट गया। जल्द ही नींद में डूब चला वह। अपर्णा को लगा, परीक्षित नहीं उसकी बगल में कोई कुत्ता लेटा हुआ है। सड़ा हुआ जानवर। वह उठकर खड़ी हो गई और दाँत पीस डाली।

कमरे में चहलकदमी करने लगी वह। सोचना शुरू किया। बहुत कोशिश की लेकिन कोई रास्ता न दिखा। वह हार गई। 'पापा तुम्हीं कुछ करोगे' उसने तय किया, थोड़े दिनों के लिए पापा के पास चली जाएगी। उनसे कहेगी, कोई रास्ता निकालें। सब कुछ फिटफाट हो जाए।

पुनीत को पता चला की अपर्णा आ रही है, तो उसने संध्या को भी अपने पास बुला लिया। सोचा, दोनों बहनें मिल लेंगी। संध्या के पास तो अपर्णा जाएगी नहीं। माँ के गहने जो गायब हुए थे।

जैसे भूखे को निमंत्रण मिल गया हो, संध्या के प्रतिहिंसा की आँच से उबलने लगी। दो दिन पहले ही पापा के पास पहुँच गई, जिससे अपर्णा के पहले वह पापा को पटा ले।

एक मंत्री जी का आकस्मिक कार्यक्रम बन जाने के कारण परीक्षित नहीं आ सका। अपर्णा एक कपड़ा मिल के डायरेक्टर की गाड़ी से आई। उसे तीन सिपाही छोड़ने आए थे। संध्या यह देखकर जल-भुन गई। गोया, यह सारी शान-शौकत गहनों की वजह से थी।

अपर्णा ने संध्या को देखा, तो चौंककर सिहर गई। लेकिन अगले ही पल उसने अपने को सहज कर लिया था। वह सबसे पहले लगभग दौड़ती हुई संध्या के पास पहुँची और अपने वक्ष से लगा लेना चाहा लेकिन कुछ नाटी होने की वजह से वह खुद ही संध्या के वक्ष से जा लगी।

सब लोग भीतर आए। मंदिरा नाश्ते की व्यवस्था करने चली गई। पुनीत ने जो मंदिरा की तरह सजा-सँवरा था, आवाज को रोबीली बनाते हुए कहा, ''कहो बेटे क्या हाल-चाल हैं?''

''फर्स्ट क्लास पापा। संध्या के लिए लड़का पटा लिया है। हमारे यहाँ का रूरल एस.पी. अनूप कुमार, बेचारा कुँवारा है।''

हल्के शोरगुल के बाद मंदिरा, अपर्णा और पुनीत गंभीरता से बात करने लगे। संध्या वहाँ मौजूद होकर भी नहीं बोल रही थी। उसका दिल उसे कोस रहा था कि वह क्यों अपर्णा से ऐंठी थी। अगर वह भनक भी पा गई उसके ऐंठने की, तो हो सकता है कि बात बिगाड़ दे इतना अच्छा चान्स हाथ से निकल जाएगा। वह अपने को कोसने लगी। धिक्कारने लगी। 'बड़ी चली थी बदला लेनेवाली। पूरी पट्ठी की उल्लू हो।' चिड़चिड़ाहट में मुहावरा उल्टा कर दिया। वह चाह रही थी कि कितनी जल्दी बिगड़ी बात बना ले।

पुनीत को मंदिरा के साथ एक दोस्त के यहाँ पार्टी में शामिल होना था। उसके पहले भी कुछ काम निपटाने थे। तभी दोनों सजे-सँवरे थे। पुनीत ने अपर्णा से इसके लिए माफी माँगी। मंदिरा ने कुछ नहीं कहा। उसे शादी के समय की बेरूखी अभी तक याद थी।

दरवाजा बंद करके संध्या ने अपर्णा की गर्दन में बाँहें डाल दीं, ''बहुत स्वीट लग रही हो।'' ''चलो यार मस्का मत लगाओ। मैं वैसे ही अनूप कुमार के बारे में बता दूँगी।'' ''मस्का की बात नहीं। तुम जब आईं, तो मेरा सिर बड़ा तेज दर्द कर रहा था। पर तुम आईं क्या, मेरा सिरदर्द गायब। तुम कोई जादू जानती हो क्या?'' ''और नहीं तो क्या।'' ''तब तो जीजाजी पर खूब चलाया होगा।'' ''धुत्।'' वह इस तरह शरमा गई। जैसे सचमुच चलाया हो। संध्या उसकी चापलूसी में जुट गईं उसकी छाया सी हो गई। अपर्णा सबकुछ समझ रही थी। मन ही मन मुस्कराती कि ऐन वक्त पर क्या खूब आइडिया सूझा। अपने यहाँ के रूरल एस.पी. तीन बच्चों के बाप-बेचारे कुँवारे बन गए। उसकी इच्छा हुई कि ठहाका लगाकर हँसे लेकिन ऐसा न करके वह बोली, ''देखो मुझे तो मालूम भी नहीं था कि तुम भी यहाँ हो, इसलिए कुछ ले नहीं आई। जो लेना है, बताना। मैं यहाँ से ले दूँगी। अरे हाँ, वहाँ मम्मी की क्या न्यूज है?'' संध्या ने मुस्कराकर कहा, ''घूस मत दो, मैं वैसे सी बता दूँगी।'' ''अच्छा जड़ा। बहुत खूब। अच्छा डॉक्टर बरनवाल से उनका कैसा है?'' ''जब से उनका गहनों वाला बॉक्स गायब हुआ, तब से किसी से कोई रिश्ता नहीं।'' ''कैसे गायब हुआ?'' ''इसको तुमसे अच्छा कौन जान सकता है?'' बहुत चाहने के बावजूद संध्या अपने मनोभावों को जब्त न कर सकी। अपर्णा को शंका हुई कि कहीं रूरल एस.पी. के शादीशुदा होने वाली बात संध्या जानती है क्या, जो इस तरह बोल रही है। संध्या ने बोल तो दिया लेकिन पछता रही थी। उसने अपर्णा को फिर से खुश करने के लिए गायत्री के बारे में बताना शुरू किया, ''मम्मी की कुछ मत पूछो, नींद की गोलियाँ हमेशा उनके पास रहती हैं। नींद लाने के लिए नींद की गोली ली। नींद टूटी, फिर नींद की गोली। फिर तो फिर। हमेशा सोती रहती हैं। चेहरा गोलगप्पा की तरह फूला रहता है। और बुझा भी रहता है। आँखों के नीचे काला-काला-सा हो गया है। किसी से भी कुछ बोलती नहीं है। बस सोना। नींद की गोली ही उनकी फ्रेंड है। अगर यही हाल रहा, तो तुम देखना जल्द ही गॉड एक दिन उन्हें अपने पास बुला लेगा।'' ''फिर मकान का क्या होगा?'' ''उस पर पापा ने आँखें गड़ा रखी हैं।'' संध्या की आवाज में पापा के लिए रोष था, ''ये लो पापा-मम्मी आ भी गए।'' मंदिरा की साड़ी पर उल्टी के दाग थे। अनाज के छोटे-छोटे लोथड़े बिखरे थे। बदबू भी आ रही थी। पुनीत फोन पर पार्टी में न पहुँच पाने के लिए नर्म शब्दों में माफी माँग रहे थे। लेकिन चेहरे पर खीझ झलक रही थी। मंदिरा साफ-सुथरी होकर आई और अपने फूले हुए पेट पर हाथ फेरने लगी। उसकी पस्ती अब कम हो गई थी। रास्ते में ड्राइवर और अन्य लोगों के देख लेने के भय से वह चुप लगा गया था। लेकिन घर में आकर उसका गुस्सा भड़क उठा, ''बताओ पार्टी में क्या सोचते होंगे लोग? लेकिन यहाँ उल्टी करनी जरूरी थी। इतनी इंपोर्टेंट पार्टी मगर सब चौपट। क्या बताएँ। ओफ। माइंड साला अपसेट हो गया...अब टाइम भी नहीं है...क्या बताएँ...!'' वह मंदिरा को शातिर अपराधी के रूप में देख रहा था। मंदिरा इन सबसे बेखबर एक विज्ञापन की कमसिन लड़की की बिंदी देखने में जुटी थी। हालाँकि पार्टी की मौज से वंचित होने की कसक उसमें भी कम नहीं थी। अपर्णा को चिंता हुई, आज वह पापा से परीक्षित के बारे में बातें नहीं कर पायेगी। पापा का मूड बिगड़ा है। मम्मी को भी आज ही वोमिटिंग करनी थी। उसने सोचा कि फिलहाल वह थोड़ी देर के लिए इन लोगों से अलग हो जाए। वह लॉन में जाने के लिए खड़ी हुई। पुनीत कुछ पूछे, इससे पहले फोन घनघना उठा। लॉन में अपर्णा को बड़ा सुख मिल रहा था। आस-पास की हरीतिमा और आकाश का उड़ा-उड़ा सा नीलापन शांति और संतोष की रचना कर रहे थे। अपर्णा ने पुलकित होकर कहा, ''नेचर इज गॉड।'' मगर उसका अधिक समय प्रकृति की उच्चकोटि की प्रशंसा में नहीं बीत सका। जल्द ही वह परीक्षित को लेकर परेशान हो उठी। और वहीं घास पर लेट गई।

उसने एक अनोखा खेल खेलना शुरू कर दिया था। वह घासों को अपने चेहरे से रगड़ती और कल्पना करती, ये घासें नहीं किसी की मूँछें हैं। उसने इस खेल की कई पालियाँ खेलीं। इतना कि आसमान के तारे निकल आए। घासों की हरीतिमा कालेपन में तबदील होने लगी। उसने कहा, ''अच्छा ये मूँछें परीक्षित की हैं।'' और खेल में मशगूल हो गई। मगर जल्द ही उसका मन उचाट हो गया। उसे परीक्षित के कारनामे याद आने लगे, सोच-सोचकर उसमें भय और क्रोध का मिला-जुला भभका उठने लगा। ऊपर से वातावरण में टपकता अँधेरा- वह खौफजदा हो गई। पीछे से किसी ने पुकारा, वह चिल्ला पड़ती, यदि पुकारने वाले ने आगे न कहा होता, ''साहब ने बुलाया है।'' चपरासी रामकलप था। रामकलप जाने लगा, तो उसने कहा, ''रूको, मैं भी चलती हूँ।'' उसका डर अभी दूर नहीं हुआ था। वह पीछे-पीछे चल रही थी। वह निश्चय कर रही थी, ''अभी पापा के सामने सारा कुछ बोल दूँगी और कहूँगी, जैसे भी हो कुछ करें।'' वह पहूँची, तो पुनीत ने पूछा, ''क्यों बेटे कहाँ चल गए थे?'' उनकी आवाज में अब अशांति नहीं थी। शायद फोन पर अच्छी बातें हुई थीं। ''ऐसे ही पापा, लॉन में चली गई थी। पापा...'' उसकी गर्दन झुक गई, ''मैं इन दिनों बहुत टेंशन में हूँ पापा। पापा, मुझे आपसे कुछ बातें करनी हैं।'' ''कहो-कहो क्या बात है?'' पुनीत ने आत्मीयता से कहा। चपरासी बाहर चला गया। ''पापा ऐसा है...?'' ''पुनीत ने सिगरेट सुलगा ली और लंबा कश खींचकर अपर्णा को सुनना शुरू किया। सुनने के साथ वह अपर्णा के चेहरे को गौर से देख रहे थे। उसके चेहरे पर भावनाओं की आड़ी-तिरछी रेखाओं को साफ-साफ पढ़ा जा सकता था। आवाज कभी तेज हो जाती थी, कभी धीमी, गले की नसें फूल उठती थीं। उसने बोलना बंद किया, तो पाया, गला सूख गया है, लेकिन उठकर पानी पीने की हिम्मत नहीं थी। नौकर को बुलाना नहीं चाहती थी। पानी पीने का ख्याल त्याग दिया। वह पुनीत को सवालिया आँखों से देखने लगी। खामोशी छा गई। कमरे का हर हिस्सा दूसरों

से कटा हुआ लग रहा था। मालूम होता था, समय ठहर गया है। लगता अपर्णा के शब्द फर्श और छत के बीच टँगे हैं। कुछ क्षणों के लिए उस कमरे का अस्तित्व सारे संसार से अलग-अलग-सा हो गया था। पूरे माहौल में भारीपन फैला हुआ था। पुनीत ने सिगरेट जलाकर कहना शुरू किया, ''देखो बेटे, वैसे यह तुम दोनों का पर्सनल मामला है।'' वह काफी सोचकर-विचार कर बोल रहे थे, ''फिर भी चूँकि तुमने मुझसे कहा है, इसलिए कुछ कह रहा हूँ। दरअसल मेरिज के पहले ही तुम्हें इन सब चीजों पर सोच लेना चाहिए था। तुमने नहीं सोचा, मुझे इस बात पर हैरत है। दूसरी बात, तुम जो शिकायतें कर रही हो वे ठीक नहीं हैं। लोअर क्लास और मिडिल क्लास की औरतों की तरह ऐसी चीजों पर अधिक ध्यान दोगी, तो तुम्हारी लाइफ चौपट हो जाएगी। हमेशा के लिए टेन्शन पाल लोगी...'' ''पर पापा मैं क्या करूँ? मैं इस तरह नहीं रह सकती। परीक्षित...अब क्या कहूँ पापा।'' अपर्णा बहुत निरीह लग रही थी। पुनीत कुछ सोचने लगे। एक लंबी साँस छोड़ी, ''ठीक है, अगर तुम्हारी इतनी जिद है तो तुम्हारी शादी में जो होममिनिस्टर आए थे, उनसे कहकर परीक्षित का ट्रांसफर होमगार्ड में करा देता हूँ। वहाँ न पैसा रहेगा, न पावर। अपने आप दिमाग दुरूस्त हो जाएगा। बोलो ठीक है न? लेकिन सोच लो।'' अपर्णा ने घबराकर कहा, ''नहीं पापा, ऐसा मत करिएगा। परीक्षित ठीक है। बहुत अच्छा है।'' पुनीत के होंठों पर सुख और संतोष की मुस्कराहटें खेलने लगीं। उनकी सिगरेट बुझ गई थी। उन्होंने जला ली। क

प्रेम के उपयोगितावाद का क्रिटिक

अरूणेश शुक्ल

अखिलेश ऐसे कथाकार हैं जो समय व समाज में आने वाले परिवर्तनों को काफी पहले भाँप लेते हैं। वर्तमान की जमीन पर खड़े होकर भविष्य की तरफ पैनी, चौकस व सचेत निगाहों से देखने का कलात्मक लहजा अखिलेश की कहानियों की विशिष्टता है। संक्रमण काल के चित्रण, उस संक्रमण की गति की, प्रविधि तथा स्वरूप को समझने व वर्णित करने में अखिलेश सिद्धहस्त हैं। जबकि संक्रमणकालीन समय व समाज पर लिखना सबसे ज्यादा मुश्किल व जोखिम भरा काम है। स्पष्ट परिदृश्य व स्थापित मान्यताओं पर लिखने में एक सुविधा यह भी होती है कि उसकी समाजशास्त्रीय व्याख्या की जा सकती है। यही बात समाजशास्त्र की सीमा व सामर्थ्य दोनों बनती है। बदलाव की प्रक्रिया में ही बदलाव को लक्षित करते हुए उसकी प्रविधि व स्वरूप को समझ लेना साहित्य के हिस्से आया है। साहित्य को इसमें महारत हासिल है। साहित्य व समाजशास्त्र के इस फर्क को इससे भी समझा जा सकता है कि एक नया ज्ञानानुशासन होने व तमाम वैज्ञानिकता का दावा करने के बावजूद समाजशास्त्र ने कभी भी किसी आगत परिघटना की भविष्यवाणी नहीं की। चाहे वह दो-दो विश्वयुद्ध हो, आपातकाल हो या अन्य बड़ी राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय परिघटनाएँ। यद्यपि समाजशास्त्र में सामाजिक परिवर्तन एक अध्ययन शाखा है किंतु यह परिवर्तन के बाद का अध्ययन करता है। साहित्य समाजशास्त्र से आगे की चीज इसीलिए है क्योंकि उसके पास आगे के समय को समझने के उपकरण मौजूद हैं। प्रेमचंद ने भारतीय राष्ट्र-राज्य या समाज में लोकतंत्र के आगमन से पूर्व ही यह समझ लिया था कि लोकतंत्र के आगमन के साथ ही पूँजीवाद सांस्थानिक स्वरूप ग्रहण करेगा। इसी पूँजीवादी सांस्थानिक चरित्र के चलते शोषण को नए सिरे से सामाजिक व व्यवस्थागत आधार प्राप्त होगा। जिसके कारण आने वाले समय में शोषण खत्म नहीं होगा वरन उसका स्वरूप बदल जाएगा। सामाजिक संबंधों में बदलाव होगा और जमींदार-किसान का संबंध मालिक-मजदूर में रूपांतरित हो जाएगा। गोदान में गोबर मजदूर बन जाता है और होरी अंत में किसान की मौत मरता है।

ध्यातव्य है कि इस समूची परिघटना को प्रेमचंद अपने लेखन के अंतिम दौर में स्पष्ट तरीके से समझते हैं। अखिलेश भी आगत समय को अपनी कहानियों में पहचानते हैं, किंतु यह काम वह अपने लेखन के शुरूआती दौर से ही प्रारंभ कर देते हैं। अपनी कहानियों में अखिलेश उदारीकरण के बाद पनप रहे नव मध्यवर्ग के पतन की महागाथा रचते हैं। अखिलेश इस वर्ग की आजादी, महत्त्वाकांक्षा, भीतरी सड़ांध, दिखावेपन/बनावटीपन व सत्तालोलुपता को पूरी प्रामाणिकता व शिद्दत से वर्णित करते हैं। उनकी कहानियों में मध्यवर्ग का यथार्थ बहुस्तरीयता में मौजूद है। दरअसल अखिलेश अपनी कहानियों में पावर डिस्कोर्स रचते हैं और यह रचाव इस तरह का होता है कि अन्य सभी डिस्कोर्स इसी पावर डिस्कोर्स से जुड़े होते हैं। पात्रों की निर्मिति उनके विकास, कहन से लेकर कथा संरचना तक में हम इस रचाव को लक्षित कर सकते हैं। अगली शताब्दी के प्यार का रिहर्सल और हाकिम कथा अखिलेश की दो ऐसी कहानियाँ हैं जो मध्यवर्गीय खासकर उच्चमध्यवर्गीय यथार्थ को केंद्र में रखकर लिखी ग हैं। इन कहानियों में भारतीय मध्यवर्ग खासकर उच्च मध्यवर्ग या उच्चवर्ग में संक्रमण की प्रक्रिया में लगा मध्यवर्ग अपने पूरे कमीनेपन, दुचित्तेपन व नीचता के साथ उपस्थित है। अपने पूरे वितान में ये समाज में हो रहे बदलावों पर बड़ा विमर्श रचतीं हैं। ये बताती हैं कि सत्ता व सुख सुविधा लाभ अब जीवन का परिचालक नियम है। रिश्ते-नाते व संबंध तो अब पूर्ण रूप से पैसे और पावर से तय हो रहे हैं। हाकिम कथा शुरूआत में ही बता देती है कि गायत्री-पुनीत का तलाक हो चुका है। तलाक के बाद सभी का खयाल रखने वाली गायत्री को अब किसी से, यहाँ तक कि अपर्णा और संध्या दोनों बेटियों से भी लगाव नहीं रहा। वह मकान और उसके भीतर के कीमती सामानों के लिए ही चिंतित थी। एक माँ का अपनी बेटियों की बजाय संपत्ति की चिंता करना यह बड़ी विडंबनापूर्ण स्थिति है। बहरहाल पुनीत और गायत्री ने प्रेम विवाह किया था। पुनीत एक जिलाधिकारी की संतान थे जिसने गुलाम और आजाद दोनों ही सूरतों में भारत सरकार की सेवा अच्छे-बुरे सभी तरीकों से निष्ठापूर्वक की थी। आशय यह है कि अपने डीएनए में ही यह वर्ग उपनिवेशवादी मूल्यों का पोषक है। साथ ही सत्ता से चिपका रहने वाला विवेकहीन व मूल्यहीन वर्ग का है जो सभी तरीकों से अपना लाभ ही देखता है। यही कारण है कि प्रेम विवाह होने के बावजूद गायत्री का कारोबारी व धनाढ्य परिवार की इकलौती संतान होने ने उसके विवाह को टिकाऊ बनाया। जाहिर तौर पर प्रेम टिकाऊ नहीं था इसलिए गायत्री के यहाँ भाई के जन्म के कारण वह खुद को ठगा महसूस करता है। दो बेटियों का जन्म भी गायत्री व पुनीत के विवाह को टिकाऊ नहीं बना पाता। व अंततः दोनों का तलाक हो जाता है। अपर्णा व संध्या यह दोनों बेटियाँ भी बाप पर गई थीं। वैसा दिमाग और वैसी ही आत्मा। हाकिम कथा के पात्र अपना-अपना हित व स्वार्थ पूरा करने हेतु एक-दूसरे का उपयोग करना चाहते हैं। किसी भी पात्र को किसी दूसरे पात्र से आत्मीयता नहीं है। सब दिखावटी जीवन जीते हैं। पुनीत की दूसरी पत्नी मंदिरा दोनों लड़कियों को इसलिए दिखावटी प्रेम करती है कि वह कहीं फिर से पुनीत और गायत्री के बीच पुल न बन जाए। तो दोनों बेटियाँ अपना स्टेटस मेनटेन करती हैं पिता के पद और रूतबे से। पुनीत अपने प्रकाशन हेतु पत्नी बेटियों का उपयोग करता है। उसका रिश्ता ही गायत्री से इसीलिए टूटा था

क्योंकि गायत्री इस तथाकथित भद्र व सत्तालोलुप निकृष्ट समाज का हिस्सा नहीं बन पाई थी। उसे वे ज्यादतियाँ याद आने लगीं, जिसके कारण उसे पुनीत से घृणा हुई थी। और जिन्हें अस्वीकार करने पर पुनीत से उसके संबंध बिगड़े थे। पुनीत उसकी शालीनता और भोलेपन पर रीझे थे और उन्हीं की वजह से उन्होंने संबंध तोड़ा, पुनीत को जल्दी-जल्दी प्रमोशन मिले थे। क्लब, पार्टियाँ वगैरह उनके लिए हवा-पानी की तरह जरूरी हो गए। वह दूसरों की बीवियों पर रीझने लगे और चाहते दूसरा भी उनकी पत्नी पर रीझे। किसी सहकर्मी अफसर को गायत्री का सान्निध्य देकर उसकी लिप्सा को जगाते फिर हटा लेते। इस खेल में वे असीम आनंद का अनुभव करते थे। लेकिन बड़े अफसरों के लिए वे उदार थे। इतना कि गायत्री की अनुदारता उन्हें काट खाती। दरअसल यह वर्ग हर चीज का उपयोग कर अपनी स्थिति को मजबूत करता है। सत्ता व पोजीशन हेतु यह हर नैतिक-अनैतिक तरीके अपनाता है। इसके लिए साध्य-साधन का सवाल को मायने नहीं रखता। इसका दैनंदिन जीवन, उत्सव, शोक, नैतिकता आदि सारी बातें इसी से तय होती हैं। हालत यह है कि पुनीत ग्यारह तारीख को आने वाला बर्थडे नौ तारीख को ही मनाता है। क्योंकि दस से चौदह तारीख तक चीफ बाहर रहेंगे। इन पार्टियों से ही इस वर्ग की असली सड़ाँध व पतन का पता चलता है। पेज थ्री जैसी फिल्म तो बहुत बाद में आई। अखिलेश की ये कहानियाँ उस फिल्म का पूर्व पाठ रचती हैं। कहानी में पार्टी के दौरान हर स्त्री दूसरे से ज्यादा खूबसूरत दिखने की कोशिश करती है, अधिक सुंदर अपर्णा से तो हीनता महसूस करती हैं। प्रायः सब की सब चीफ को वे अपने से बड़े अधिकारियों को अपने रूप व देह से प्रभावित कर लाभ उठाना चाहती हैं। हालत यह है कि मंदिरा व पुनीत की दोनों बेटियाँ भी खुशी-खुशी इस कार्य में शामिल हैं। पुनीत दोनों बेटियों को जब पास बुलाते हैं तो मंदिरा उनका हाथ छोड़ देती है और मुस्कुराने लगती है। संकेत यह कि उसे पता था अब क्या होगा? पुनीत अपर्णा को चीफ के पास ले जाकर परिचय कराकर कहता है सर यह मेरी बेटी अपर्णा है और कहता है, अपर्णा तुम सर से बातें करो। आशय यह कि पिता और माँ अपने स्टेटस को बढ़ाने व मेन्टेन करने हेतु अपनी पुत्रियों को खुद ही अधिकारियों के सामने परोस देते हैं। नतीजतन, शाबाश कहकर अपर्णा की पीठ सहलाते-सहलाते चीफ के हाथ थक गए थे। जैसा कि होता है चीफ के जाते ही सबको देर होने लगी और सब चले गए। पीछे शराब की गंध बची रह ग । वस्तुतः इस नवनिर्मित उच्च मध्यवर्ग की स्कूलिंग ही दुम हिलाने वाली मानसिकता में हु है। यह इतना समझौतावादी है कि पद-प्रतिष्ठा के लिए अपनी घर की इज्जत तक को परोस सकता है। इसको लेकर उसे को ग्लानि नहीं अपितु जो ऐसा नहीं करता उसे पिछड़ा हुआ माना जाता है। जैसा कि गायत्री के साथ हुआ। अखिलेश जो पावर डिस्कोर्स रचते हैं उसमें यह है कि हर पात्र एक दूसरे पात्र पर अपना आधिपत्य चाहता है। जो उसकी पोजीशन दिलाने में मददगार हो उसके हर अनैतिक कृत्य को खुशी-खुशी स्वीकार करे, उसमें सहभागी हो वह तो साथ है अन्यथा शत्रुवत है। यह व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के सामने प्रतिद्वंद्वी के रूप में खड़ा करती है और इस गलाकाट प्रतिद्वंद्विता की प्रक्रिया में नैतिकता का प्रश्न पूरी तरह गौण हो जाता है। जीवन में जगह उसी की है जो पावर पैसा दिला सके। इस संबंध भरी व्यवस्था को जीवन में सहज रूप व प्रक्रिया में स्वीकार कर सके। अखिलेश की कहानियाँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि इस व्यवस्था में व्यक्ति व्यक्ति नहीं अपितु लाभ कमाने का उपकरण है। व्यक्ति से वस्तु में रूपांतरण काफी खतरनाक है। अगली शताब्दी के प्यार का रिहर्सल को इस कहानी के साथ पढ़ने से स्थितियाँ और ज्यादा स्पष्ट होती हैं। हाकिम कथा में अपर्णा-संध्या में प्रतिद्वंद्विता है, तो अगली शताब्दी के प्यार का रिहर्सल में दीपा का हमउम्र लड़कियों से। इन दोनों ही कहानियों में अखिलेश ने स्त्री-पुरूष संबंध के बदलते स्वरूप व प्रेम की बदलती अवधारणा या कहें कि प्रेम की उपयोगितावाद अवधारणा पर बड़ा विमर्श रचा है। इन दोनों कहानियों में अखिलेश प्रेम व उसके बदलते स्वरूप के माध्यम से सामाजार्थिक बदलावों, उसकी गति की उन बदलावों के इंट्रेस्टस को हमारे सामने खोलते हैं, दरअसल इन दोनों ही कहानियों में स्त्री-पुरूष संबंध व प्रेम एक पावर डिस्कोर्स है जिसके अपने पावर इंट्रेस्ट हैं। हाकिम कथा की अपर्णा संध्या तथा अगली शताब्दी के प्यार का रिहर्सल की दीपा यह तीनों ही ऐसी स्त्री की प्रतिनिधि हैं जिनके लिए स्टेटस, पैसा और पावर ही सब कुछ है। शादी-विवाह उस पावर व स्टेटस को पाने का जरिया। प्रेम भी। अपने संपूर्ण चरित्र में तीनों मध्यवर्गीय आधुनिक स्त्री की पूरक हैं। इसके लिए वह प्रेम और विवाह का चयन खुद करती हैं और अनिवार्यतः यह चयन योग्य पुरूष या साथी का नहीं अपितु धन और सत्ता का होता है। मजेदार व विडंबनापूर्ण यह है कि दोनों ही कहानियों में लड़कियों के पिता भी पिता न होकर ऐसे लिजलिजे व गिरे हुए चरित्र के रूप में हैं। दीपा का पिता दीपा को लेकर इस हिकमत में था कि दीपा की शादी किसी तरह पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष के भतीजे से हो, ताकि टिकट मिलने की उम्मीद और बढ़जाए। इस जुगत के लिए वह काफी मशक्कत भी कर रहे थे। आशा थी कि अध्यक्ष जी के भतीजे से दीपा की बात पक्की हो जाएगी। अर्थात् दीपा का पिता अपने पावर इंट्रेस्ट को पूरा करने के लिए दीपा की शादी को माध्यम बनाता है वहीं विपिन भी अपर्णा व अपनी पत्नी को चीफ के सामने परोसकर अपना पावर इंट्रेस्ट ही पुलकित करता है। अब ऐसा नहीं है कि सिर्फ पिता या बेटियाँ या स्त्री पात्र ही एक दूसरे का उपयोग करते हैं। दरअसल हर पात्र यह करता है। अगली शताब्दी के प्यार का रिहर्सल के जितेन्द्र की प्रेम संबंधी अवधारणा ध्यातव्य है- प्यार के बारे में जितेन्द्र की धारणा थी कि वह तभी सफल होता है जब प्रेमी प्रेमिका से श्रेष्ठ साबित हो जाए। लिहाजा दीपा को हीन सिद्ध करने के लिए उसने उसकी खामियों की खोजबीन शुरू की। उसकी पकड़ में दो सूत्र आए लंबाई और अंग्रेजी। यानी अब तक जो धारणा थी कि प्रेम में बराबरी होती है या वह आपको स्वतंत्र करता है, आत्मविश्वास देता है या कि व्यक्तित्व को निखारता है, यह उलट चुकी है। पावर डिस्कोर्स का मतलब है आधिपत्य स्थापित करना। अब चूँकि प्रेम एक पावर डिस्कोर्स में रूपांतरित हो गया है; एक हाइली सोशियो पॉलिटिकल फेनामिना है अतः उसमें भी वर्चस्व स्थापित करने की चाह अंतर्मुक्त हो गई है

> **अगली शताब्दी के प्यार का रिहर्सल और हाकिम कथा अखिलेश की दो ऐसी कहानियाँ हैं जो मध्यवर्गीय खासकर उच्चमध्यवर्गीय यथार्थ को केंद्र में रखकर लिखी ग हैं। इन कहानियों में भारतीय मध्यवर्ग खासकर उच्च मध्यवर्ग या उच्चवर्ग में संक्रमण की प्रक्रिया में लगा मध्यवर्ग अपने पूरे कमीनेपन, दुचित्तेपन व नीचता के साथ उपस्थित है। अपने पूरे वितान में ये समाज में हो रहे बदलावों पर बड़ा विमर्श रचतीं हैं। ये बताती हैं कि सत्ता व सुख सुविधा लाभ अब जीवन का परिचालक नियम है। रिश्ते-नाते व संबंध तो अब पूर्ण रूप से पैसे और पावर से तय हो रहे हैं।**

साथ ही सोशियोपॉलिटिकल व इकोनॉमिक इंट्रेस्ट पूरी करने की लालसा भी। जितेन्द्र व दीपा दोनों एक दूसरे पर वर्चस्व चाहते हैं। दीपा घोड़ी की लगाम अपने हाथ में रखना चाहती है, उसे तेज नहीं दौड़ने देना चाहती। इसलिए बदले में वह भी पाश्चात्य गाने, संगीत और उसकी पर्सनालिटी आदि का सहारा लेकर जितेन्द्र को हीन साबित करना चाहती है। वस्तुतः प्रेम दोनों में है ही नहीं। एक ने भविष्य के आई.ए.एस. व उससे जुड़े रूतबे व सुख-सुविधाओं से प्रेम किया था तो दूसरे ने उसके बाप की दौलत व हैसियत से। यानी प्रेम व स्त्री-पुरूष संबंध पूरी तरह से अर्थ व सत्ता केंद्रित हैं।

हाकिम कथा में भी अपर्णा-परीक्षित का रिश्ता परीक्षित के आई.पी.एस. हो जाने के बाद ही स्वीकृत होता है। अब यहीं रूककर उस बहस को व फेनामिना को समझने की जरूरत है जिसे अखिलेश प्रेम व संबंधों के बहाने सामने लाने की कोशिश करते हैं। चूँकि यह प्रेम जैसा नाजुक मामला है जिसके बारे में बचपन से ही हमें बहुत सारी पवित्र व उच्च धारणाएँ पढ़ाई व बताई जाती हैं। ऐसे में कहानियों में यह दिखाना कि वह प्रेम अस्तित्व में ही नहीं है, किसी भी पक्ष से नहीं, चाहे वह स्त्री हो या पुरूष-काफी जोखिम भरा काम है। स्त्री विमर्श के इस दौर में स्त्री पात्रों को पुरूष पात्रों की तरह सत्तालोलुप व उनकी उपभोगवादी मानसिकता का चित्रण दिखाना प्रथम.ष्टया आपको पॉलिटिकली गलत समझे जाने के खतरे से रूबरू कराता है। अखिलेश यह खतरा उठाते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष इन कहानियों का जो है, वह है अखिलेश की स्त्री पक्षधरता। सभी स्त्री पात्रों व तमाम पुरूष चरित्रों और स्थितियों व घटनाओं के माध्यम से वे यह बताते हैं कि यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था नए हथियार के साथ ज्यादा चालाक व शातिर तरीके से स्त्री के खिलाफ खड़ी हुई है। उदारवाद का मुखौटा लगाए यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को यह वर्चुअल संतुष्टि तो देती है कि वह स्वतंत्र है और अपने देह व रूप तथा बुद्धि का इस्तेमाल अपने जीवन को बेहतर बनाने, पावर व पोजीशन प्राप्त करने हेतु कर रही है, उस पर उसका खुद का अधिकार है। किंतु इस पूरी प्रक्रिया में आज बाजार व यह व्यवस्था स्त्री को नए सिरे से सेक्सुअल आब्जेक्ट में रूपांतरित कर दे रही है। फैशन व पावर के नाम पर स्त्रीवाद द्वारा देखे गए विराट् स्वप्न शाश्वत भगिनीवाद को स्त्रियाँ खुद ही खंडित करते हुए एक-दूसरे की विरोधी व प्रतिस्पर्धी बन जाती हैं। चूँकि यह बाजारवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को मात्र देह में रिड्यूस कर देती है वह उसकी चेतना को भी देह से ही जोड़कर सीमित कर देती है। और देह का उपयोग स्त्री पावर व पैसे के लिए ही करे ऐसा उसके दिमाग में तमाम माध्यमों के द्वारा स्थापित किया जाता है। यानी स्त्री चेतना का जो विकास सामाजिक सरोकारों व राजनीतिक संदर्भों के रूप में होना था वह नितांत वैयक्तिक सुख-सुविधाओं, सेक्स, रूप, फैशन आदि तक ही सीमित कर दी गई । यह कैसी व्यवस्था है जो माँ को बेटी के, बहन को बहन के तथा एक स्त्री को दूसरी स्त्री के विरोध में खड़ा करती है। देह के व पावर के नशे की उत्सवधर्मिता में सामाजिक राजनीतिक सोद्देश्यता व चेतना सिरे से तिरोहित कर दी गई । जिसका नतीजा यह होता है कि स्त्री को ही अंततः ज्यादा समझौते करने पड़ते हैं। तेजतर्रार अपर्णा जो रिश्वत लेने तक के मामले में पति के साथ शामिल है अंततः इस सच्चाई व त्रासदी के साथ जीने को अभिशप्त होती है कि उसका पति लड़कियों की सप्लाई करता है अपने आधिकारियों को और उसकी अन्य औरतों से भी शारीरिक संबंध हैं। उसके जीवन में भी शराब की गंध व पति के खर्राटे ही बचते हैं। दुःखद यह है कि वह उसे उस रूप में भी स्वीकार करती है क्योंकि पैसा और पावर उसके लिए ज्यादा जरूरी हैं। आशय यह कि पैसे और पावर ने स्त्री की अस्मिता ही खत्म कर दी है। अब वह समझौतावादी जीवन जीने को अभिशप्त है। दीपा भी अपने प्रेम व शादी की डोर अंततः अपने पिता के ही हाथ में सौंपती है।

वस्तुतः छल अखिलेश की कहानियों का स्थायी भाव है। यह छल बहुस्तरीय होता है। पात्र एक दूसरे से छल करते हैं। खुद से भी छल करते हैं, व्यवस्था से व व्यवस्था उनसे छल करती है। अखिलेश की कहानियों में इस छल का सामाजिक व्यवस्थागत आधार है। मूलतः यह व्यवस्था आज के समय में सबको छल रही है। इस व्यवस्था में रहते-रहते यह छल हमारी भीतरी प्रक्रिया का हिस्सा हो गया है। जिसका नतीजा यह है कि छल, अनैतिकता व कुटिलता हमारे जीवन का रूटीन है। अखिलेश इस बुराई को हास्य, विट व सेटायर के साथ प्रस्तुत करते हैं।

अखिलेश की पात्रों के मनोविज्ञान पर पकड़ इतनी सूक्ष्म है कि वह हर मनोभाव प्रामाणिक रूप से चित्रित कर लेते हैं, खासकर आहत पौरूष को। गायत्री के प्रेमी के पास चिट्ठियाँ पहुँचने का मसला हो या पुनीत के चेहरे का उस डॉक्टर प्रेमी के नाम पर आने वाले भाव। अखिलेश की पकड़ देखते ही बनती है। अखिलेश की कहानियों को पढ़कर यह प्रतीत होता है कि वह पात्रों से निर्मोही व्यवहार करते हैं। आशय यह कि उनके किसी भी पात्र से खासकर इन दोनों कहानियों में आत्मीयता या सहानुभूति नहीं होती। वस्तुतः इनकी निर्मिति प्रविधि में अखिलेश निर्मोह अपनाते हैं। निर्मोह नकारात्मक अर्थ में नहीं वरन् सकारात्मक अर्थ में। वह निर्माण जो दर्शन व परंपरा के संदर्भों में अनासक्त से जुड़ता है। दरअसल निर्मोह प्रेम और घृणा के बीच खड़ा होता है। अखिलेश अपने पात्रों की रचना इसी बिंदु पर खड़े होकर करते हैं। यह पढ़ते हुए लगता है कि अखिलेश के इस तरह के निर्मोह या अनासक्त का पात्रों के साथ क्या औचित्य है। किसी के प्रति आत्मीयता व सहानुभूति पैदा करते। तब इसके जवाब के लिए हमें मिथकों में जाना पड़ेगा। दुर्वासा बहुत क्रोधी थे किंतु गिलहरी कि बच्चे को जीवित करते समय उन्होंने कहा कि अगर मैंने जीवन में कभी किसी पर क्रोध न किया हो तो यह जीवित हो जाए और बच्चा जीवित हो गया। तात्पर्य यह कि दुर्वासा क्रोध से भी अनासक्त थे। नतीजतन जिसको भी उन्होंने श्राप दिया था अंततः वह श्राप विश्व कल्याणार्थ उपस्थित हुआ। अखिलेश के पात्र भी अपनी पूरी अन्विति में हमें यह सोचने को बाध्य करते हैं कि हम अंततः जा कहाँ रहे हैं। क्या विकास व चेतना की यही गति है या होगी जो हमें अनिवार्यतः नैतिक व चारित्रिक पतन की तरफ ले जा रही है। अखिलेश की भाषा अलग लिखे जाने की माँग करती है। कस्बाई या गंवई शब्दों का इस्तेमाल जहाँ भी अखिलेश करते हैं वहाँ उनके कहन की तीव्रता ज्यादा मारक, धारदार विटी हो जाती है। अनावश्यक रूप से वह भाषा को सजाते नहीं हैं। उसको सहज बातचीत व बतकही के स्वरूप में ही व्यवहार करते हैं।

अखिलेश की ये दोनों कहानियाँ मध्यवर्ग का क्रूर सच सामने लाते हुए हमें आत्मालोचन हेतु बाध्य करती है। अखिलेश दिखाते हैं कि भ्रष्टाचार व अनैतिकता में आकंठ डूबा यह वर्ग समूची सामाजिक, पारिवारिक संरचना को छिन्न-भिन्न कर रहा है। व्यक्तिवाद इतना हावी है कि समूह चेतना के लिए जगह नहीं। वर्चस्व स्थापित करने हेतु आतुर यह वर्ग कब इस व्यवस्था के वर्चस्व का शिकार हो व्यवस्था के खिलौने में परिवर्तित हो गया है, इसकी उसे खबर ही नहीं। महत्त्वपूर्ण यह है कि अखिलेश ने यह कहानियाँ तब लिखी थीं जब चीजें अस्पष्ट थीं। किंतु आज कहानियों के वह सच समाज में प्रत्यक्ष है। अखिलेश की यही बात (आगत की सटीक पहचान और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति) ही उन्हें अपनी पीढ़ी में विशिष्ट बनाती है। क

कहानी

राजू इंजीनियर

रमेश यादव

मेरे लिए वास्तव में यह आश्चर्य का ही विषय था। पिछले तीन बरसों से मातहत के रूप में पेश आनेवाले मॅनेजर साहब आज इतने कैसे मेहरबान हो गए कि आधे घंटे में चपरासी को तीसरी बार भेज दिया मुझे बुलाने के लिए और वह भी कब, जब कांउटर पर ग्राहकों की भीड़ लगी हुई थी।

आखिर में पहली मंजिल से उतरकर उनके केबिन में मुझे जाना ही पड़ा। जाते हुए अच्छा तो नहीं लग रहा था, पर मजबूरी भला क्या न करवाती ! जैसे ही मैं पहुँचा उन्होने बड़े ही स्नेह भाव से सामने की कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा,

''येस मि. दिग्विजय प्लीज सीट।''

''येस सर'' कहते हुए संकोच में बैठ गया और सवालिया नजर से उनकी ओर देखने लगा। कुछ देर पश्चात उन्होंने अपनी दराज से ब्लॅकबेरी का अपना मोबाइल निकाला और मेरे सामने रख दिया।

बोले, ''यार क्या जमाना आ गया है ! साला, सबसे ज्यादा प्राब्लेम में तो कस्टमर ही है। पैसा हाथ में लेके जाओ तब भी ब्रांडों के बीच में बैठते हुए डर बना रहता है, कि जिस चीज पर हजारों रूपए खर्च कर रहे हैं वो पता नहीं कैसी निकलेगी ! वेरी बॅड यार ! अब देखो ना साल भर पहले ये ब्लॅकबेरी लिया और साली अब तो इसकी आवाज ही गायब हो गई है। कंपनी के पास गया तो टाल-मटोल करने लगे। कंम्लेंट पर कंम्लेंट की। तब तक वारंटी पीरियेड बीत गया। अब वही कंपनी वाले इसे ठीक करने के लिए तीन हजार रूपए मांग रहे हैं। बताओ क्या जमाना आ गया है बाजारवाद का !'' उन्होंने मेरी तरफ यूँ देखा गोया मुझसे अपनी तकलीफ पर मरहम चाहते हों। लेकिन मैं क्या बोलता ! फिर भी मेरे मुँह से निकल गया- ''हाँ सर आप ठीक कह रहे हैं ।'' जैसे कुंठा से भरी हु किसी दुखी आत्मा को सहानुभूति के दो शब्द रूई के विशाल फाए की तरह आराम पहुँचाते हैं वैसा ही मॅनेजर साहब को मेरी हुंकारी से लगा। ''बताओ हम लोगों ने क्या सोचा था कि प्राइवेटायजेशन हम लोगों के जीवन को आसान बनाएगा, मल्टीनेशनल कंपनियां हमें गुणवत्तापूर्ण प्रॉडक्ट और सेवाएं प्रदान करेंगी। लेकिन जैसे-जैसे इस नए आर्थिक बाजार का जाल फैलते जा रहा है, निराशा होने लगी है। ये कंपनियां तो सेवा को बिल्कुल किनारे लगाती नजर आ रही हैं। ग्राहकों को पकड़ने के लिए प्रारंभ में तमाम राहत भरी सस्ती सेवाओं के साथ दस्तक देती हैं और हमें एडिक्ट बनाती हैं, फिर धीरे-धीरे अपनी मूल जाति पर उतर आती हैं और प्रॉडक्ट के दाम बढ़ा देती हैं, सेवाओं से मुंह मोड़ लेती हैं। सचमुच तब होने लगती है हमें देश की चिंता, कहीं हम आर्थिक गुलामी का शिकार तो नहीं हो रहे हैं ! खैर छोड़ो इन बातों को, यार दिग्विजय याद है तुमको वह राजू इंजीनियर जो हमारे बैंक में कुछ महीने पहले लोन लेने आया था। तुम्ही तो ले आए थे ना उसे ! चलो आज शाम उसके पास चलते हैं। इस ब्लैकबेरी का इलाज जो करवाना है !'' ''जी सर'' कहते हुए मैं वहां से उठा और अपने काउंटर की ओर बढ़गया। मेरा मन काटने को दौड़ा, कैसे न याद रहता ! उसकी याद आते ही याद आ जाती है - जीवन की पाठशाला, जो आदमी को किताबों की तुलना में कुछ ज्यादा सिखाती हैं। मेरी आँखों के सामने उस राजू नामक नौजवान का चेहरा नाचने लगा जो जिंदगी की विषम परिस्थितियों से गुजरते हुए शायद सफलता के आसमान को नहीं छू पाया। पर मेरा मन कहता है उसके पास हुनर है, आज नहीं तो कल वह जरूर बुलंदी को अपनी मुट्ठी में बंद कर लेगा।

मैं गत स्मृतियों में खोता चला गया। यादों के इस उजाले पर मीलों तक दुख और पछतावे की का नजर आ रही थी। रोज की तरह उस दिन भी दौड़ते-हांफते मैं बैंक पहुँचा। मेरे पहुंचने से पहले ग्राहक काउंटर पर खडे थे हमेंशा की तरह। कमबख्त मुंबई का ये आपाधापी भरा जीवन और तमाम पीडाओं से भरा लोकल ट्रेन का सफर ! पोर-पोर टूट जाता है इस सफर में।अति आवश्यक प्रक्रियाओं को निपटाते हुए मैं ग्राहकों की सेवा में जुट गया। कुछ देर बाद भीड़ हल्की हुई, और मैं राहत की सांस छोड़ते हुए इत्मीनान के साथ बगलवाली खिड़की से बाहर झांकने लगा।

उस कॉलेज के गेट पर लगा ए.टी.एम. सेंटर मुझे सुकून दे रहा था। भला हो उस इंसान का और उस व्यवस्था का जिसने इस मशीन को बनाया और आज ग्राहकों के साथ-साथ हम जैसे बकि कर्मियों के भी कष्टों का निवारण कर गया। कितना परिवर्तन आ गया है आजकल की बैंकिंग में, सचमुच जमाना बदल गया है ना!

अचानक आयी 'नमस्कार' की आवाज ने मेरी मग्नता को भंग किया। सामने देखा तो राजू इंजीनियर खड़ा था। इशारे से मैंने उसे सामने वाले सोफे पर बैठने के लिए कहा, और कुछ 'आर.टी. जी.एस.' के स्लीप पोस्ट करने लगा। फुरसत पाते ही मैंने बगल के सहकर्मी मित्र से इजाजत ली और अपने काउंटर की जिम्मेदारी उसे सौपते हुए राजू को लेकर मैं सीनियर मॅनेजर के.वी.एस.आर. वेणुगोपाल के केबिन में गया। इतने लंबे नाम से लोग हैरान हो जाते हैं, पर हमें तो अब आदत पड़ चुकी थी। साहब फाइलें निपटाने में लगे थे। मुझे देखते ही पूछा - ''येस मि. दिग्विजय क्या बात है ! हॅव अ सीट प्लीज और ये साथ में कौन हैं ? प्लीज वेलकम।''

''सर ये राजू इंजीनियर है, आपसे मिलना चाह रहा था, आगे हनुमान गली के नुक्कड़ पर इसका करोबार है। दरअसल लोन के सिलसिले में यह आपसे कुछ बात करना चाहता है, इसलिए इसे लेकर आपके पास आया हूँ। ''मेरे इस कथन पर कुछ प्रश्नार्थक होते हुए मॅनेजर साहब बोले-? ''अच्छा तो आप इंजीनियर हैं ! क्या करोबार है आपका और ये हमारे दिग्विजय जी को कैसे जानते हैं आप ?'' जब भी कोई कर्मचारी किसी ग्राहक को लोन के सिलसिले में मॅनेजर के पास ले जाता है तो यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से फेंका जाता है, जिसकी मुझे अपेक्षा थी।

''नहीं सर, मैं वो वाला इंजीनियर नहीं, मैं सिर्फ नाम का इंजीनियर हूँ, मेरा नाम राजू श्रीवास्तव है और मैं इलेक्ट्रॉनिक्स सामानों की रिपेरिंग करता हूँ, इसलिए प्यार से लोग मुझे राजू इंजीनियर कहते हैं। ये भाई साहब मेरे पुराने ग्राहक हैं, और अब एक अच्छे मित्र भी हैं। हाल ही में जब मुझे पता चला कि ये बैंक में साहब हैं, तो मैं इनके पीछे पड़ गया आपके पास ले आने के लिए।''

''अच्छा बताओ मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ ?''

"दरअसल इस समय मुझे दस लाख रूपयों के लोन की सख्त जरूरत है, यहीं पास में ही मेरी गुमटीनुमा दुकान है, जो मैंने किराये पर ली है, उसका एग्रीमेंट पूरा हो गया है, और उसका मालिक अब इसे आगे बढाना नहीं चाहता है, वैसे अब ये जगह मुझे छोटी पड़ने लगी है। मैं भी नई जगह की तलाश में था, प्रभु की कृपा से बगल में ही दूसरी दुकान मिल रही है, जो मुझे पसंद है। इसे लेने में कुछ पैसे कम पड़ रहे हैं सर, लोन देकर यदि इस समय आप मेरी मदद कर देंगे तो जिंदगी भर मैं आपके इस एहसान को नहीं भूलूँगा। आपकी इस कृपा से मेरा कारोबार बढ़जायेगा, ग्राहकों के कीमती सरो-सामान भी हिफाजत से रख पाऊंगा। आप यकीन मानें मैं लोन को समय पर चुका दूँगा, शिकायत का कोई मौका नहीं दूँगा। मैं पढ़ा- लिखा हूँ, डिप्लोमा किया है मैंने। इस समय अच्छा खासा कमा रहा हूँ मैं सर ! बस आपके सहारे की जरूरत है, बड़ी आशा से आया हूँ आपके पास!" राजू की आँखो में एक सपना था, एक आत्मविश्वास था, जो इस समय साफ-साफ नजर आ रहा था, कुछ उम्मीद भरी नजरों से मैंने साहब की आँखो में झाँकने का प्रयास किया और अपनी बात रखी - "सर राजू बड़ा ही होनहार और मानदार कारीगर है, इसके हाथों मे वो हुनर है जो किसी काबिल इंजीनियर के पास भी नहीं होगा। इस बात को मैंने खुद आजमाया है। पिछ्ले साल मैं अपने लॅपटॉप की रिपेयरींग को लेकर बड़ा परेशान था, कई लोगों को दिखाया, पर संतुष्टि नहीं हुई-अंत में निराश होकर राजू के पास आया। इसे देखा तो मुझे लगा ये भी कुछ नहीं कर पाएगा। मगर साहब क्या बताऊँ महज एक घंटे में इसने उसे ठीक कर दिया, वह भी मामूली दाम पर। तब से मैं इसका मुरीद बन चुका हूँ। मेरे इलेक्ट्रॉनिक्स सामानों का डॉक्टर अब यही है।"

"ओह दॅटस इट ! फाइन- फाइन।"

अचानक किसी का फोन आ गया। साहब फोन पर बिजी हो गए। कुछ देर बाद जब उन्हें हमारा ख्याल आया तो पुनः हमसे मुखातिब होते हुए बोले -"तुम्हारे पास कोई पहचान पत्र, लाइसेंस, डिग्री, बैंक में खाता, आई .टी. रिटर्न फाइल, पॅन कार्ड, दुकान का एग्रीमेंट इत्यादि है क्या ? विजय तुम जरा सब चेक कर लो और इन्हे लोन का फॉर्म दे दो, साथ ही इनका खाता भी अपने बैंक में खोल दो, प्रस्ताव को सर्कल ऑफिस भेजना होगा। मैं कोशिश करता हूँ।" साहब के प्यार भरे शब्दों ने आशा की एक उम्मीद जगाई। एक मुस्कान आंखों में तैर गई। वह सपनों के रथ पर सवार हो चुका था। खुशी- खुशी हम दोनो केबिन से बाहर आए। मैंने राजू को चाय पिलाई और उसे सारे डाक्यूमेंट के साथ दूसरे दिन बैंक में बुलाया।

दो दिन बाद राजू तमाम कागजात के साथ सुबह-सुबह आ गया। अपने बैंक में खाता खोलने की प्रक्रिया मैंने अपने इंट्रोडक्शन के साथ पूरी कर दी। फिर दूसरे दिन शाम को उसे बुलाया। वह समय पर आया। मैंने सारे पेपर्स जांच कर लोन अनुभाग के अधिकारी नायर जी से बात करके लोन प्रपोजल का आवश्यक फार्म भर दिया। किसी दूसरे बैंक में उसका पचास हजार रूपयों का फिक्स डिपॉजिट था। राशन कार्ड, पेन कार्ड, डिप्लोमा सर्टिफिकेट, पुराने दुकान का एग्रीमेंट, फोन बिल, गुमास्ता लाइसेंस, गांव का वोटिंग कार्ड इत्यादि काफी कुछ था उसके पास। नई वाली दुकान उसे पाँच साल के लिए 'लीव एन्ड लाइसेंस' पर लेनी थी, जिसके लिए पाँच लाख रूपए डिपाजिट देना था और पाँच लाख रूपए मशीनरी, औजार, फर्नीचर, वर्किंग कॅपिटल आदि के लिए चाहिए था। इस बात का जिक्र प्रपोजल में कर दिया। आवश्यक कागजों में उसके पास नई दुकान का एग्रीमेंट और आई .टी. रिटर्न नहीं था। आवश्यकतानुसार इस बात का भी उल्लेख फार्म में कर दिया।

मॅनेजर साहब से पुनः बात हुई उन्होंने आश्वासन दिया कि वादा तो नहीं करता पर कोशिश जरूर करेंगे-जैसे कोई नेता चुनाव जीतने के बाद बोल रहा हो। इस जवाब को सुनकर राजू का चेहरा गिर गया। मैं उसकी भावनाओं को समझ रहा था पर मैं भी तो मजबूर था, जो करना था वो सब कुछ साहब को ही करना था। उन्हीं के रिकमंडेशन पर सब कुछ निर्भर था। अंचल कार्यालय के लोग इसी रिकमंडेशन पर काम करते हैं। खैर अब इंतजार के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं था। दरअसल ये स्व-रोजगार की योजना का प्रस्ताव था, जिसके तहत तमाम योजनाएं सरकार द्वारा घोषित की गई हैं। इस वर्ग को बढ़ावा देकर सरकार देश की प्रगति में इन्हें शामिल करना चाहती है। इसके बाद लगभग चार महीनों तक राजू बैंक के चक्कर लगाता रहा। कभी स्टाफ नहीं, कभी साहब नहीं, कभी हड़ताल, कभी काम का लोड़ ज्यादा है, कभी भारत बंद, तो कभी बॅलेस शीट का काम चल रहा है इत्यादि इत्यादि। तमाम तरह के रोने और बहाने को सुनते-सुनते राजू के साथ मैं भी पक गया था। मगर क्या करता, अपने ही दांत और अपने ही होंठ थे, किसे दोष देता और किसका पक्ष लेता! मैं खुद एक चक्रवात में फंस गया था। इसी का नाम तो सरकारीकरण है। अंचल कार्यालय में काम करनेवाले लोग अपने को जनरल मॅनेजर से कम नहीं समझते फोन करना भी गुनाह था। यदि मैं अधिक फॉलोअप करता तो लोग समझते कि इनका कुछ पर्सनल इंटरेस्ट है। ले- देकर मैं राजू को भरोसा दिलाने का काम करता, यह सबसे आसान था।

राजू को लोन की जल्दी नहीं थी। नई दुकान का मालिक डिपॉजिट की रकम के लिए पीछे पड़ गया था। इस बीच राजू ने अपना फिक्स डिपॉजिट तोड़कर उसे पचास हजार का बयाना दे दिया। मगर इस दुकान के मालिक के आगे-पीछे दो और पार्टियां नगद लेकर घूम रही थीं। व्यापार में तो इस तरह की सौदेबाजी होती ही रहती है। मेन बाजार में वह भी मौके की जगह, इस पर तो कइयों की नजर गड़ी रहती है। पहली दुकान को लेकर भी ऐसा ही मामला था। कोई अन्य व्यापारी राजू से अधिक किराया और डिपॉजिट देने को तैयार था। राजू ने अधिक किराया देने से इनकार कर दिया था, और इस बात को लेकर उन दोनों में कुछ अनबन हो गई थी। अतः महीने-दो महीने के भीतर जगह छोड़ने की नौबत आ गई थी। इधर नए दुकान मालिक सरफराज खान ने अब तो अल्टीमेटम दे दिया था कि बीस दिन के भीतर यदि राजू एग्रीमेंट नहीं करता है तो वह किसी और से बात तय कर लेगा और बयाने की रकम भी नहीं लौटाएगा। दिन प्रति दिन राजू की मुसीबत बढ़ती ही जा रही थी। इसका असर उसके रोज के रोजगार पर हो रहा था। अब वह विचलित हो चुका था। अंदर से पूरी तरह टूट चुका था। मैंने उसे समझाया कि मुसीबतें जब आती हैं तो एक साथ आती हैं, वह भी हर तरफ से। इन सबको शांति से झेलते हुए आगे बढ़ना ही जीवन होता है। राजू की निगाह मेरे चेहरे को टटोल रही थी। आंतरिक तौर पर उसकी इच्छा थी कि मैं किसी तरह उसकी मदद करूं। या तो लोन जल्दी पास करवाऊँ या उसे कुछ उधार दे दूँ या फिर नए दुकान मालिक सरफराज खान से समझौता करवाऊँ। इस बात को सिर्फ मैं समझ रहा था या फिर राजू।

साहब को एक दो बार मैंने समझाने की कोशिश की पर वो तो नियम पर उंगली रख कर बैठे थे। एक बार तो उन्होंने मुझे कह दिया कि बैंक भावनाओं पर नहीं पेपर पर चलती है। मैं शहर में नया आया हूँ और मुझे लोगों के बारे में विशेष जानकारी भी नहीं है। तुम्हारे कहने पर ही मैंने इस प्रपोजल को स्वीकार किया है अब उसकी किस्मत जानें ! अंचल कार्यालय से मंजूरी पत्र आ जाता है तो हम आगे बढ़ेंगे। मैं भी निराश हो चुका था। हजार-दो हजार की बात होती तो उधार दे भी देता पर यहां तो मामला लाखों का था। दुकान की सौदेबाजी में भला मैं कैसे पड़ सकता था ! मुझे तो इस बारे में कोई जानकारी भी नहीं थी। मान लो मैं चला भी जाता हूँ और यदि खान मुझसे ये कहता है कि आप तो बैंक में हैं, और दोस्त भी, तो आप उधार पैसे क्यों नहीं दे देते ! बैंक वालों को भला क्या कमी है ! रोज पैसों से ही तो खेलते हैं, मेरा नुकसान क्यों करवा रहे हैं ? इन संभावित सवालों का मेरे पास को जवाब नहीं था। अब मैं भी राजू से कन्नी काटने लगा था। उसे बैंक में देखता तो सीट छोड़कर कहीं बाहर चला जाता। उसका चेहरा मुझसे देखा नहीं जा रहा था। ऐसे ही एक दिन वह आया और उसे देखकर मैं बाहर चाय पीने निकल गया। चाय पीकर जैसे ही पैसे देने के लिए आगे हाथ बढ़ाया, किसी ने मेरा हाथ थाम लिया। देखा तो राजू था। - "सर मैं पैसे दे देता हूँ। " कहते हुए उसने पैसे दे दिए और मुझे एक किनारे ले जाकर मेरे हाथ पर नोटों की एक गड्डी रखते हुए बोला, "सर ये पांच हजार हैं, कम हो तो बताएं और दे दूंगा मगर मेरा लोन पास करवा दें, जिसको भी देना हो दे दें, मगर मुझे बर्बाद होने से बचा लें, मैं कहीं का नहीं रहूंगा, प्लीज सर अब मेरा भविष्य आप लोगों के हाथ में है।" मेरी आँखें नम हो गई थीं। पैसों की गड्डी उसे वापस करते हुए मैंने कहा, "राजू तुम मुझे गलत समझ रहे हो, हम लोग वैसे नहीं हैं, बैंक में इस तरह का काम नहीं होता है। अगर नियम में बैठता है तो किसी के भी पांव छूने की जरूरत नहीं है। मेरा दिल कह रहा है कि तुम्हारा काम हो जाएगा। हां देर हो रही है, ये बात सच है, मगर क्या करें हालत ही कुछ ऐसे हैं। एक तो त्योहारों का मौसम इसलिए छुट्टियां अधिक थीं, ऊपर से स्टाफ भी बहुत छुट्टी पर चल रहे हैं। मुझे लगता है एक दो दिन में तुम्हारा सेक्शन लेटर आ जाएगा।"

अंततः वह दिन भी आया जब साहब ने उसे बुलाकर कह दिया कि उसका लोन पास नहीं हो सकता क्योंकि अंचल कार्यालय ने इस प्रस्ताव को यह कहकर नकार दिया है कि उसके पास तीन वर्षो की इन्कमटैक्स रिटर्न फाइल नहीं है, और उसका हमारे बैंक में पास्ट बैंकिंग रेकॉर्ड नहीं है।

राजू का धैर्य टूट गया, वहीं बैंक में सबके सामने रो पड़ा। उसकी चीख कातर थी। हाथ जोड़कर वह कह रहा था , " साहब मेरी मदद कर दें..... मैं बर्बाद हो जाऊंगा.... आप लोगों के भरोसे पर मैं इतने दिनों तक इंतजार करता रहा....मेरा बयाना डूब जाएगा सर...मैं सड़क पर आ जाऊंगा......अगर कहें तो मैं फर्जी पेपर भी बनवा लूंगा...आप लोगों को पार्टी भी दूंगा...... मगर मुझ पर रहम करें सर......" साहब ने उसे समझाते हुए कहा, " आय एम सॉरी लेकिन इस मामले में मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता।" मैं राजू के चेहरे पर उभरी महीन से महीन भावनाओं को पढ़ने की कोशिश कर रहा था। आँखों को पोंछते हुए राजू बिजली की तरह सरपट मेरे सामने से गुजर गया। मानों सारी दुनिया से आज विश्वास उठ गया हो। उसकी उम्मीदों की चादर आज तार-तार हो गई थी। मुझे अपने साहब पर गुस्सा आ रहा था, पर मैं भला क्या कर सकता था ! मन-ही-मन मैं सोच रहा था कि बेरोजगारों के लिए स्व-रोजगार की कई योजनाएं सरकार घोषित करती है, मगर इस तरह छोटे- छोटे तकनीकी कारणों से यदि लोन के प्रस्ताव अस्वीकृत होते रहेंगे तो इस देश के गरीब, जरूरतमंद, होनहार युवाओं को आगे बढ़ने का मौका कैसे मिलेगा?

अनुभाग में जाकर मैंने लोन अधिकारी नायर से बात की तो उसने बताया कि राजू का लोन साहब के पावर के अंदर ही आता है, पर पिछली शाखा में कुछ फ्रॉड हो गया था, इसलिए साहब को चार्जशीट दी गई है, और उसकी जांच अभी चल रही है, इसलिए साहब किसी भी तरह की जोखिम से कतराते हैं।

अक्सर मैंने देखा है कि दूसरे राज्यों से तबादले के तहत आए अधिकारी प्रायः रिस्क लेने से कतराते हैं। आते ही वे लोग वापस जाने के लिए दिन गिनने लगते हैं। उनके सामने कई तरह की समस्याएं होती हैं, काम तो ये लोग मजबूरी में करते हैं। मुझे कोफ्त हुई कि तबादले का यदि इतना ही डर लगता है तो ऐसे लोग प्रमोशन लेते ही क्यों हैं ? इसमें आम ग्राहक की क्या गलती है ? उसे तो उसका हक मिलना ही चाहिए।

नायर पेपरों में खो गया। साहब की ओर देखे बिना मैं अपने काउंटर की ओर बढ़गया। मन में बार-बार ख्याल आ रहा था कि साहब चाहते तो राजू का लोन पास हो जाता, मगर उनकी इच्छा ही नहीं थी मदद करने की। मेरा मन काम में लग नहीं रहा था। थकी पलकें शीघ्र ही यादों के झील में तैरने लगी।

मेरी आँखों के सामने वह दृश्य दौड़ गया जब एक साल पहले मैं अपने लॅपटॉप की रिपेयरिंग को लेकर परेशान था। सर्विसिंग सेंटर और कंपनी वाले इतना दाम बता रहे थे कि मैं पचा नहीं पा रहा था। आखिर कुछ दिन पहले तक तो लॅपटॉप ठीक से काम कर रहा था। अचानक रोलिंग स्क्रोलर जाम हो गया और डिस्प्ले में कुछ खराबी आ गई थी। इतनी-सी बात के लिए ये लोग तीन हजार रूपये मांग रहे थे, ऊपर से एक सप्ताह तक रखने की बात कर रहे थे, जो मैं कर नहीं सकता था। क्योंकि उसमें कुछ बहुत ही जरूरी डाटा स्टोर था। कुछ गोपनीय मॅटर भी था। मुझे पूरा यकीन था कि खराबी ज्यादा नहीं है, पर इन कंपनी वालों ने आम आदमी को लूटने का धंधा जो खोल रखा है। हैरान होकर मैं इधर- उधर घूमते हुए पान की दुकान पर पहुँचा। पान खाते हुए पान वाले से अपनी परेशानी का जिक्र

किया।पानवाले ने तुरंत सामने की गली की ओर इशारा किया और मुझे राजू इलेक्ट्रॉनिक्स जाने को कहा। कुछ आगे जाते ही हनुमान गली के नुक्कड़ पर मुझे वह साइन बोर्ड दिखा दिया। मैं उसके पास पहुँचा और अपना लॅपटॉप दिखाया, ऊपर- नीचे देखते हुए उसने कहा कि मैं इसे ठीक कर दूंगा पर घंटे भर का वक्त लगेगा। मेरी आँखें अविश्वास से फटी जा रही थी। मुझे यकीन नहीं हो रहा था कि साधारण-सा दिखने वाला यह 25-30 साल का युवक इसे ठीक कर देगा ! मैंने चार्ज पूछा, तो उसने बताया कि खोलकर देखने के बाद ही बता पाएगा। चूंकि मरी नजरों के सामने काम करने वाला था इसलिए मैंने उसे इजाजत दे दी।

बड़े आत्मविश्वास के साथ उसने लॅपटॉप को खोला और देख परखकर दो पुरजे बदल दिए। स्क्रोलर के वाल बेयरिंग को ठीक करते हुए उसने डिस्प्ले की जांच की। मुझे पूछकर एक और पार्ट बदल दिया और बड़े इत्मीनान के साथ उसने मुझसे कहा, '' सर, अब आप इसे चेक कर लें और कुछ परेशानी हो तो मुझे बताएं - डॉक्टर सेवा के लिए हाजिर है। '' मैंने चेक किया - सारी परेशानी दूर हो गई थी। मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। मैंने चार्ज पूछा तो बोला, '' आठ सौ रूपए सर। '' मैं दंग रह गया - सिर्फ आठ सौ रूपए....... अरे ये सोलह सौ भी मांगता तो दे देता। जो काम कंपनी वाले करने से कतरा रहे थे उसे इस बंदे ने चुटकी बजाते हुए कर दिया। अब मैं राहत की सांस ले रहा था। मैंने तहे दिल से उसे शुक्रिया कहा और जंग जीतने वाली खुशी के साथ घर की ओर रूख किया।

मैं सोच रहा था कि दुनिया के किसी महान टेक्नॉलॉजिस्ट ने शायद इस मशीन की खोज की होगी और किसी एम.एन.सी. ने इसे लॉन्च किया होगा, पर एक मामूली भारतीय कारीगर ने इसे चंद मिनटों में रिपेयर कर दिया। देश के इस भविष्य पर मैं फख्र महसूस कर रहा था। मन-ही-मन उसे लाखों दुवाएं भी दे रहा था। उसकी ईमानदारी और काबिलियत को मैं अंदर से सलाम कर रहा था। इसके बाद तो मैं राजू का फॅन बन गया। धीरे-धीरे मेरी पहचान उससे और बढ़ती गई । मैं बैंक में नौकरी करता हूँ इस बात की जानकारी के बाद तो वह पहले की अपेक्षा मुझे और इज्जत देने लगा। मैं भी हर किसी से उसका जिक्र करने लगा। जो भी कोई इलेक्ट्रॉनिक्स सामान की समस्या का जिक्र मुझसे करता मैं उसे राजू के पास भेज देता। इस बीच ना जाने कितने ग्राहक मैंने उसके पास भेजें। किसी का मोबाइल तो किसी का कंप्यूटर, किसी का टेप तो किसी का आ-पॉड। सबकी सर्विसिंग उसने की। सभी लोग उससे प्रभावित थे। वास्तव में उसके हाथों में एक प्रकार की जादूगरी थी। कैसे भी खराबी हो राजू उसे ठीक कर देता था।

अचानक आयी किसी आवाज ने मुझे वर्तमान में लौटने के लिए मजबूर कर दिया। सामने देखा तो एक कस्टमर फिक्स डिपॉजिट की रसीद मांग रहा था। मैं पुनः अपने काम में लग गया। दरअसल शर्मिंदगी के कारण मैंने भी कई दिनों से राजू को फोन नहीं किया था, राजू भी उस दिन के बाद बैंक में नजर नहीं आया था।

शाम के पांच बज रहे थे। बैंक के लोग घर जाने की तैयारी कर रहे थे। मैंने सामने देखा मॅनेजर साहब हाथ में ब्लैकबेरी थामे मेरी प्रतिक्षा कर रहे थे। सुबह का वादा मुझे याद था। साहब को राजू के पास मोबाइल रिपेयरिंग के सिलसिले में जाना था तो मुझे इसी बहाने उसकी खोज खबर लेनी थी।

पैदल चलते हुए कुछ ही मिनटों में हम लोग हनुमान गली की नुक्कड़ पर पहुँच गए। मगर हमें ना तो वह साइन बोर्ड नजर आया, न ही राजू। पूछताछ करने पर पता चला कि इस गुमटी का एग्रीमेंट पूरा हो चुका था और गुमटी का मालिक राजू से पुनः करारनामा करने को तैयार नहीं था। पड़ोस की गुमटी वाले ने बताया कि राजू कारोबार बंद करके मुंबई से सदा के लिए अपने गांव चला गया था। उसने बताया कि पैसों को लेकर खान से उसकी काफी कहा सुनी भी हो गई थी। मामला पुलिस तक चला गया था। आगे की बात दुकानदार नहीं जानता था, पर मुझे समझने में देर नहीं लगी।

यह सुनकर मेरे पैरों तले की जमीन खिसक गई, मॅनेजर साहब का चेहरा भी गिर गया था। निःशब्द होकर हम एक- दूसरे को निहारने लगे। नहीं चाहते हुए भी घुमड़ती पीड़ा की गठरी खुल ही गई थी। चुप्पी तोड़ते हुए साहब बोले, '' यार दिग्विजय, मुझसे बड़ी भूल हो गई, आय एम सॉरी फ्रेंड। काश ! उस समय मैं राजू की मदद कर देता तो आज उसके उजड़ने की नौबत नहीं आती। अपने टेंशन में मैंने राजू के प्रस्ताव पर ठीक से गौर नहीं किया। छोटी-सी रिस्क लेकर अगर राजू के प्रस्ताव पर पॉजिटिव रिमार्क्स दे देता तो राजू का लोन पास हो जाता और मुझे एक होनहार कारीगर को मदद करने का सुख मिल जाता। बड़े लोन के चक्कर में कई बार हम छोटे प्रस्तावों पर ध्यान नहीं देते। नाऊ आई एम फीलिंग गिल्टी। क्या राजू फिर लौट के आएगा !'' छोटी-सी एक गलती ने देश के उस भविष्य को अंधेरे में ढकेल दिया था। उस समय मैं भी मजबूर था, साहब की सोच के आगे भला मैं क्या कर सकता था ! मैंने तो अपना काम कर दिया था, पर बॉस को भला कौन समझाता..... ?

विचारों की एक भरपूर नदी मेरे अंदर बही जा रही थी। मैं स्तब्ध हो गया था। साहब के माथे पर चिंता की लकीरों को पढ़रहा था। जिंदगी की तेज रफ्तार में पीछे छूट जाने के गम ने कहीं राजू को 'सीजोफ्रेनिक' तो नहीं बना दिया होगा और वह निराश होकर अपने गांव लौट गया हो...... !

घुटी-घुटी-सी, दबी-दबी-सी आवाज सन्नाटे को चीर रही थी। मेरा मन कह रहा था राजू जरूर लौटकर आएगा और इस शहर में अपनी नई पहचान बनाएगा। डिग्री भले ही उसके पास न हो पर अपने हुनर से वह इंजीनियर है। इस शहर में लोग अपनी कला और हुनर बेचने आते हैं। यहां रत्नों के पारखी अनेक हैं जो कला-कौशल, हुनर और काबिल इंसानों को सर- आँखों पर बिठाते हैं। राजू की भी दुनिया शायद एक दिन बदल

स

युगेश शर्मा की दो लघुकथाएँ

अपना-अपना गहरीकरण

20-25 लाख की ए.सी. कार से नीचे पैर न रखने वाले एक दर्जन अभिजात्यजन बड़े तालाब के कैचमेंट एरिया में पड़ने वाले गहरीकरण-स्थल पर सुबह-सुबह जमा थे। अन्य लोगों की तरह उन्हें भी व्ही.व्ही.आई.पी. के श्रमदान स्थल पर पहुँचने का इंतजार था। सुबह का समय था, लेकिन एयर कंडीशन्ड जिंदगी जीने वाले ये 'विशिष्ट जन' पसीने में नहाये हुए से लग रहे थे। बेचारे चेहरे का पसीना पोंछ-पोंछकर हलकान हुए जा रहे थे।

इसी बीच भीड़ में हलचल मची। पुलिस के सायरनों की चीखती आवाज़े पास तक पहुँच गईं। व्ही.व्ही.आई.पी. श्रमदान-स्थल पर पहुँचे। श्रमदान से जुड़े अधिकारियों के साथ अभिजात्य जनों की सेटिंग के मुताबिक व्ही.व्ही.आई.पी. को तयशुदा स्थल पर श्रमदान के लिये लाया गया। पसीना पोंछते अभिजात्य जन वहीं खड़े थे। व्ही.व्ही.आई.पी. के हाथों पर तीन किलो मिट्टी भरी तगारी धर दी गई। सारे अभिजात्य लोगों ने गोवर्धन पर्वत उठाने की तर्ज पर उस तगारी से अपनी उंगलियाँ छुआ दीं। प्रायोजित फोटोग्राफी धड़ाधड़ होने लगी। कुछ क्लोज अप भी लिये गये। फोटोग्राफी का यह सिलसिला और प्रसंगहीन बातचीत का क्रम 10 मिनट तक यूँ ही चलता रहा। तब तक तगारी की तीन किलो मिट्टी अधर में लटकी रही। किसी अधिकारीनुमा प्राणी ने तगारी को जैसे-तैसे पद्म सम्मान की तरह ग्रहण कर लिया। अभिजात्य लोग गदगद थे। उनसे किसी न किसी बहाने चुग्गा-पानी ग्रहण करने वाला एक नेता व्ही.व्ही.आई.पी. से उनका परिचय कराने लगा। सब प्रायोजित था। इसी दौरान इक्का-दुक्का क्लोज अप और भी अरेंज हुए। तब सब खुश थे, दुखी था तो बेचारा बड़ा तालाब!

एक उखाड़-पछाड़वादी पत्रकार ने एक अभिजात्य जन से पूछ लिया- 'आप लोग यहाँ आये हैं। लेकिन तालाब के गहरीकरण का तो आपने कोई काम यहाँ किया नहीं। आखिर ऐसा क्यों?'

'देखिये, पत्रकार जी, हम लोग यहाँ गहरीकरण के लिये आये थे और अपने हिस्से का गहरीकीण हमने बखूबी कर लिया है। कल के अखबार पढ़िये, उनमें हमारी ही चर्चा होगी, हमारे ही फोटो व्ही.व्ही.आई.पी. के साथ प्रमुखता से छपे होंगे'- एक अभिजात्य जन ने रहस्यपूर्ण मुस्कान बिखेरते हुए कहा।

'लेकिन वह गहरीकरण...?' पह पत्रकार झिझकते हुए फिर चहका।

दूसरा अभिजात्य जन कुछ ज्यादा ही उल्लासित होकर कह बैठा- 'बन्धु, हमने तो अपना गहरीकरण कर लिया। महीनों से हम व्ही.व्ही.आई.पी.से एक अदद मुलाकात का समय नहीं पा सके थे आज वह सहज ही मिल गया और बातचीत भी हो गई। आप इससे ज्यादा समझने-जानने की कोशिश न कीजिए। धन्यवाद, हम अब चलते हैं।'

अभिजात्य जनों की वह टोली पत्रकार को हक्का-बक्का छोड़ अपनी ए.सी. कारों की ओर बढ़गई।

अपना-अपना गहरीकरण

चमन बाबू के घर मुम्बई से मेहमान आये हुए थे। मेहमानों को भोपाल का बिड़ला मंदिर, मानव संग्रहालय, शौर्य स्मारक, यूनियन कारबाइड का खंडहर हुआ संयंत्र, व्ही.आई.पी. रोड, कमला पार्क आदि दिखाने का भोपाल में आम प्रचलन है। चमन बाबू ने भी अपने मेहमानों को ये सब दिखाने का कार्यक्रम बना लिया। वे पर्यटन विकास निगम की पर्यटन बस की टिकटें भी ले आये।

एक दिन सुबह-सुबह चाय पीते हुए बड़े उत्साह के साथ उन्होंने मेहमानों को सूचित किया कि भोपाल के दर्शनीय स्थलों के अवलोकन का पूरे दिन का कार्यक्रम उन्होंने बनाया है।

मेहमानों ने दर्शनीय स्थलों के नाम सुनने के बाद अपनी ओर से कार्यक्रम के प्रति कोई खास उत्साह नहीं दिखाया। चमन बाबू हैरान थे। मेहमानों का ऐसा ठंडा प्रत्युत्तर पाकर उनका सारा उत्साह हवा हो गया था। मेहमानों से ऐसे रवैये की तो उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। सहसा वे पूछ बैठे- 'क्या आपको मेरे द्वारा बनाया गया यह साइट सीइंग का प्रोग्राम पसंद नहीं आया?'

चमन बाबू के प्रश्न का उत्तर एक महिला मेहमान ने दिया- 'बात यह यमनजी कि जिन दर्शनीय स्थलों का आपने जिक्र किया है, उनके बारे में पत्रिकाओं में हम खूब पढ़चुके हैं और इंटरनेट पर उनको बार-बार देख भी लिया है....।'

चमन बाबू बीच में ही पूछ बैठे- 'तो फिर क्या आप लोग सांची जाना चाहेंगे? भोजपुर और भीम बैठिका देखना हो तो वैसा बताइये। हम वैसा प्रोग्राम बना लेंगे।'

'नहीं, वहाँ जाने में भी हमारी रुचि नहीं है'- एक पुरुष मेहमान की प्रतिक्रिया थी- यह।

'आखिर आपका प्लान क्या है?' चमन बाबू ने कुछ-कुछ खीजते हुए पूछ लिया।

'आजकल अखबारों और टी.वी. चैनल्स पर खूब पढ़ने-देखने को मिल रहा है कि आपके शहर के बड़े तालाब के किनारे कोई तमाशा चल रहा है, जिसमें मुक्ताकाश के नीचे फैशन परेडें होती हैं, फोटो सेशन होते हैं, बड़े-बड़े नेता रंग-बिरंगी तगारियों में दो-तीन किलो मिट्टी उठाये फोटो खिंचने के इंतजार में मिनटों उसी मुद्रा में खड़े रहते हैं। मिट्टी एक आदमी खोदता-भरता है और सैकड़ों लोग सामूहिक नृत्य की मुद्रा में उसको देखते हुए मुस्कुराते हैं। सुना है पिकनिक का सा आनंद इन दिनों वहाँ आ रहा है। हम सब लोग इसी तमाशे को देखने के लिए हजारों रूपये खर्च करके आये हैं'- अब तक चुप बैठे एक अन्य पुरुष मेहमान ने अपना प्लान उजागर करते हुए कहा।

'मामाजी, मैं तो वहाँ मिट्टी से भरी तगारी सिर पर रखकर अच्छा सा फोटो खिंचवाकर एक फोटो प्रदर्शनी में भेजना चाहता हूँ। शायद कोई पुरस्कार मिल जाये। फोटो का शीर्षक रहेगा- 'श्रम का महत्व।' ये नेक विचार थे- मेहमान टोली के एक किशोर सदस्य के।

मेहमानों के उद्गार सुनकर चमन बाबू का सारा उत्साह ठंडा हो गया। वे बेमन से बोल उठे- 'ठीक है, हम कल सुबह वही तमाशा देखने चलेंगे।' स

'व्यंकटेश-कीर्ति''
11, सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन
चूना भट्टी, भोपाल-16
फोन-0755-2428750

दस्तावेज का पत्र प्रकाशनः 'हाल-ए-जुबानी और है'

अंक 81 से 120

अभिषेक कुमार गौड़

हमारे साहित्य का बहुत बेहतर हिस्सा पत्रों में छिपा हुआ है। पत्र अपने समय के दस्तावेज होते हैं। मनुष्य की संवेदना को जीवित रखने तथा उन्हें दूसरे से जोड़े रखने में पत्रों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। पत्र किसी को समझने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण स्त्रोत हैं। जीवन की तमाम अंतरंग बातें पत्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति पाती हैं। दस्तावेज ने अपनी महत्त्वपूर्ण योजना के प्रसार के तहत अंक 81, 90, 91, 92, 93, 94, 95, 96, 97, 98, 102, 109, 110, 116 तथा 124 में हिन्दी के मूर्धन्य रचनाकारों, लेखकों, राजनीतिक व्यक्तियों तथा अन्य चर्चित हस्तियों के पत्र प्रकाशित किये हैं तथा अंक 91 पूरा पत्र साहित्य पर विशेषांक रूप में प्रकाशित है। जो पत्र साहित्य के लिहाज से एक जगह संकलित की हुई महत्त्वपूर्ण समाग्री है।

किसी साहित्यिक पत्रिका के इतने अंकों में पत्रों का छपना बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है इससे पत्र साहित्य की महता का पता चलता है। इन अंकों में कुल मिलाकर हजारों पत्र प्रकाशित हैं। इन अंको में छपे पत्रों के प्रमुख लेखकों में अज्ञेय, श्रीलाल शुक्ल, शिवप्रसाद सिंह, अमृतराय, उदयनारायण तिवारी, जैनेन्द्र भगवतीचरण वर्मा, वृंदावनलाल वर्मा, शैलेश मटियानी, नन्ददुलारे वाजपेयी, नरेश मेहता, रामविलास शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, बनारसदास चतुर्वेदी, विष्णुकांत शास्त्री, रघुवीर सहाय, लक्ष्मीनारायण लाल, रामकुमार वर्मा, अमृतलाल नागर, रामकुमार वर्मा, कुबेरनाथ राय, वासुदेव शरण अग्रवाल, फादर कामित बुल्के, उपेन्द्रनाथ अश्क, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, वियोगी हरि, धर्मवीर भारती, विष्णु प्रभाकर, अशोक वाजपेयी, केदारनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, भवानी प्रसाद मिश्र तथा अन्य बहुत से लेखक शामिल हैं। इन पत्रों के माध्यम से साहित्य के नये इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। यह महज पत्र नहीं हैं, बल्कि मुकम्मल बयान हैं। इन पत्रों की पढ़ने पर लेखकों के आंतरिक संघर्ष का पता चलता है। रघुवीर सहाय अपने एक पत्र में 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' समाचार पत्र के साथ चल रहे संघर्ष को बताते हैं। उपेन्द्र नाथ अश्क अपने एक पत्र में आजादी से पहले के भारत को याद करते हैं। वे लिखते हैं- ''पहली कविता उन नैतिक मूल्यों की निर्मल जलधारा की है, जिन पर हमारा देश दो-चार दशक पहले तक चलता रहा और जिनकी कसमें हमारे नेता आज भी खाते हैं'' इसी तरह काशीनाथ सिंह ने अपने एक पत्र में लिखा है- ''चूल्हा जरा गरम तो हो, तवे पर तो लोग आटे के बजाय आदमी को भी डाल देंगे।'' इसी प्रकार सन् 1938 में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा लिखे गये कई पत्रों में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने संबंधी प्रयासों का जिक्र है। विभूतिभूषण वंद्योपाध्याय का अपनी पत्नी को लिखे पत्र का उल्लेख आवश्यक है। अपनी पत्नी को वे लिखते हैं- ''तुम्हारे लिए अच्छे काँच की चूड़ियाँ लाऊँगा, हाथों के नाप की जरूरत नहीं है' डोरा से हाथ की नाप भेज दो तो कैसा रहेगा'' शैलेश मटियानी ने प्रकाश मनु को लिखे एक लंबे पत्र में साहित्यकारों के मध्य चलने वाली अदावतों का जिक्र किया है। इस प्रकार पत्रों के माध्यम से तमाम राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अंतरंग प्रसंगों से साक्षात्कार होता है। मटियानी ने लिखा है- ''लेखक को अपने अंधेरों के बीच, जब जरूरत आ पड़े, स्वयं रोशनी करना भी आना ही चाहिए।''

पत्रों के अलावा इस अंक में जो कुछ सामग्री छपी है, उस पर चर्चा करना आवश्यक है। अंक 81 में स्मरण-श्रद्धांजलि कॉलम में बलराज पाण्डेय ने 'नागार्जुन की कविता में जनपक्ष' पर चर्चा की है। नागार्जुन की कविता जीवन के सन्नाटे को तोड़ने वाली तथा जीवन को वेगवान बनाने वाली है, ऐसा लेखक का मानना है। भूमण्डलीकरण ने विज्ञान एवं उसके अविष्कारों पर हमारी निर्भरता को बढ़ा दिया है। आधुनिकता के पहिये पर सवार होकर हम उत्तर आधुनिकता तक आ गये है। इन परिवर्तनों की खास गवाही साहित्य समय-समय पर देता रहा हैं। इस अंक में प्रमोद वर्मा तथा केशव प्रसाद ने इस विषय पर चर्चा की है। विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने मधुरेश की महत्त्वपूर्ण किताब 'हिन्दी उपन्यास का विकास' का मूल्यांकन भी इस अंक में किया है। श्री प्रकाश मिश्र के चर्चित उपन्यास 'जहाँ बांस फूलते हैं' की चर्चा भी इस अंक में हुई है।

अंक 82 में शामिल तीन आलेख उच्चकोटि के तथा अपने समय के जरूरी विषय को उठाते हैं। प्रकाश मनु ने 'सदी के आखिरी दौर में कहानी का चेहरा' विद्या केशव चिटकी ने 'बीसवीं सदी के अंतिम दशक में महिला उपन्यासकार' तथा नगमा मलिक ने हिन्दी और उर्दू कवियित्रियों के हवाले से अपनी बात रखी है। इस अंक के संपादकीय में साहित्य का कार्य मनुष्य है, इस पर चर्चा की गई है। साहित्य न अपनी अलग सत्ता बनाता है और न ही किसी सीमा में बँधता है। उत्तर आधुनिकता के इस समय ने साहित्य की अखण्ड सत्ता को तोड़ने का प्रयास किया है। संपादक की चिंता आदर्श और मूल्यों को कायम रखने के प्रति है।

पिछले अंक की बात आगे बढ़ाते हुए अंक 83 में संपादकीय के अंतर्गत विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है कि लेखक सिद्धांत का निर्माता नहीं होता, अतः लेखक को किसी तरह के संघ से बचना चाहिए। इस अंक में 'रामचन्द्र शुक्ल और भारतीय नवजागरण', 'भारतीय समाज में मुस्लिम' आदि लेख साहित्य की जिम्मेदारी को आगे बढ़ाते हैं। अंक 84 का सबसे प्रभावशाली स्तंभ संस्मरण है। इसमें दीपक कुमार अज्ञात का संस्मरण 'लड़ना रेणु जी का विधानसभा चुनाव' शामिल है। उदय प्रकाश के चर्चित आलोचना संग्रह 'ईश्वर की आँख' की समीक्षा रेवती रमण के हवाले से प्रस्तुत की गई है। मिथक चिंतन के अंतर्गत अजीत कुमार सिंह ने उत्तरा पर चर्चा की है।

अंक 86 में एक बार फिर से भोजपुरी पर विशेष सामग्री प्रस्तुत की गई है। स्वतंत्रता आंदोलन, सौन्दर्य बोध, फिल्मों के साथ-साथ 'मारिशस में भोजपुरी के विकास और प्रभाव' का मूल्यांकन 6 लेखों में किया गया है। अशोक बाजपेयी के साथ ओम निश्चल की लंबी बातचीत इस अंक में प्रस्तुत है, जिसमें अशोक वाजपेयी ने कविता तथा भाषा पर अपने विचार रखे हैं। 'कविता और समय' शीर्षक से प्रकाशित अरूण कमल के कविता संग्रह का मूल्यांकन रेवती रमण ने किया है। कहने का आशय यह है कि दस्तावेज ने समय की नब्ज पकड़ी है तथा अपने समय के चर्चित विषयों, किताबों, विमर्शों को पत्रिका के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

अंक 88 में प्रकाश मनु का लेख 'शताब्दी के अंत में उपन्यास' शीर्षक से शामिल है। उपन्यास की अब तक की विकास यात्रा का तथा उसकी उपलब्धि एवं कमजोरियों पर इस लेख में चर्चा की गई है। सरोज महाजन ने इक्कीसवीं सदी के प्रवेश द्वार पर खड़ी हिन्दी कहानी के माध्यम से कहानी के नवीन विषय एवं विमर्श का मूल्यांकन किया है। पुस्तक चर्चा के अंतर्गत रूपसिंह चंदेल ने साहित्य की चर्चित पुस्तकों 'कितने पाकिस्तान' तथा 'आवां' का जिक्र किया है। यह दोनों ही पुस्तकें अपने लेखकों के साथ 'पोस्टर बुक' की तरह नत्थी हैं।

दस्तावेज के अंक 89 की संपादकीय 'दलित विमर्श' पर केन्द्रित है। उत्तर आधुनिकता ने इस सदी में कई विमर्शों को जन्म दिया है। दलित विमर्श ने साहित्य के स्तर पर दलित गैर दलित लेखक के प्रश्न को उठाया है। संपादक की टिप्पणी है कि जिस मनुष्य में करूणा उत्पन्न नहीं होती, उसकी मनुष्यता संदेहास्पद है। लेखक कोई भी हो उसका रचना संसार मुकम्मल होना चाहिए। अंक 90 पूरी तरह पत्र केन्द्रित अंक है। संचार माध्यमों द्वारा पत्र विधा को पहुँचाई गई क्षति की चर्चा हुई है। साहित्य की अन्य विधाओं की तरह पत्र लेखन का अपना अलग रोमांच है। इस विद्या में तीव्रता, उल्लास और वेदना तीन चीजों की प्रधानता रही है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है- ''पत्र भी सन्नाटे को शब्द देते हैं, मौन को मुखर करते हैं।'' अतः पत्र साहित्य पर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, इस विधा का बहुत सा हिस्सा अब भी अनजाना और अव्यक्त है।

अंक 92 में भी पत्र प्रकाशित हुए हैं। इसके साथ-साथ बारह पुस्तकों का मूल्यांकन इस अंक में किया गया है। बदले हुए समय में हमारे सामने नये-नये खतरे खड़े हो गये है। दस्तावेज ने आम आदमी की मुक्ति के लिए संघर्ष का सपना संजोया था। इसी कसौटी पर खरा उतरते हुए अपने समय की चर्चित पुस्तकों को तर्कशीलता के साथ प्रस्तुत करते हैं। इस अंक की चर्चित पुस्तकों में 'मिट्टी से कहूंगा धन्यवाद' (एंकात श्रीवास्तव), 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' (विनोद कुमार शुक्ल), 'पहला गिरमिटिया' (गिरिराज किशोर) 'हमारा शहर उस बरस' (गीतांजलि श्री), 'अल्मा कबूतरी', 'झूलानट' (मैत्रेयी पुष्पा) आदि की समीक्षाएँ प्रकाशित हुई हैं। ये वही पुस्तकें हैं, जिन पर बाद के वर्षों में भी बहुत चर्चा हुई है।

अंक 93 में मधु सन्धु ने अपने लेख 'विभिन्न मोर्चों पर खड़ी विधवाएँ' में भारतीय कहानी के आधार पर विधवा जीवन की विसंगतियों को उठाया है। 'देशान्तर' शीर्षक में इस बार रूसी कविता एल्गेनी येत्तुशेंको की लंबी कविताएँ प्रस्तुत की गई हैं। अंक 94 में एकांत श्रीवास्तव, मोहन अवस्थी आदि की कविताएँ प्रभावित करती हैं। इस अंक में कथाकार विवेकी राय तथा दुष्यन्त का 'काव्य' शीर्षक से शिवकुमार मिश्र एवं अनूप कुमार के लेख शामिल हैं। दुष्यन्त कुमार ने लोकतंत्र की विडम्बना को बड़ी सूक्ष्मता से व्यक्त किया है। दुष्यन्त की कविता विडम्बनापूर्ण समय की सचाई बयान करती है। आजादी के बाद की भीषण सच्चाइयों से वे अपनी कविताओं के माध्यम से टकराते हैं।

हंस 95 की उपलब्धि इसकी संपादकीय है। राजेन्द्र यादव ने हंस के माध्यम से अपने को स्थापित किया है। दस्तोवज की इस संपादकीय में हंस की संपादकीय के माध्यम से राजेन्द्र यादव को समझा गया है। गौरतलब है कि हंस की पहचान उसकी संपादकीय से बनी थी। एक साहित्यिक पत्रिका ने दूसरी पत्रिका को किस तरह से समझा, यह इस संपादकीय में देखा जा सकता है। हंस के माध्यम से राजेन्द्र यादव की ख्याति बढ़ी, तो दूसरी ओर कई आरोप भी उन पर लगे। अपनी आत्मकथा 'मुड़-मुड़-के देखता हूँ' के आधार पर अपनी चारित्रिक सफाई उन्होंने पेश की है। इस संपादकीय में हंस, राजेन्द्र यादव और उनकी आत्मकथा इन तीनों के आधार पर राजेन्द्र यादव के चरित्र एवं व्यक्तित्त्व को मूल्यांकित किया गया है।

अंक 96 में वीरेन डंगवाल की प्रसिद्ध पुस्तक 'दुष्चक्र में सृष्टा' का मूल्यांकन राजेन्द्र कैड्डा ने किया है। वीरेन डंगवाल अराजकता के माहौल में कविता के द्वारा कशमकश जारी रखते हैं। मनुष्यता के संकट और उसके तनावों से भरी है, वीरेन डंगवाल की कविता। कवि-आलोचक पंकज चतुर्वेदी के शब्दों में ''तुम्हें अपनी कविता पर नाज था और तुम जानते थे कि वह आलोचना की मुहताज नहीं।'' (यही तुम थे, पंकज चतुर्वेदी, पृ. 24)

दस्तावेज के अंक 97 में इंदिरा गोस्वामी का साक्षात्कार प्रकाशित हुआ है। यह साक्षात्कार उदयभानु पाण्डेय ने लिया है। 'संस्मरण' शीर्षक में रामकमल राय ने लक्ष्मीकांत वर्मा का स्मरण किया है। अंक 98 में 'हालावाद' के प्रवर्तक तथा 'मधुशाला', 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' जैसी चर्चित पुस्तकों के लेखक हरिवंशराय बच्चन पर विशेष सामग्री प्रस्तुत की गई है। श्यामसंदर घोष ने बच्चन की कहानियों की चर्चा की है। बहुत कम लोग जानते है कि बच्चन ने कहानियाँ भी लिखी हैं। इस अंक में चन्द्रकांत वांदिवडेकर ने संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद एवं प्राच्य काव्यशास्त्र पर लेख प्रस्तुत किया है। प्रकाश मनु ने 'शताब्दी के अंत में बाल कविता' पर आलेख प्रस्तुत किया है। साहित्य में बाल कविता पर ठीक-ठीक चर्चा का अभाव रहा है। बाल कविता का सृजन कम हुआ, उस पर फतवे ज्यादा रहे हैं। अंक 99 में भी प्रकाश मनु ने बाल कविता की इस चर्चा को आगे बढ़ाया है। उनका मानना है कि सीमा बंधन के बावजूद आज की बाल कविता प्रगति की ओर है और उसमें संभावनाओं के नये द्वार नजर आते हैं। इसी अंक में विष्णु प्रभाकर ने 'धर्म निरपेक्षता' की महत्त्वपूर्ण चर्चा को उठाया है। धर्म निरपेक्षता आज के संदर्भ में सिर्फ शासक के लिए नहीं, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए जरूरी है। अतिवाद से समाज को बचाना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। मनोहरश्याम जोशी के प्रसिद्ध उपन्यास 'क्याप' का मूल्यांकन साधना अग्रवाल ने किया है। अपनी भाषाई सहजता के कारण इनका एक अलग स्थान रहा है। साधना अग्रवाल की इस उपन्यास के बारे में टिप्पणी है कि ''कूर्मांचली की लिखी कथा भ्रामक है और उसमें सुधार अपेक्षित है।''

भूमण्डलीकरण के इस आततायी और विध्वंसक दौर में हमारा चिंतन सोच-विचार सब प्रभावित हुआ है। हमारा समय संकटों एवं साजिशों से बुरी तरह जूझ रहा है। आजादी के थोड़े समय बाद ही हमारा लोकतंत्र संकट में आ गया, इससे जुड़ी बहुत सी समस्याएँ हमारे सामने हैं। यह लोकतंत्र की ही विडंबना है कि जिस गाँधी को अंग्रेजों ने इतने समय तक जीवित रखा, उसे आजाद भारत का लोकतंत्र 16 महीने जीवित नहीं रख सका। दस्तावेज ने अपनी संपादकीय में, लेखों में इनका क्रमशः खुलासा किया है। दस्तावेज ऐसी पत्रिका रही जो बीच में स्थगित हुए बिना अनवरत प्रकाशित होती रही। इसी क्रम में जुलाई-सितंबर 2013 में इसका 100वां अंक प्रकाशित हुआ। यह अंक गाँधी के ऊपर केन्द्रित है।

एक साहित्यिक पत्रिका, जो अपनं अंकों का शतक पूर्ण कर रही हो, उसे गाँधी पर केन्द्रित करके संपादक ने अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है। यह अंक किसी लेखक पर किसी विधा पर केन्द्रित हो सकता था, किन्तु गाँधी पर क्यों ? यह प्रश्न कौतूहल पैदा करता है। इस अंक के संपादकीय में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है- ''इस ऐतिहासिक क्षण में गाँधी से उपयुक्त कोई व्यक्तित्व ऐसा नजर नहीं आया जिस पर 'दस्तावेज' का 100वाँ अंक केन्द्रित करूँ। न कोई राजनेता, न विचारक, न लेखक, न कोई भावयोगी, न कर्मयोगी।''

वर्तमान के इस संकटग्रस्त माहौल में गाँधी ऐसे व्यक्ति, ऐसे विचार हैं, जिसके सहारे मानवता की रक्षा हो सकती है। गाँधी की निज और सार्वजनिक का संतुलन ऐसा है कि वह अभिन्न नहीं है। गाँधी ने अपने प्रयोग खुद अपने ऊपर किये हैं। संपादक की टिप्पणी है कि -''गाँधी की नैतिक शक्ति का एक रहस्य और है, वह है- आस्था। आस्था किसी के लिए अफीम हो सकती है, तो किसी के लिए संजीवनी भी।'' आज मूल्यों के गिरने का समय है। ऐसे समय में दस्तावेज ने इस अंक के माध्यम से यह संदेश दिया है कि गाँधी के विचारों उनकी शिक्षाओं में हम इस त्रासदी से निकलने का रास्ता ढूँढ़ सकते हैं। जाने -अनजाने हम अपने आपको गाँधी के रास्ते पर ही पाते रहे हैं। मेरी निजी राय है कि आज के इस दौर में हमारे सामने गाँधी का रास्ता अंतिम रास्ता है। इसका कोई विकल्प मौजूद नहीं है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने अपनी आतमकथा 'अस्ति और भवति' में लिखा भी है कि ''ससंदीय लोकतंत्र गाँधी और भारत की वैश्विक चेतना वाली मूल्यवादी परंपरा मेरी विचारधारा के केन्द्र में है, जो दस्तावेज की भी विचारधारा है।''

दस्तावेज के अंक 101 में पत्रिका में अब तक प्रकाशित सामग्री का ब्यौरा क्रमबद्ध तरीके से दिया गया है। इस अंक की संपादकीय में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने अब तक के संघर्षों चुनौतियों को याद करते हुए अपने संकल्प को पुनः दोहराया है। संपादक का एक ही ध्येय था कि पत्रिका के माध्यम से हिंसा का

विकल्प खोजना। अपने प्रयास में दस्तावेज ने एक मुकम्मल जगह बनाई है। यह पत्रिका किसी एक चेहरे को केन्द्रीयता नहीं देती, बल्कि इसका पहचान कई चेहरों से है। गाँधी के रास्ते पर चलती यह पत्रिका पानी की तरह नीचे-नीचे राह बनाती हुई इतिहास के नये मोड़ तक पहुँची है। अपनी यहाँ तक की यात्रा में दस्तावेज ने उस तेवर को बनाये रखा है। यह किसी भी पत्रिका के लिए सराहनीय बात है।

अंक 102 में डायरी के अर्न्तगत एकांत श्रीवास्तव ने कविता और दूसरी कलाओं में अंतर्सम्बन्ध की खोज की है। यह किसी भी विधा में लोकतंत्र के रास्ते खोजने का प्रयास है। विधाओं के मध्य की आवाजाही एक स्वस्थ लोकतंत्र का निर्माण करता है। इस अंक में आठ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित हुई है। अंक 104 में शामिल पाँचों आलेख विभिन्न विमर्शों का नेतृत्व करते हैं। सिद्धेश्वर राय ने 'सौन्दर्य की भारतीयता', गोपाल राय ने 'हिन्दी के आरंभिक उपन्यासों में संरचना की तलाश', हरदयाल ने 'प्रभाकर श्रोत्रिय के नाटकों में सत्ता के चेहरे' जैसे महत्त्वपूर्ण सवालों की पड़ताल की है। साहित्य का स्वभाव रहा है कि वह तरह की सत्ता का विरोध करता है।

दस्तावेज जैसे-जैसे आगे बढ़ी है, जिसकी प्रौढ़ता लेखों, संपादकीय, विचारों में झलकती है। विचारों का घनत्व बढ़ा है। अंक 105 में जन्मशती विशेष के अंतर्गत यशपाल, लक्ष्मीनारायण मिश्र तथा भगचतीचरण वर्मा का स्मरण हुआ है। यह तीनों नाम ऐसे है जो साहित्य के धरातल पर किसी परिचय के मोहताज नहीं है। रमेश कुंतल मेघ ने 'उत्तर मुगलकाल में नारी अस्मिता की सौन्दर्य समााजिक प्रासंगिकता के माध्यम से आधुनिक काल के यौन रोगों के लिए कामशास्त्रीय अध्ययन के प्रति वर्जना और यौन शिक्षा का निषेध को दोषी माना है। रीतिकाल इस मामले में लेखक की राय में ज्यादा आधुनिक था। यह लेख वैज्ञानिकता एवं वस्तुनिष्ठता को बढ़ावा देने में सहायक है।

इसी अंक में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने संस्मरण विधा में रूस में अपने 16 दिनों को याद किया है। वेदप्रकाश पाण्डेय ने आचार्य रामचन्द्र तिवारी के 80 वर्ष की आयु पूरी करने पर उनका स्मरण किया है। इसके अलावा इस अंक की कविताएँ तथा पुस्तक समीक्षाएँ उच्च कोटि की हैं।

दस्तावेज के अंक 106 की संपादकीय में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को श्रंद्वाजलि देते हुए संपादक ने उन्हें राहुल सांकृत्यायन और अज्ञेय की परम्परा में रखा है। यह संपादकीय संस्मरणात्मक है। संपादक की यह पंक्ति शामिल किये जाने की अपील करती है- ''मगर दुर्योग भी प्रायः उन्हीं रास्तों से आते हैं, जिनसे आदमी सहज ढंग से गुजर चुका होता है।'' इस अंक के चार आलेख कालजयी साहित्य पर केन्द्रित हैं। अच्छा और श्रेष्ठ साहित्य की शर्तों पर इन लेखों में बहस शुरू की गई है। इस अंक मे ही उदयभानु पाण्डेय ने विष्णु प्रभाकर की आत्मकथा, अहमद फराज की नज्में तथा हिन्दुस्तानी ग़ज़लें जैसी तीन श्रेष्ठ पुस्तकों का मूल्यांकन किया है। अहमद फराज के बारे में लेखक का निष्कर्ष है कि ''परंपरा में रहकर भी परंपरा का अतिक्रमण उनकी कविता की विशेषता है।''

अंक 107 को संपादकीय भी विष्णुकांत शास्त्री को श्रद्धांजलि पर केन्द्रित है। एक राज्यपाल विधायक के रूप में शास्त्री जी की अलग पहचान थी। उनकी पहचान थी-मनुष्यता। सत्यकाम ने राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय आंदोलन और दिनकर की कविता का मूल्यांकन किया है। दिनकर राष्ट्रवादी कवि थे आजादी के पहले और बाद में भी, उनकी कविता राष्ट्रवादी विचारो से भरी है। समाकलीन भारतीय साहित्य के अंतर्गत सीताकांत महापात्र की लंबी कविताओं में आधुनिक स्वरों की खोज ममता खांडल ने की है। इनकी कविताओं में मनुष्यता के स्वर आधुनिक विशिष्टता के साथ मौजूद है। अपने सहज बिम्बों के लिए प्रसिद्ध रामदरस मिश्र के कविता संग्रह 'आम के पत्ते' का मूल्यांकन ज्योतिष जोशी ने किया है। इस संग्रह की कविताएँ उठ खड़े होने के लिए प्रेरित करती है, यही निष्कर्ष आलोचक ने दिया है।

दस्तावेज ने विमर्शों को प्रमुखता से उठाया है। पिछले अंकों की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए अंक 108 का संपादकीय स्त्री विमर्श पर केन्द्रित है। उत्तर आधुनिकता ने केन्द्र और परिधि के मध्य संवाद कायम किया, जिससे उनके मध्य आवाजाही बढ़ी। ऐसे समय में पितृसत्तात्मक सत्ता में दोयम दर्जे पर रही नारी मुक्ति की बातें भी होने लगी। इस संपादकीय में स्त्री लेखन का उद्देश्य सामंजस्य है या वैमस्य, इस बहस की शुरू किया गया है। कई बार यह देखा गया है विरोध करते-करते स्त्री लेखन पुरूषवादी मानसिकता का शिकार हुआ है। इस विचार विमर्श ने संपादक ने विकल्प प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि यदि स्त्री पुरूष में सह अस्तित्त्व बना दिया जाये, तो इस महाप्रकृति का आयोजन और प्रायोजन सिद्ध होगा। पीली आंधी लिखकर पर्याप्त चर्चा पाने वाली लेखिका प्रभा खेतान के औपन्यासिक कृतित्त्व पर निमिषा राय का आलेख प्रशंसनीय है। रमणिका गुप्ता की अजगर कविता इस अंक की गतिशीलता को बढ़ाती प्रतीत होती है।

अंक 109 के संपादकीय में राजनीति और साहित्य के सरोकार पर बहस की गई है। यह सत्य है कि साहित्य और राजनीति में तनावपूर्ण सम्बन्ध रहे हैं। साहित्य ने राजनीति के साथ-साथ किसी भी किस्म की सत्ता का विरोध किया है, किन्तु आजादी के बाद राजनीति और साहित्य दोनों के मूल्यों में गिरावट दर्ज की है। आपातकाल के समय साहित्य में सबसे ज्यादा गिरावट देखी गयी। साहित्य का सरोकार जनता का पक्ष लेता है। मनुष्य को बचाने की कोशिश ही साहित्य का सच्चा सरोकार और उसका पक्ष है। राजनीति के बदरंग होते जाने के बीच साहित्य से उम्मीद है कि वह सच को सच और झूठ कहने का साहस रखे। इस अंक के आलेख कहानीकार काशीनाथ सिंह, अज्ञेय की डायरियों का विश्लेषण, जैनेन्द्र की कथा दृष्टि दस्तावेज को गौरवान्वित करते हैं।

दस्तावेज के संपादक ने पहले की स्पष्ट कर दिया था कि यह किसी खास विचारधारा की पत्रिका नहीं है, बल्कि इसके रास्ते सभी विचारधाराओं के लिए हैं। अपने उत्तरोत्तर विकास क्रम में दस्तावेज ने इस बात का हमेशा ध्यान रखा। अंक 111 का संपादकीय 'सोवियत संघ का पतन और 'मार्क्सवादी चिंतन' पर लिखी गई है। नये किस्म के समाज और मनुष्य बनाने की चिंता लेकर आयी मार्क्सवादी विचारधारा स्वयं उपभोक्तावाद की शिकार हो गयी। इस लम्बे संपादकीय में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने मार्क्सवाद पर पूरे इत्मिनान से चर्चा की है। इसी अंक में कृपाशंकर सिंह ने हिन्दी और उर्दू विकास परपंरा पर लेख प्रस्तुत किया है। उदयभानु पाण्डेय ने कथाकार अखिलेश के कहानी संग्रह 'अँधेरा' की चर्चा मूल्यांकन के अन्तर्गत की है। अखिलेश के पास कहन की विशिष्ट शैली तथा लोकतंत्र की विसंगतियों की अच्छी समझ है।

दस्तावेज ने अंक 112 में अद्वितीय कलाकार चार्ली चैप्लिन की आत्मकथा को 'देशांतर' शीर्षक से प्रस्तुत किया है। यह ऐसे अभिनेता थे, जिनका मौन अधिक बोलता था। दुनिया के हर कोने में उनकी प्रसिद्धि फैली हुई है। ठाकुर प्रसाद सिंह के गीतों पर वशिष्ठ अनूप ने चर्चा की है। उनके गीतों में लोक भाषा की मिठास और लालित्य है। गाँव का संकोची सहमता हुआ जीवन उनके गीतों में चित्रित हुआ है।

दस्तावेज का अंक 113 नयी विशेषता से युक्त है। यह अंक असमिया साहित्य पर केन्द्रित है तथा इसके अतिथि संपादक उदयभानु पाण्डेय हैं। इस अंक में असमिया कहानी, गीति-सम्पदा तथा ऐबसर्ड-नाटकों पर चर्चा की गई है। मेरी निजी राय यह है कि असमिया साहित्य का बहुत-सा स्वर उसके तौर-तरीके हिन्दी साहित्य के काफी नजदीक हैं। अंक 114 का संपादकीय किसानों की आत्महत्या पर केन्द्रित है। यह कुछ ऐसे विषय हैं, जिन पर संपादकीय लिखकर दस्तावेज ने अपना अलग मुकाम बनाया है। यह ऐसा मुद्दा है, जिसे संसद का विषय बताकर लोगों ने पल्ला झाड़ लिया। यही वह तेवर है, जिसने दस्तावेज को लोकतांत्रिक पत्रिकाओं की श्रेणी में उच्चता प्रदान की है। भारत कृषि प्रधान देश है। नगरीकरण, औद्योगीकरण, यंत्र तथा तकनीकि ने किसानों पर सबसे ज्यादा प्रभाव डाला है। प्रश्न ये है कि आखिर उनकी आवाज को कौन उठायेगा ? इस विनाश के खिलाफ साहित्य की क्या भूमिका होनी चाहिए ? अपनी व्यापक छवि की मिसाल देते हुए दस्तावेज ने इस पर संपादकीय प्रस्तुत की है।

विजेन्द्र नारायण सिंह ने हिन्दी उपन्यास की आलोचना पर लेख लिखा है। पूँजीवादी समय में महाकाव्य की जगह उपन्यास ने ले ली है, अतः आलोचना अब उपन्यास केन्द्रित हो गई किन्तु देखा यह कहा है कि आलोचना के लिहाज से उपन्यासों के संदर्भ में कोई सैद्धान्तिकी विकसित नहीं हो पाई।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि दस्तावेज ने एक साहित्यिक माहौल तैयार किया। अंक 115 की संपादकीय थोड़े जुदा अंदाज में थी। यह तीन समसामयिक मुद्दों पर अलग-अलग लिखी गई थी। टी.एन. शेषन के चुनाव आयुक्त बनने तथा उत्तर प्रदेश चुनाव, सरकार और मीडिया का क्रिकेट प्रेम तथा लेखक का पक्ष, इन तीनों विषयों पर बात की गई है। एक लोकतांत्रिक देश में मीडिया की भूमिका उचित है ? ध्यान देने योग्य बात है कि इस चर्चा को करते समय अप्रैल 2018 चल रहा है। भारत में यह समय 'आई.पी.एल.' के रोमांच का है। 2007 में क्रिकेट के दीवानेपन पर बहस करते हुए संपादक के मन में क्रिकेट के प्रति मीडिया के बढ़े क्रेज के साथ-साथ क्रिकेट के और भी लोकप्रिय होते जाने की बात अवश्य रही होगी। क्रिकेट की आड़ में अन्य समस्याओं को छिपाना यह दिखाता है कि मीडिया का एजेंडा क्या है' लेखक का पक्ष ऐसा विषय है, जिसे दस्तावेज ने पहले भी उठाया है। लेखन की बुनियादी शर्त है, लेखक को किसी भी राजनीतिक विचारधारा का गुलाम नहीं होना चाहिए।

आलोक गुप्त ने 'भूमण्डलीकरण और सदी के अंत में हिन्दी कविता' पर बात की है। सदी के अंत में भूमण्डलीकरण की चुनौतियों को कवि ने कैसे स्वीकार किया, यह लेखक की खोज रही है। रमेश कुंतल मेघ ने भाषा-संस्कृति और हिन्दी विषय को उठाया है। समकालीन भारतीय साहित्य के अंतर्गत ओड़िया और पंजाबी कविता पर बात-चीत की गई है। इसके अलावा एकान्त श्रीवास्तव (कविता का आत्मपक्ष) आलोचना समय और साहित्य (रमेश दवे) देवेन्द्र आर्य (आग बीनती औरतें) जैसी किताबों का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

अंक 116 की संपादकीय ज्वलंत है। आठवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन प्रतिरोध की अपसंस्कृति, आरक्षण के कुतर्क, 'कहाँ जाय तस्लीमा' इस संपादकीय के विषय है। विश्व सममेलन को लेकर कुछ लेखकों की असहमति में कितना 'निज छिपा' है, इसे संपादक ने साबित करते हुए अपनी बात रखी। गाँधी के देश में प्रतिरोध के नाम पर हिंसा को गलत बताते हुए विश्वनाथ तिवारी ने कहा है- ''हिंसा एक बर्बर विचार है। यह प्रतिरोध की अपसंस्कृति है।'' आज सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले को लेकर आरक्षण पर बहस चालू हो गई है। दूसके विरोधियों और समर्थकों के अपने-अपने तर्क हैं। अंक 116 में 'आरक्षण के कुतर्क शीर्षक' से आरक्षण के कुतर्कों की भविष्यवाणी की गई है। साहित्य की भविष्य दृष्टि थी कि आज 10 साल बाद ही आरक्षण संबंधी बहस एक ज्वलंत मुद्दा बनी हुई है। मैने अपने पिछलें लेखों में कहा है कि दस्तावेज ने अपनी संपादकीय के दम पर विमर्शों को उठाया है और बहस शुरू की है। इसी अंक में दस्तावेज 111 में छपी संपादकीय सोवियत संघ ... के संदर्भ में लल्लन राय की लंबी प्रतिक्रिया छपी हैं। इसका उत्तर देते हुए संपादक के मत को भी इसी अंक में शामिल किया गया है। कहने का आशय यह है कि दस्तावेज ने असहमतियों को भी जगह दी है। विरोधी मत को भी उचित सम्मान देकर लोकतांत्रिक परंपरा कायम की है।

अंक 117 के संपादकीय का पहला भाग भाषा पर है। हिन्दी की पत्रिकाओं में अंग्रेजी का बढ़ता प्रभाव भाषागत भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने जैसा है। एक षडयंत्र के तहत अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग हिन्दी में हो रहा है, ऐसा संपादक का मानना है। दूसरा भाग तकनीकी समय में कविता पर केन्द्रित है। तकनीक ने मनुष्य को आसानी दी है, किन्तु इसके दुष्परिणाम यह थे कि मनुष्य अजनबीपन का शिकार हो गया है। इस अंक के लेखों में अंजना वर्मा ने भारत के मुक्ति संग्राम में महिलाओं की भूमिका खोजी है। वहीं अनुराग आग्नेय ने कविताओं में पर्यावरण की तलाश की है। यह लेख विषय की विविधता के प्रति दस्तावेज की सक्रियता प्रदर्शित करते हैं। दस्तावेज ने बहुत से नये कवियों एवं नये विषयों को शामिल कर उन्हें स्थापित करने का प्रयास किया है। इस क्रम में कई बार यह पत्रिका सरस्वती के समकक्ष दिखाई पड़ती है।

आधुनिक शिक्षा ने बच्चों पर बहुत बड़ा दुष्परिणाम डाला है। आज की शिक्षा सूचनाएँ प्रदान चाहती है, इसके प्रभाव का आंकलन नहीं कर रही है। दस्तावेज के अंक 118 का संपादकीय इसी चिंता पर केन्द्रित है। प्रतिस्पर्द्धा के इस समय में बचपन दोयम दर्जे में तब्दील हो गया है। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण आत्मनिर्भरता की शिक्षा न दे पाना है। दूसरे भाग में आज की सबसे बड़ी समस्या हिंसा और आतंकवाद पर चर्चा की गई है। तीसरे भाग में तिब्बत की आजादी पर बात की गई है। चौथे भाग में बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रति उदासीनता के लिए लेखक परेशान है। से सभी मुद्दे एक साहित्यकार की बेचैनी को दर्शाते हैं। संपादक की चिंता में देश के साथ-साथ विश्व की भी प्रमुख घटनाएँ शामिल हैं। लेखक का प्रयास समाज के हर संकट को आगे बढ़कर स्वीकार करना तथा उसका विकल्प प्रस्तुत करने का रहा है। ऐसी ही चिंता दस्तावेज और उसके संपादक की रही है।

दस्तावेज का अंक 119 जैनेन्द्र पर केन्द्रित है। जैनेन्द्र मनोविश्लेषणवादी परंपरा के रचनाकार हैं। इनकी विशेषता यह थी कि इन्होंने साहित्य से बाहर जाकर जीवन के अन्य बुनियादी प्रश्नों पर गंभीरता से विचार किया है। यह भी दृष्टव्य है कि लगभग ऐसा ही चरित्र दस्तावेज का भी रहा है। जैनेन्द्र के कथागुरू प्रेमचंद रहे हैं, किन्तु इसके बावजूद जैनेन्द्र ने उनसे अलग अपनी राह बनाई है। हमारे चित्त के विस्तार के लिए जैनेन्द्र बहुत सार्थक हैं और आने वाले हर समय में प्रासंगिक रहेंगे।

अंक 120 दस्तावेज के तीसरे दशक का अंतिम अंक है। इसके संपादकीय में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है कि -''मनुष्यों की तरह ही शब्द का भी अपना संस्कार और ऐश्वर्य होता है'' इसी के अंतर्गत उनका सुझाव है कि गाँधीगिरी का जगह सत्याग्रह शब्द का प्रयोग होना चाहिए, क्योंकि गाँधीगिरी पिटा हुआ धूमिल छवि वाला शब्द है।'' इसी क्रम में लोकतंत्र राजनीति और हिन्दी प्रदेश की चर्चा संपादक ने की है। राजनीति आज इस कदर गंदी हो गई है कि कोई भी भला आदमी राजनीति में प्रवेश नहीं करना चाहता है। अगले भाग में ईश-निंदा पर मौत की सजा पर प्रश्न खड़े किये गये हैं। क्या ईश्वर के प्रति जबरन आस्था पैदा करना उचित है, यह निजी मसला है, फिर उस अपराध की सजा का क्या औचित्य है ? ईश्वर की सत्ता के समक्ष मनुष्य की अपनी निजी सत्ता है, अतः ईश्वर को मानने के लिए उसे बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।

इस जन्मशती अंक के अंतर्गत महादेवी वर्मा, नन्ददुलारे बाजपेयी और देवेन्द्र सत्यार्थी पर चर्चा की गई है। महादेवी नारी के स्वत्व के प्रति आवाज उठाने वाली पहली रचनाकार हैं, उन्होंने अपने व्यवहार, आचरण और कर्म से भी मुक्ति की अलख जगाई है। इसी क्रम में आलोक पाण्डेय ने स्त्री विमर्श की समस्याओं को उठाया है। मुक्ति के नाम पर शुरू हुआ यह आंदोलन कई बार विडंबनाओं का शिकार हुआ है, ऐसे ही प्रश्नों की पड़ताल लेखक ने की है।

अगले अंक में समाप्त

प्रवक्ता (हिन्दी)
जनता इण्टर कॉलेज, झबीरन (सहारनपुर)
मो.नं.-9919973740
ई-मेल- gaur.abhishek2@Gmail.com

गांधी की वाग्मिता

डॉ. डी.एन. प्रसाद

आमुख - गांधी ! आध्यात्मिक अनुभूति का आदमी ! नैतिक-निर्माण का नवोन्मेषी ! सामाजिक सत्य का अनुसंधानकर्ता ! सत्य में ईश्वर की गवेषणा ! सृष्टि में संरचना का सायली ! मनुष्य के नैतिक-निर्माण की कार्यशाला ! दैनंदिनी का सुन्दर सम्पोषक ! जिजीविषा की जागृत प्यास ! जीवटता का जीवन्त इतिहास ! अहिंसक संघर्ष का सेनापति ! स्वतंत्रता संग्राम का अहिंसक योद्धा ! प्रेम की परिपूरक इकाई! आर्थिक संरचना का सुन्दर निवेशक! समन्वयवादी संस्कृति का संवाहक! सर्वधर्म समभाव का सारथी! सबसके उदय की चिन्ता! सत्य का सतत् आग्रही! सपिनय अवज्ञा का अन्वेषक! सामाजिक उत्थान का चितेरा! राजनीति में धर्म की अवधारणा! शैक्षिक मूल्यों का मीमांसक! शांति-सौन्दर्य का उपासक! पत्रकारिता का नैतिक पोषक! भाषा का भावान्तक अर्थविस्तारक! मानव-मुक्ति का उत्कृष्ट उदघोषक! सादगी की स्वस्थ मूर्ति! और अहिंसा का अमिताभ !

महात्मा गांधी
जन्म : 22 अक्टूबर 1969
निधन : 30 जनवरी 1948
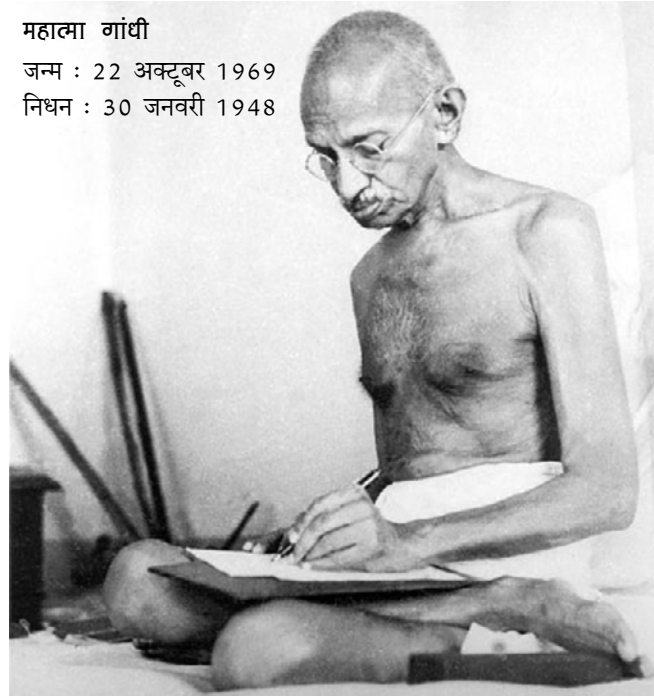
राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 70वीं पुण्यतिथि के अवसर पर समावर्तन परिवार द्वारा उन्हें सश्रृद्ध नमन करते हुए यहां गांधी वाङ्मय के अध्येता तथा महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा (महाराष्ट्र) में प्राध्यापक डॉ.डी.एन.प्रसाद का एक महत्त्वपूर्ण आलेख 'गांधी की वाग्मिता' प्रस्तुत किया जा रहा है जो निश्चित ही सामयिक तो है ही, गांधी द्वारा अपनाये गये जीवन मूल्यों की नये सिरे से व्याख्या भी करता है और गांधी को एक महामानव के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

- संपादक

गांधी शब्दों के बाजीगर थे! शब्द-स्वरूप की कोई भी विधा क्यों न हो, अक्षरों के ताने-बुने से बुने स्वर लहरी वाले शब्द ही गांधी के कर्ण-कुहरों के हेतु अभिनंदित होते थे। 'सत्याग्रह' शब्द के संधान में न जाने कितने समय की परिधि घुम गई थी, तब जाकर यह शब्द प्रतिश्रुत हुआ। सोचिए, सत्य के लिए आग्रह! सत्य जो स्वयं में निरापद है, उसके लिए इस संसार में आग्रह ; जबकि वैदिक-वाङ्मय का यह आप्तसूत्र है- 'सत्यमेव जयते!' अहिंसक प्रतिरोध की प्रविधि के रूप में निःसृत 'सत्याग्रह' गांधी के वाक्-चातुर्य की वाग्मिता के स्वरूप में अश्वशक्ति का संचार है, जिसने दुनिया को एक नया शब्द-शक्ति दिया अभिधा के रूप में, व्यंजना के रूप में, लक्षणा के रूप में! इन त्र्यशक्तियों के समाहार स्वरूप 'सत्याग्रह' ने सफलता का सूत्र दिया भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को!

गांधी ने स्वीाकारा है, ''सत्य की खोज में ही अहिंसा का साधन मुझे प्राप्त हुआ। यदि मेरा कोई सिद्धान्त कहा जाय तो वह इतना ही है और मैंने जो कुछ किया है, वही सत्य और अहिंसा की सबसे बड़ी टीका है।'' (सावली 03.03.1936, वाङ्मय खण्ड-62, पृ. 238) सत्य के संधान में सत्याग्रह मिला, अहिंसा से उसकी प्रतिपूर्ति हुई। अ-हिंसा, हिंसा से परे 'अहिंसा' अपने प्रत्यय बोध में नकारात्मक अर्थ (हिंसा नहीं करता) लेते हुए सकारात्मक तत्त्वबोध से विभूषित है जिसे जैनों और बौद्धों ने अपनाया तो जरूर लेकिन गांधी ने उसे समाजबोध की समाजिकी में पिरो दिया और यह गांधी की वाग्मिता-शक्ति का पर्याय बन गयी। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने इस अहिसां शब्द का शब्दार्थ समझा, गांधी इसका वागर्थ समझ चुके थे, तभी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी काव्यभाषा में इसे बोधित किया, ऐसे 'शब्द' ने अनोखे आंदोलन को रूप दिया, परिपुष्ट किया और सफलता तक पहुँचाया, ऐसे 'शब्द' जिन्होंने संख्यातीत व्यक्तियों को प्रेरणा दी और प्रकाश दिखाया, ऐसे 'शब्द' जिन्होंने जीवन का एक नया ढंग खोजा और दिखाया, ऐसे 'शब्द' जिन्होंने उन सांस्कृतिक मूल्यों पर जोर दिया, जो आध्यात्मिक तथा सनातन है, समय और स्थान की परिधि के परे है और सम्पूर्ण मानवजाति तथा सब युगों की सम्पत्ति है'। अहिंसा की यह चतुर्दिक शक्ति युगबोध के हेतु वाङ्मय की वाग्मिता है।

सत्य के सत्यार्थ का साक्षात्कार गांधी को ही हुआ समग्र स्वरूप में, तभी उन्हें 'ईश्वर सत्य है' की जगह 'सत्य ही ईश्वर है' का सर्वांग बोध हो गया। सत्य का 'स्व' दर्शित होने लगा। यह नैतिक अनुभूति ही उन्हें दार्शनिक ही नहीं, व्यावहारिक दार्शनिक बना दिया। सर्वत्र सत्य की साया आच्छादित होने लगी, गांधी का दृष्टि-बोध 'सत्य-स्वरूप-दृष्टिगोचर' हो गया।

अनुवाद की भावशक्ति गांधी के लिए प्रतीकार्थ था, सत्य का भावन था, क्योंकि अनुवाद का शब्दार्थ तो बालबुद्धि की क्रीड़ा समान होता है। गुजराती में लिखा 'हिन्द स्वराज' जब गांधी अंग्रेजी में अनुवाद करते हैं तो वह 'इंडियन होम रूल' शीर्षक से आता है, हिन्दी में शीर्षक 'हिन्द स्वराज' होता है। अंग्रेजी शीर्षक पर ध्यान देने की बात है। हिन्द स्वराज के लिए इंडियन होम रूल कितना सार्थक भावार्थ प्रतीकार्थ देता है। 'होम रूल' का 'स्वराज' स्व का सत्यार्थ है जो 'निज' के नियमन की ओर संकेत है, क्योंकि बिना स्वानुशासन के राजकाज में सत्य का निरापद निर्वहन कहाँ ? शुचिता कहाँ ? फिर गांधी बोध कहाँ ?

निज के नियम पर ही सत्ता की शुचिता है, स्व की शुचिता है, निजगृह की शुचिता है। स्वराज की शुचिता में स्वशासन का सत्व बोध है जो हिन्द को स्व के बोध से शासित करना चाहता है तभी 'हिन्द स्वराज' का वागर्थ स्पष्ट होगा। यहाँ यह भी कहना समीचीन होगा की इंडियन होम रूल का दर्शन-चिंतन समझे बिना 'हिन्द स्वराज' का अनर्गल अर्थ 'हिन्द स्वराज्य' हो जायेगा और ज्यादा सुधि पाठक 'हिन्द स्वराज्य' का शिकार होकर 'हिन्द स्वराज' को आज तक नहीं समझ पाये। स्वतंत्रता मिली, 'हिन्द स्वराज्य' मिल गया, लेकिन 'हिन्द स्वराज्य' विलोमित हो गया। हिन्द स्वराज्य के अध्याय 9, पृ. 26, वाङ्मय खण्ड-10 पृ. की पंक्ति दृष्टव्य है- 'पहले तो रेलवे के कारण अपने को अलग-अलग राष्ट्र मानने लगे और फिर रेलवे ने हमें एक राष्ट्रीयता का विचार वापस दिया।' यह गांधी की वाग्मिता है, गांधी के वाङ्मय की वाग्मिता! इसी तरह जब वे वकील, डॉक्टर, पार्लियामेण्ट के साथ यंत्रों की मर्यादा कहते हैं तो कितनी मानवीयता छलक आती है, अंधाधुंध यंत्रों का परिचालन भी तो यंत्रों का शोषण ही है, अतः उसकी भी मर्यादा का खयाल कितना मानवी है।

'कुदरती उपचार', 'आरोग्य की कुँजी' शीर्षक उनकी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ अपने विषयानुकूल वागर्थ से भरी है जिनका व्यावहारिक उपयोग समाजोपयोगी स्वस्थ समाज रचना के हेतु है। यहाँ शब्दों का संगमन देखने लायक है- 'कुदरती उपचार' यहाँ दो शब्द दो भाषा के भावान्तक सेतु बन कर शब्द-सौन्दर्य को पूरित करते हैं। 'आरोग्य की कुँजी' तत्सम के साथ तद्भव (लोक शब्द) का संगमन शब्द-सौन्दर्य को सहज आकर्ष करता है।

***

'वाङ्मय का एक अर्थ होता है वचन सम्बन्धी! यानी जब गांधी के सम्पूर्ण को समेटना हुआ तो न सम्पूर्ण गांधी ग्रंथावली, न सम्पूर्ण गांधी रचनावली शीर्षक अभिहित हुआ, बल्कि 'सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय' शीर्षक अभिहित हुआ। ध्यान देने की बात है कि गांधी की जितनी भी रचनात्मकता है, लगभग सभी वाचिक रचना है अर्थात् वाक्-व्यवहार के संदर्भ में भाषण हो, बातचीत हो, पत्र-व्यवहार हो, विचार-पत्र हो या कार्य-निर्धारण हेतु कार्यवाही हो, सबका सब समसामयिक विचार परम्परा का संवाहक! इसलिए 'गांधी वाङ्मय' शीर्षक सार्थक हुआ और उस सम्पूर्ण में वचन सम्बन्धी वाग्मित-वागर्थ को ही सम्मिलित किया गया।

'सादा जीवन जटिल जीवन से अच्छा होता है, क्योंकि उसमें ऊँची-प्रवृत्तियों के लिए समय मिल जाता है। (वाङ्मय खण्ड-10, पृ. 299, रेड डेलीमेल, 27.06.1910) गांधी का यह वचन/कथन अभिधा में भी लक्षण की व्यंजना है। वैसे ही 'मेरे सपनों का भारत' शीर्षक उनकी पुस्तिका अभिधात्मक व्यंजना की तरह हमें सपनों के भारत की परिकल्पना के हेतु अभिप्रेरित करती है। आंदोलनों की श्रृंखला में 'सविनय-अवज्ञा' विनय के साथ आज्ञा की अवहेलना स्वाभिमान को वाक्-चातुर्य से स्थापित करता, जिसमें विपक्षी मूक बना रह जाता है। 'असहयोग आंदोलन' हमें आपसे विरोध नहीं है, पर आपका सहयोग नहीं करेंगे, ये दूसरा पक्ष शिथिल पड़ जाता है। कहने का तात्पर्य कि प्रतिरोध की यह अहिंसक अवधारणा अन्यत्र कहीं नहीं। अवज्ञा भी विनय के साथ, असहयोग से आंदोलन का ईजाद। हिंसा-अहिंसा का यह संगमन अद्भुत और चमत्कारिक! शब्द की भाष्य-शक्ति का अमोघ-अस्त्र!

'सविनय अवज्ञा' को हेनरी डेविड थोरो के 'सिविल डिसओबेडिएंस से सम्पृक्त कर देखा जाता है, लेकिन सिविल डिसओबेडिएंस का 'सविनय अवज्ञा' की अवधारणा विकसित करने में गांधी को कितने-कितने दिवस के चिंतन से गुजरना पड़ा होगा तब जाकर 'सविनय अवज्ञा' जैसे प्रत्यय पद का उद्भव हुआ होगा। अर्थात् स्वार्थ से ऊपर उठकर देखने की दृष्टि से ही ऐसे प्रत्यय की प्रतिभूति हुई होगी। ठीक इसी तरह सर्वोदय को जॉन रस्किन के 'अन्टु दिस लास्ट' का पर्याय माना जाता है, लेकिन अन्टु दिस लास्ट को 'सर्वोदय' होने में सर्वहित की चिन्ता का भारतीय चिंतन प्रतिफलित हुआ है, यह है सबके सुख में मेरा सुख और आनन्द-दर्शन जो गांधी की चित्तवृत्ति है और यही गांधी का शब्दसंधान शब्दशक्ति का प्रतिफल देता है, यह शोध-वृत्ति भी है। प्राप्त तत्त्व से अपना निहितार्थ सर्वहित के हेतु सम्प्रत्यय बना देना जो शाश्वत सम्प्राप्ति का पर्याय बन जाय, वह सर्वहित की चिन्ता का चिन्तन है।

'एकादशव्रत' व्यक्तित्व निर्माण की इकाई का भावार्थ है जिसे व्रत की संज्ञा दी गई है ताकि नियमन-संयमन की प्रतिपूर्ति व्यक्ति में हो, जिससे नैतिक मनुष्य का निर्माण संभव हो। गांधी का चिंता-दर्शन सबसे ज्यादा मानवता के हेतु के लिए है। पंचमहाव्रत में छ संकल्पों के योग से गांधी ने अलौकिक में लौकिक एकादशी व्रत की परिकल्पना का उन्नयन कर दिया, यह गांधी की अन्तश्चेतना की भावव्यंजना है नियमन-संयमन के लिए! इस तरह व्यक्तित्व की इकाई जब समाज में खड़ा हो तो उसमें रचनात्मक-शक्ति का स्रोत हो, इस पर्याय की पूर्ति के लिए समाज की संरचनात्मकता के निर्माण हेतु 'रचनात्मक कार्यक्रम' का निर्धारण अद्भुत और सार्थक स्वरूप खड़ा करता है। गांधी के लिए आजादी मिलनी तो प्राथमिकी में थी ही, परन्तु मनुष्य के सामाजिक निर्माण का सार्थक और नैतिक कारक क्या हो, यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण था, ताकि हर 'हाथ' और 'हृदय' का सही दिशा में निर्माण का नवोन्मेष होता रहे, इस अर्थ में निर्माण का समाज-दर्शन गांधी के लिए आवश्यक था।

गांधी 'जीवन की नैतिक कार्यशाला' के हेतु जब 'सात सामाजिक पाप' की उद्बोधना करते हैं तो प्रस्तुत शीर्षक बोध एकबारगी चिन्तन के चित्त को विचलित कर देता है। यह विचलन ही 'सात सामाजिक पाप' की दर्शना से परिचित कराता है, यथा कबीर की वार्णा भी विचलन से अर्थित होती है, बहुत कुछ गांधी के वाक् भी ऐसे ही वाग्मित होते हैं श्रमरहित सम्पत्ति, चेतनहीन आनंद, चरित्रहीन ज्ञान, नैतिकताहीन व्यापार, मानवताविहीन विज्ञान, सिद्धांतहीन राजनीति, त्यागरहित पूजा। ये सात सूत्र अपने ही शब्दों में शब्दित होकर सार्थक अर्थबोध कराते हैं- 'पाप के पलछीन से मुक्त पवित्र आस्था में बँधने को; जहाँ सुख है, शांति है और है भयमुक्त जीवन! और इसके 'हेतु बंधन' में बँधने के लिए गांधी निवेदन करते हैं- आप अपना दिवसारम्भ प्रार्थना के साथ कीजिए और उसमें अपना हृदय इतना उड़ेल दीजिए कि वह शाम तक आपके साथ रहे। दिन का अंत प्रार्थना के साथ कीजिए जिससे आपको स्वप्नों और दुःस्वप्नों से मुक्त शांतिपूर्ण रात्रि नसीब हो। प्रार्थना के स्वरूप की चिंता न कीजिए। स्वरूप कुछ भी हो, वह ऐसा होना चाहिए जिससे हमारी भगवान के साथ लौ जल लाये। इतनी ही प्रार्थना का रूप चाहे जो हो जिस समय आपके मुँह से प्रार्थना के शब्द निकले, उस समय मन इधर-उधर न भटके। प्रार्थना एक प्रकार का आवश्यक आध्यात्मिक अनुशासन है। (यंग इंडिया, 23.01.1930, वाङ्मय खण्ड-42, पृ. 424)

गांधी के जीवन में प्रार्थना का विशिष्ट स्थान था, वे प्रार्थना के बिना रह नहीं सकते थे, इस अर्थ-संदर्भ में वे आध्यात्मिक अनुभूति के आदमी थे। प्रार्थना की लौ उनके जीवन में दोनों पहर जलती थी। यथा कवि केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की गेय प्रार्थना की पंक्तियाँ गांधी जीवन को आलोकित करती हैं- रश्मियाँ आतीं ऊषा

की भेंट देने प्यार की। साँझा की किरणें सजाती आरती मनुहार की।। यानी सुबह की प्रार्थना और शाम की आरती दोनों ही जीवन में अनुषंगी हैं, अस्तु जीवन हेतु गांधी की प्रार्थना दोनों पहर की खुराक थी। उनकी प्रार्थना-सभा 'सर्वधर्म समभाव' के समन्वयवादी मूल्य की पोषिता है जिसमें एकात्ममूल्य की भवधारा का प्रवाह मनुष्यता का सींचन करती है समन्वय की संस्कृति की भारतीय परम्परा को पल्लवित करती है। गांधी के लिए राजनीति में 'धर्म' का प्रवेश एथिकल है, पॉलिटिकल नहीं। हमने अपनी बुद्धि दौड़ाई और उसे पॉलिटिकल बना दिया, यह प्रजातंत्र के हेतु घातक सिद्ध हुआ। धर्म को राजनीतिक शस्त्र बना दिया गया, आज परिणाम सामने है। धर्म गांधी के लिए नीति धर्म है। नीति की नैतिकता के हेतु राजनीति में धर्म का यानी धर्मनीति का संचार हुआ। गांधी के दिए गए धर्म-न्याय की शुचिता में हमने अधर्म-न्याय का रोपण करा दिया, इसलिए राजनीति जो राज की नीति थी अर्थात् प्रजा प्रालक की नीति थी, उसमें अलगाव व स्वार्थ की स्वनीति समाहित होकर 'सिद्धांतहीन राजनीति' का हिंसक पर्याय बन गई। राजनीति का अर्थ ही है- लोक कल्याण से सम्बन्धित प्रवृत्ति। तभी तो अनुशासित और प्रबुद्ध प्रजातंत्र संसार की सुन्दरतम वस्तुओं में से एक है। (वाङ्मय खण्ड-47, भूमिका, पृ.5, जून 1931) जब 'राजधर्म' पालन की बात सर्वमान्य है तब तो राजनीति से विच्छिन्न धर्म निरर्थक ही है। वाङ्मय का वक्तव्य कितना समीचीन है आज के समय के साथ --- ''राजनीति धर्म की अनुचरी है। धर्महीन राजनीति को एक फाँसी ही समझा जाय, क्योंकि उससे आत्मा मर जाती है'' । (यंग इंडिया, 03.04.1924, वाङ्मय खण्ड-23, पृ. 373)

***

गांधी साहित्यकार नहीं थे, लेकिन साहित्यकारों के साहित्य-शोधक थे। साहित्य विचार उनकी चिन्तना में प्रवाहित होती रहती थी, तभी तो उनके समय काल के बहुतेरे साहित्यिक अपनी रचनात्मकता पर उनसे विचार-विमर्श किया करते थे। साहितय का एक युग गांधी के विचार-बोध का युग बन गया था। आज भी ऐसी वृत्तियाँ देखने को मिल जाती हैं तो लगता है कि वह व्यक्ति नहीं, युग-बोध का कारक है। बहुत बार वह व्यक्ति अपने वचनों में, कथनों में काव्यमयी हो जाता है, ऐसी ही एक छवि उनके काशी प्रवास के समय उनके कथन से काव्यमयी होकर गंगा की तरह प्रवाहित होती है- ''अरुणोदय और सूर्योदय का दृश्य सब स्थानों पर भव्य होता है, लेकिन गंगाजी के तट पर तो यह दृश्य मुझे नितांत अद्भुत जान पड़ा। आकाश में जैसे-जैसे प्रकाश बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे गंगा के पानी पर स्वर्णिम प्रकाश बिखरता जाता है और अंत में जब सूर्य पूर्णतः दृष्टिगोचर होता, उस समय ऐसा प्रतीत होता मानों पानी में एक वृहदाकार स्वर्ण स्तम्भ प्रतिष्ठापित कर दिया गया है। इस दृश्य को कितना भी देखें, आँखों को तृप्ति ही नहीं होती थी। इस भव्य-दृश्य को देखने के बाद सूर्य की उपासना, नदियों की महिमा के अर्थ को मैं अधिक अच्छी तरह समझ सका। इसी स्थान पर घूमते हुए मैंने अपने देश अपने पूरखों के बारे में गर्व का अनुभव किया। (काशी, फरवरी 1916, नवजीवन, 29.02.1920, वाङ्मय खण्ड-17, पृ. 62)

उक्त अंश के अवलोकन से नहीं लगता कि गांधी कोई नेता, राजनीतिज्ञ और आंदोलनकारी हैं। लगता है प्रकृति को काव्यमयी भाषा से अनुभूत करने वाला कोई सर्जक है जिसकी अभिव्यक्ति की व्यंजना व्यजित हुई है।

इसी तरह नैसर्गिक जीवन के प्रति गांधी की 'पोएटिक' आश्रमवासियों के बहाने हम सबके लिए है- 'आकाश को निहारने से आँखों को शांति मिलती है। आकाश में अवस्थित दिव्यगण मानों ईश्वर का स्मरण करा रहे हों। हम जब इस महादर्शन में तन्मय हो जाएँगे तब हमारे कान उसको सुनते जान पड़ेंगे। जिसकी आँखें हो, वह इस नित्य नवीन नृत्य को देखें। जिसके कान हों, वह इन अगणित गंधर्वों का मूक गान सुनें। मेरे लिए तो ये नक्षत्र ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ने के एक साधन हो गए हैं। आश्रमवासियों के लिए भी हों (पत्र, 11.04.1932, वाङ्मय खण्ड-49, पृ. 286)

***

विविध आयामी चिंतन में गांधी का दार्शनिक चिंतन ज्यादा प्रभावी है। उनका दार्शनिक चिंतन व्यवहार-दर्शन का पर्याय है इसलिए भी गांधी दर्शन की प्रासंगिकता परम है। सत्य को लेकर उनकी अवधारणा परम है- 'सत्य' शब्द 'सत्' से बना है। सत् अर्थात् होना। सत्य अर्थात् अस्तित्व। सत्य के सिवा दूसरी किसी चीज की हस्ती नहीं। परमेश्वर का सच्चा नाम ही 'सत्' अर्थात् सत्य है। इसलिए ईश्वर सत्य है, ऐसा कहने के बदले 'सत्य ही ईश्वर है' यह कहना ज्यादा योग्य है। (पत्र, 22.07.1930, वाङ्मय खण्ड-44, पृ. 41)

सत्य का यह अद्भुत स्वरूप गांधी की गवेषणा की ऊँचाई है जो गांधी के पहले किसी दार्शनिक का तात्त्विक विधान नहीं था। और यह कि मनुष्य मात्र ईश्वर का प्रतिनिधि है (वाङ्मय खण्ड-52, पृ. 5, भूमिका, नवम्बर 1932) तो ऐसी अवस्था में नैतिक-कार्य ही सम्पादित होंगे, सत्य का पालन होगा, अहिंसा का व्यवहार होगा। मनुष्य यह समझ ले कि ईश्वर सबके अन्दर ही नहीं, मनुष्य मात्र ईश्वर का प्रतिनिधि है, गांधी की रामराज्य की परिकल्पना साकार हो जायेगी। 'राम' भी मात्र ईश्वर के प्रतिनिधि ही थे। गांधी जब कहते हैं कि हमारे अच्छे कार्य उतने ही सहज होने चाहिए, जितना सहज हमारी पलकों का उठना, गिरना। हमारी इच्छा किए बिना ही वे स्वतः उठती-गिरती रहती हैं। (माई डियर चाइल्ड, 06.09.1917, वाङ्मय खण्ड-13, पृ. 533) जीवन का सहज स्वरूप ही ईश्वरोचित है, तभी सहज की कसौटी पर कसा हुआ मन भी सार्थक होगा और पलकों की भाँति जीवन का गतिमान भी गतिशील रहेगा। यहाँ गांधी साहित्य का दर्शनतत्त्व से साक्षात्कार कराते हैं।

आस्था, सहिष्णुता और सहजता गांधी के जन्मजात गुण हैं। इन त्रयी मानवीय मूल्य व्यवस्था से गांधी परिपोषित थे, वरना मॉरिस्बर्ग स्टेशन पर उतार दिये जाने पर वे भारत लौट आये होते और सत्याग्रह का जन्म न होता। ईश्वरीय आस्था के सम्पोषक गांधी विचलन से विशेष प्राप्त कर थिर हो जाते थे, यह उनकी आस्था की सफलता होती। जहाँ आस्था की आग लग गई वहाँ इससे परे कुछ नहीं, क्योंकि ''आस्था तर्क से परे की चीज है। जब चारों ओर अँधेरा ही दिखाई पड़ता है और मनुष्य की बुद्धि काम करना बंद कर देती है, उस समय आस्था की ज्योति प्रखर रूप से चमकती है और हमारी मदद को आती है। (यंग इंडिया, 21.03.1929, वाङ्मय खण्ड-40, पृ. 65) यथा- जब चारों तरफ अँधेरा हो, जीवन को मृत्यु ने घेरा हो। / जब एक किरण भी आशा की, आती हो नहीं नजर प्रार्थना कर ऽऽऽ।

प्रार्थना जीवन की अद्भुत आस्था और अनुशासन है, प्रार्थना गांधी के जीवन हेतु आस्था का प्राणतत्त्व है। गांधी की यह आस्था की अनुभूति हर कालखण्ड में सफलीभूत हुई है एक दार्शनिककर्मचेता की तरह !

बड़ी प्रसिद्ध उक्ति है- पाप से घृणा करो पापी से नहीं। इस अर्थ-संदर्भ में गांधी क्षमा-धर्म के अनुपालन पर अपनी आस्था और सहिष्णुता के आरोपण से सफलता का प्रतिमान अपने जीवन के अनेकानेक प्रसंगों में प्रतिष्ठापित करते हैं। एक पत्र में वे लिखते हैं, ''तात्त्विक दृष्टि से पाप का फल भोगना ही है। जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक भोगता है, वह दुबारा पाप नहीं करता है और शुद्ध हो जाता है, यही तो क्षमा है। मनुष्य क्षमा का आरोपण करके शुद्ध बन जाता है। (पत्र, 18.09.1935, वाङ्मय खण्ड-61, पृ. 464)

***

भ्रमवश और अज्ञानतावश बहुतेरे लोग भारत विभाजन को लेकर गांधी पर दोषारोपण की बौछार करते रहते हैं, जबकि यह दोषारोपण बिल्कुल निराधार है। विभाजन के पक्ष में गांधी कभी नहीं थे। आजादी का समयकाल आते-आते गांधी की कोई सुन नहीं रहा था, सभी सत्ता के साये में अपनी-अपनी सेंधमारी कर रहे थे। वाङ्मय में समाहित उस समय के वचनों से स्थिति साफ हो जाती है- ''ईश्वर से यही प्रार्थना है कि विभाजन के साक्षी के रूप में मुझे जीवित न रखें।'' (वाङ्मय खण्ड-88, भूमिका, पृ.5, मई 1947)

***

आज मैं अपने को अकेला पाता हूँ। लोगों को (सरदार और जवाहर) को ऐसा लगता है कि मैं जो सोच रहा हूँ, वह एक भूल है। मैं जिन्दा रहूँ न रहूँ, लेकिन भविष्य में कभी हिन्दुस्तार की आजादी खतरे में पड़े तो यह बात याद रखना कि एक अनुभवी बूढ़े के लिए इस घाव को झेलना कितना कठिन था। हिन्दुस्तान की भावी पीढ़ी की आह मुझे न लगे कि हिन्दुस्तान के विभाजन में गांधी ने भी साथ दिया था। (प्रार्थना सभा, दिल्ली, 01.06.1947, वाङ्मय खण्ड-88, पृ. 43)

***

यह जो पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान बना दिया गया है,उसके बारे में दिल में जो परेशानी है, वह मैंने वाइसराय को सुना दी है। तब उन्होंने मुझे बताया कि यह अंग्रेज का किया हुआ नहीं है। कांग्रेस और लीग ने जो मिलकर माँगा है, वही दिया गया है। (प्रार्थना-प्रवचन, नई दिल्ली, 06.06.1947, वाङ्मय खण्ड-88, पृ. 79)

वाङ्मय के उपरोक्त वचनों से विभाजन सम्बन्धी भ्रम के बादल छँट जाते हैं तथा खुला आकाश स्पष्ट हो जाता है। अब इसके आगे कुछ कहने की जरूरत महसूस नहीं होती। यह इतिहास का तथ्य सत्य है। हम अपना दलीय लोभ-लाभ के आवरण में ऐतिहासिक तथ्य का पटाक्षेप करके दूसरे की अवहेलना अपने को सत्य साबित करने के लिए कर लेते हैं जो क्षणभाव है स्थायीभाव नहीं। यही कारण है कि हम अपने मूल्यों के अस्तित्व की तलाश में बराबर भटकते रहते हैं सत्य से मुँह छिपा कर! सच्चाई तो यह है कि आज हम गांधी को भूल गये, गांधी के गांव को भूल गये, गांधी के धैय को भूल गये, गांधी की गवेषणा को भूल गये। यहीं तक नहीं, उनके सत्य की खोज में हमने असत्य खोज लिया, उनकी अहिंसा की अवधारणा में हिंसा विकसित कर ली। यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी की भूल रही, जिसकी बदौलत दिनानुदिन मूल्यों का ह्रास हुआ। गांधी के मूल्यों पर यह देश चला होता, यह दुनिया चली होती तो आज मूल्य संकट इतने गहरे न होते। आज विश्व फिर से गांधी की तलाश में अन्वेषी बना है, ताकि मुट्ठियों से आकाश निकल न जाय। आज जरूरत बन पड़ी है सम्पूर्ण व्यक्तित्व-विकास में गांधीय मूल्यों की स्थापना की! विकास तो हमने बहुत कर लिया है, विविधवर्णी और विविधआयामी विकास के शिखर की ओर बढ़चले हैं, परन्तु कवि श्रीकांत वर्मा की सर्जना में चिंतित हैं गांधी- पहुँच तो गया है चाँद पर आदमी पर बहुत दूर है आदमी से आदमी!

प्राध्यापक
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
मो. 09420063304
ई-मेल dnpsayal@yahoo.co.in

हार्दिक बधाई

अद्वितीय कथाकार तथा कई महत्त्वपूर्ण सम्मानों से सम्मानित लेखिका **चित्रा मुद्गल जी** को साहित्य अकादमी सम्मान से सम्मानित होने पर हार्दिक बधाई एवं अभिनंदन

समावर्तन परिवार

उज्जैन, भोपाल, इन्दौर, सूरत, मुम्बई, गुना, नई दिल्ली, कोलकाता

पुस्तकें मिली

सिन्ध : इतिहास संस्कृति और साहित्य
रश्मि रमानी
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
मूल्य रू.500/-

आप कैमरे की निगाह में हैं (कहानियां)
राम नगीना मौर्य
रश्मि प्रकाशन, लखनऊ-226023
मूल्य रू.125/-

फिरौजी आँधियाँ (उपन्यास)
हुस्न तबस्सुम निहाँ
मनीष पब्लिकेशन्स
दिल्ली-110004
मूल्य रू.300/-

शब्दों से परे (कविता संग्रह)
सपना जैन
प्रेरणा पब्लिकेशन्स
भोपाल-462011
मूल्य रू.250/-

कामाख्या और अन्य कहानियाँ
भरतचन्द्र शर्मा
बोधि प्रकाशन, जयपुर
मूल्य रू.225/-

लोहित के मानस पुत्र : शंकरदेव
सांवरमल सागानेरिया
हेरिटेज फाउण्डेशन,
गुवाहाटी (असम)
मूल्य रू.300/-

फेनी के इस बार
सांवरमल सांगानेरिया
बोधि प्रकाशन, जयपुर
मूल्य रू.200/-

थोड़ी यात्रा, थोड़े कागज
सांवरमल सांगानेरिया
हेरिटेज फाउण्डेशन
गुवाहाटी (आसाम)
मूल्य रू.180/-

ढलती साँझ में (काव्य संग्रह)
विष्णुप्रसाद कचौले
ऋषिमुनि प्रकाशन, उज्जैन

गति और स्थिति के द्वन्द्व की कविताएँ

मलय पानेरी

'तुमसे है सवाल'(काव्य-संग्रह)
कमलकुमार/प्र.सं. 2018
प्रकाशक बोधि प्रकाशनजयपुर
मूल्य रू.150/-

लेखिका कमल कुमार का सद्य प्रकाशित काव्य-संग्रह 'तुमसे है सवाल' अन्तर्मन में अकुलाते भावों की सार्थक शाब्दिक अभिव्यक्ति है।आज सबसे बड़ा संकट यह हो गया है कि हमारा समूचा परिवेश निरन्तर सवालों का पुलिंदा बनता जा रहा है।व्यक्ति की आत्म केन्द्रिता ने मनुष्य समाज का विकास रोक दिया है। हमारी समझमें मनुष्य नहीं रहा है, बल्कि एक डिजिटल वर्ल्ड अपने तमाम षडयंत्रों के साथ घुस आया है। इसी की मानसिक पीड़ा कवयित्री कमलकुमार बहुत गहरे से अनुभव करती हैं। सामान्य और विशेष दोनों ही स्थितियों में हमसवालों से तब टकराते हैं जब हमें किसी व्यक्ति/समष्टि या विचार एवं मत से शिकायत होती है। सच तो यह है कि जिस व्यवस्था और समाज में खामोश रहना मुश्किल होता है और कुछ बोल जाना शिकायत होती हो तो भी व्यक्ति शिकायत को प्राथमिकता देकर मनुष्य होने का प्रमाण देता है।कवयित्री कमलकुमार का यह काव्य-संग्रह भी ऐसा ही एक प्रमाण है।

पाँच शीर्षकों में विभाजित कविताएँ इस संग्रह को पूर्ण करती हैं, यथाः- 'मरण धर्मा', 'तुमसे है सवाल', 'नयीइबारत', 'इन्द्रधनुष', 'प्रतिध्वनि', इन शीर्षकों के अन्तर्गत कवयित्री ने जीवन की विविध स्थितियों को रेखांकित करते हुए अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। सामान्य रूप से वह कविता स्वीकार की जाती है, जिसमें विचार और जीवन के पहलू होते हैं। केवल बौद्धिक जुगाली कविता की अनिवार्यता को कम कर देती हैं। किसी कवि के लिए कविता की बनी-बनायी स्थितियाँ सामने होती हैं, उनमें मनुष्य-भाव का ह्रास उन्हें ज्यादा तैयारी देता है-कविता के लिए। यह जरूर है कि आज इस प्रकार की स्थितियाँ बहुत मजबूती के साथ किसी रचनाकार के सामने साक्षात हैं कि वे उन्हें अपनी विवेकपूर्ण समझ से देख सकें और सार्थक रचनाएँ हमारे पाठक-समाज को दे सकें। इस संग्रह की कविताएँ उन सबको प्रकट कर रही हैं, जो दिखाई सबको देता है; किंतु संवेदना के स्तर पर महसूस नहीं होता है क्योंकि आज के व्यक्ति में सामान्य रूप से करूण भाव समाप्त हो गया है। ऐसे में रचनाकार यह स्वीकारते हैं कि साहित्य को पुनः मनुष्य से जोड़ना अनिवार्य हो रहा है। कमलकुमार ने इस संग्रह के आरंभ में ही इसकी हामी भरी है- *''चाहे मैं जीत नहीं सकी/पर हारी नहीं हूँ,/क्योंकि लहुलुहान वक्त में बची हूँ।''* एक सीधे-सादे इंसान के रूप में ये भाव कवयित्री की कविताओं की बानगी पेश कर देते हैं। 'मरणधर्मा' भाग की कविताएँ सामान्य पाठक के लिए कुछ परंपरागत और कुछ नये विचार-भावों को एक साथ लेकर चलती हैं। किसी भी कविता का संबंध यदि किसी घटना-विशेष से होता भी है तब भी उसका प्रभाव तात्कालिक नहीं होना चाहिए। इस दृष्टि से इस संग्रह की कविताएँ पाठकों के साथ तादात्म्य स्थापित करती हैं। किसी कविता की पृष्ठभूमि के बारे में कवयित्री का यह कहना- ''कविताहास्य उल्लास की ही नहीं/निराशा, एकांत और उदास भाव की भी होती है।'' बहुत संगत लगता है, क्योंकि कविता का संबंध वस्तुतः परिवेश की सच्चाई से है और साथ ही मनुष्यों के भावों से भी और उससे भी अधिक जीवन के स्वीकार्य व्यतिक्रम भी मौजूद रहता ही है। ऐसा लगता है इस व्यतिक्रम का अभ्यास हमारे पौराणिक चरित्र समय-समय पर हमें कराते रहे हैं। इसीलिए कवयित्री ने धर्मराज युधिष्ठिर के 'धर्म' पर, मर्यादा पुरूषोत्तम राम की 'मर्यादा' पर, गुरूद्रोण के 'गुरूत्व' पर सवाल उठाये हैं। इन चरित्र पात्रों ने अपने-अपने समय में किसका भला किया था। इनसे बहुत कुछ अपेक्षित था, परंतु हुआ अनपेक्षित ही। इन पौराणिक घटनाओं के उल्लेख मात्र से हम इन कविताओं को नारीवादी या स्त्री-सशक्तीकरण की रचनाएँ मानने की भूल न करें, क्योंकि यहाँ कवयित्री का शायद यह आशय है भी नहीं, वे तो मात्र समानता की बात भर कर रही हैं। इस संग्रह का शीर्षक 'तुमसे है सवाल' है और यही इस पुस्तक की कविताओं का एक भाग भी है, जिसमें कवयित्री ने द्रौपदी, गान्धारी, सीता, कृष्ण, युधिष्ठिर, राम और द्रोण से सवाल किये हैं।कवयित्री ने इन पौराणिक पात्रों से स्वयं के अस्तित्व को न बचा पाने पर उनसे सवाल किये हैं कि आखिर आज भी ये क्यों हमारे लिए उदाहरण बने हुए हैं? आखिर क्यों आततायियों के षडयंत्र सफल होते रहे हैं? इस प्रकार के अन्य कई सवाल हमारी पीढ़ी से भी हैं। बल्कि यह कहना अधिक संगत लगता है कि घटनाएँ और पात्र तो हमें समझाने के लिए माध्यम के रूप में उपयोग हुए हैं। इसका सीधा तात्पर्य यह भी लिया जाना चाहिए कि सारे पौराणिक पात्र केवल आदर्श के रूप में पूजने के लिए नहीं, हैं वरन् सीख लेने के लिए हैं। ऐसे ही विचारों के साथ इस संग्रह की कविताएँ हमारी पीढ़ी को सचेत करता है। वैश्विक स्तर पर हो रहे बदलावों को स्वीकारते हुए भी एक संपूर्ण मनुष्य को तैयार करने में कवयित्री का विश्वास झलकता है। इसी विश्व में रहते हुए एक सच्चा और खरा इंसान बनना मुश्किल अवश्य है, किंतु असंभव नहीं है। इन कविताओं का लक्ष्य यह है कि मनुष्यता के लिए आवश्यक प्रयास निश्चित रूप से होने चाहिए तभी हमारे होने की सार्थकता बची रहेगी। कवयित्री कमलकुमार का यह काव्य-संग्रह लगभग चिन्तन-बाह्य हो चुके मनुष्य को पुनः केन्द्रीय धारा में लाने का सार्थक प्रयास है। इस संग्रह की कविताएँ किसी क्रांति की नहीं बल्कि साधारण मनुष्य की बातें अधिक करती हैं। लाभ और लोभ की व्यवस्था में यह उम्मीद करना भी शुभ है।

431/37, पानेरियों की मादड़ी,
उदयपुर (राज.) 313002
मो.नं. 94132-63428

कठिन दौर में मानवता की संभावना तलाशती कविताएँ

डॉ.अरुण वर्मा

क्षण जो जी लिये (कविता संग्रह)
कवि - शशि मोहन श्रीवास्तव
मूल्य : रू.

शशिमोहन श्रीवास्तव मध्यप्रदेश की न्यायालयीन सेवा का एक महत्त्वपूर्ण नाम है। उन्होंने पूर्व में जिला एवं सत्र न्यायाधीश के रूप में कई वर्षों तक अपनी सेवाएँ दी है। प्रशासकीय व्यस्तताओं के बीच समय निकाल कर अपने आत्मानुभव और जीवन से जुड़े अनेक प्रसंगों को उन्होंने अपनी कविताओं में शब्द देने की कोशिश की है। 'क्षण जो जी लिए' कविता संग्रह का कैनवास व्यापक होकर जीवन में हर क्षेत्र को छूता हुआ दिखाई देता है। शशिमोहन जी की कविताओं की विषय वस्तु सहज और स्पष्ट है और उन्होंने अपने चिंतन और अपनी संवेदनाओं को व्यापक सामाजिक सरोकारों को जोड़ते हुए अन्तःकरण की अनुभूतियों को सरल भाषा में अभिव्यक्त कर दिया है। इसीलिये उनकी रचनाओं में सपाट बयानी का असर भी देखा जा सकता है। कविता का संस्कार उन्हें घर परिवार से मिला वे इस संदर्भ में अपने पूज्य दादा-दादी एवं माता पिता का स्मरण करते हुए अपनी कविता यात्रा के लिये परिवार के वरिष्ठजनों को श्रेय देते हैं। समाज की समरसता और उद्धाव को बनाए रखने का दायित्व साहित्यकार का होता है। उसे श्रीवास्तव जी अच्छी तरह समझते हैं। कविता-मनुष्य, और मनुष्यता के जनतंत्र का सदा बहार आख्यान है। छात्र जीवन से ही कविता के प्रति रुझान होने के कारण वे अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति कविताओं में करते रहे हैं। समय के विकृत रूप, समाज की विसंगतियों और विकृतियों पर कवि की नज़र बनी रहती है। धर्म के आडम्बर और पाखण्ड पर चिन्ता करते हुए वे कहते हैं-

दुनिया आज जैसी वह है/धर्म विहीन होकर /उससे अधिक सुन्दर होती है?

उक्त पंक्तियों में कवि की चिंता स्पष्ट रूप से संकेत करती है कि धर्म के नाम पर मानवता कितनी घायल पीड़ित हुई है। 'महक मक्का की रोटी' रचना में माता के स्मरण के साथ ही उसकी दुरुह वेदना और माता होने की पूर्णता का अहसास कवि इन शब्दों में करता है-

यही दुरुह वेदना/स्त्री को मां बनाती हैं/ उसे पूर्णता प्रदान करती और/ उसके हृदय को अकूत प्यार से भर देती है।

गांधीजी का स्मरण करते हुए कवि आगाह करता है कि बापू के सिद्धान्तों की निरन्तर हत्या हो रही है और बापू के नाम पर ना जाने कितने छद्म मनुष्य समुदाय सत्ता पर काबिज हो गये हैं। इस कविता में वर्तमान परिदृश्य को पूरी गंभीरता के साथ महसूस करते हुए कवि ने मन की पीड़ा को शब्द दिये हैं -

लगता है आज/भारत के अधिकांश लोगों के मन पर/ छद्म गांधी पूजकों का राज हो गया है।

देश के युवा वर्ग को राष्ट्र निर्माण में आगे आने और सक्रिय भूमिका निभाने में योगदान करने और देश को गरीबी और साम्प्रदायिक विद्वेष के अभिशाप से मुक्त करने के लिये अपना सब कुछ बलिदान करने के लिये तैयार रहना चाहिये। कवि ने उस क्षणवाद को भी कविता में देखने की कोशिश की है, जो अस्तित्ववादी चिंतन और दर्शन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहा है। क्षण में जी लिया गया जीवन वस्तुतः अपने संपूर्ण वर्तमान को जी भर कर जी लेना है। जो सामने है वह सच है बाकी सपना है कवि की आस्था इस विचार से जुड़ी है। 'क्षण जो जी लिए' में उन्होंने इसी विचार को शब्द दिये हैं। न्यायिक और प्रशासनिक सरकारी नौकरी के अनेक अनुभवों को भी कवि ने अपनी कविताओं में जगह दी है। नंगे भूखों की आवाज, शासन करने वाला आदमी नहीं सुन पाता, इस हकीकत को कवि बहुत अच्छी तरह से जानता है और अपनी रचनाओं में जगह देता है। 'तूफान से पहले की शांति' कविता में व्यवस्था के प्रति बेबस व्यक्ति के मौन को एक तूफान में बदलने की संभावना भी कवि ने व्यक्त की है। कवि अपने उत्तरदायित्वों के साथ ही प्यार के ईमान के लिये सजग होकर यह सोचता है कि सुख सुविधा और झूठे सम्मान के सामने प्यार के धर्म और ईमान की ताकत जीवन की बहुत बड़ी पूंजी है, कवि लिखता है-

उसे हो नहीं सकता प्यार, धर्म और ईमान से /उसे हो नहीं सकता प्यार, संस्कृति और देश की शान से/ जिसे है प्यार केवल अपने सुख सुविधा और झूठे सम्मान से

आज के समय में मनुष्य का मानवीय व्यवहार कितना संदिग्ध है और वह सहायता के नाम पर कितना दुराचार कर सकता है। इस पर बहुत तीखा व्यंग्य और प्रहार श्रीवास्तवजी अपनी कविता 'बुरा आदमी' में शिद्दत के साथ करते हुए कहते हैं-

क्योंकि बुरा आदमी तो/फिर भी आदमी होता है/ किन्तु एक आम पुलिस वाला/प्रायः अपवादों को छोड़ कर आदमी कहाँ होता है?

यह कविता हमें पुलिस के व्यवहार और चरित्र के संबंध में न्यायाधीश आनंद नारायण मुल्ला के उस कथन की याद दिला देती है जिसमें वे कहते हैं कि ''भारतीय पुलिस अपराधियों का संगठित गिरोह है।'' 'लक्ष्मी पूजा' रचना में भी अमीरों के वैभव के बीच गरीबों की ढिबरी और चूल्हे की रोशनी में दिवाली मनाना एक उत्सव नहीं पेट की आग को बुझाना है। इस रचना में यथार्थ का मार्मिक चित्रण कवि ने किया है। सिद्धान्तवादी मनुष्य आज के समय में व्यवहारिक दृष्टि से असफल है, उसकी यह विडम्बना है कि वह युग के प्रवाह के साथ बह नहीं पाता। कवि ने पूरी संवेदना के साथ व्यंग्यपूर्वक 'हत्यारा' रचना को रेखांकित किया है-

जी हाँ/ मैं हत्यारा हूँ/ अपने पिता की आकांक्षाओं का/ बच्चों की अभिलाषाओं का/ क्योंकि मैं,/ युग की धारा में बह नहीं सका।

कवि की अन्तिम रचना 'तस्वीर और तकदीर' में भी सरल शब्दों में लेखक ने अपने मनोभावों को व्यक्त किया है। 'क्षण जो जी लिये' कविता संग्रह में कवि ने शासन प्रशासन, नव धनाढ्य मनुष्य के ऐशो आराम की विसंगतियों के साथ ही नेता, पत्रकार, पुलिस, डॉक्टर, वकील सबके व्यवसाय से जुड़ी हुई अमानवीयता को अपनी कवि दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया है। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और गरीबी के करुणाजनक प्रसंग भी कविता को महत्त्वपूर्ण बनाते हैं। नेताओं की सुरक्षा के नाम पर जनता का करोड़ों रुपया सरकारें व्यय कर रही हैं इसके प्रति भी कवि के मन में कचोट बनी रहती है। इस कविता संग्रह को भी उदासीन कार्ष्णि आश्रम के स्वामी श्री गुरुशरणानंदजी का आशीर्वाद मिला है, वे कहते हैं- ''काव्य साहित्य मनुष्यता की उपज है, मनुष्यता का उद्घोषक है और मनुष्यत्व की विजय ध्वजा है।'' इसी ऋषि वाक्य से शशिमोहन जी को बहुत बड़ा आशीर्वाद मिला है। वरिष्ठ पत्रकार महेश श्रीवास्तव,, जीवन प्रबंधन गुरु पं.विजयशंकर मेहता ने भी इस कविता संग्रह के प्रति अपनी शुभकामनाएँ दी हैं। स्वयं शशिमोहन श्रीवास्तव ने कहा है कि 'मेरी रचनाओं में साम्प्रदायिक सद्भाव की ओर मनुष्यता की अभिव्यक्ति है। वे कविवर भारत भूषण की इन पंक्तियों से अपनी रचना प्रक्रिया और काव्य प्रेरणा को जोड़ते दिखाई देते हैं-

न जन्म लेता अगर मैं, ये धरा मसान होती
न मन्दिरों में मृदंग बजते, ना मस्जिदों में अज़ान होती।

श्रीवास्तव जी ने व्यापक मानवीय उद्देश्यों के साथ अपनी कविता में मनुष्य के मानवीय मूल्यों के प्रति एक चिरन्तन आस्था और संभावना व्यक्त की है यह बहुत ही अनुकरणीय और सराहनीय है।

39, अलकापुरी, उदयन मार्ग, उज्जैन
मो.94248-92058

देश समाज और संस्कृति के सरोकार

श्रीराम दवे

इधर पत्रकारिता के कई आयाम न केवल विकसित हुए हैं बल्कि अपने नये स्वरूपों में अपने प्रभावों, उपयोगिता और आवश्यकता के साथ सामने भी आये हैं। पत्रकार जब घटना विशेष या स्थिति विशेष पर अपनी टिप्पणी करता है तब उसके सामने 'चिड़िया की आंख' जैसा लक्ष्य तो होता है किन्तु परिवेश उसका भाँपा हुआ होता है इसलिए उसकी टिप्पणी में देश समाज और संस्कृति स्वतः झाँकने लगते हैं।

जनसंपर्क विभाग में संयुक्त संचालक रहे डॉ.चंदर सोनाने ने भले ही शासकीय नौकरी में सरकारी बयानों/योजनाओं को हूबहू परोसा हो किन्तु अपने भीतर छिपे निष्पक्ष पत्रकार को उन्होंने न केवल बचाये रखा बल्कि समसामयिक दृष्टि से पुष्ट भी होने दिया और यही कारण है कि जब शासकीय सेवा से निवृत्ति के बाद एक न्यूज पोर्टल में उन्हें अपने पत्रकार के प्रकटीकरण का अवसर प्राप्त हुआ तो वे पूरी तैयारी के साथ अपनी नीर-क्षीर बुद्धि और तार्किकता को लेकर मैदान में उतर पड़े। आलोच्य कृति 'देश समाज और संस्कृति' और उसके आलेख इसका प्रमाण है।

ठीक है कि इन आलेखों में स्थानीयता है किन्तु आलेख पढ़ते हुए लगता है कि यह स्थानीयता कितनी जरूरी है। बावजूद इसके कई बुनियादी सवालों पर भी सोनाने जी ने अपनी कलम चलायी है और बखूबी चलायी है। जैसे-सफाई कर्मचारी को मूलभूत सुविधा देना जरूरी * किसानों के लिए अंग्रेजी में योजना : कैसे हो लाभ * सुशासन के लिए अधिकारों का हो विकेन्द्रीकरण * स्कूली पाठ्यक्रम में जरूरी हो नैतिक और यातायात शिक्षा * आरक्षण के संबंध में खुली बहस जरूरी * स्वच्छ भारत अभियान - लक्ष्य बड़े : प्रयास छोटे * बलात्कारियों को भी हो मृत्यु दण्ड * शहीदों के परिजनों की सुध लेने की जरूरत आदि आलेख निश्चित ही पाठक का ध्यानाकर्षण तो करते ही है उसके चिंतन पर साधिकार दस्तक भी देते हैं। सोनाने जी का लम्बा प्रशासकीय अनुभव और उज्जैन में पदस्थीकरण का कार्यकाल जैसे उन्हें यहीं का बना गया है और यही कारण है कि अत्यन्त जवाबदारी के साथ उन्होंने सिंहस्थ 2004 और 2016 के दौरान जो कुछ अच्छा-बुरा देखा उसे उन्होंने शब्द दिये और अपनी विश्वसनीयता को पुष्ट किया। शासकीय विभागों की कमियाँ, त्रुटियाँ, पूर्वाग्रहों आदि पर उनकी कलम ने जो कुछ लिखा वह जिम्मेदार लोगों को आईना दिखा गया यह अलग बात है कि प्रशासन और शासन की आँख पर चढ़े विकास और जल्दबाजी के चश्मे ने उसे नज़रअन्दाज किया लेकिन सोनाने जी ने अपने पत्रकारीय धर्म की मर्यादा को बनाये रखा और दायित्व से कोताही नहीं की।
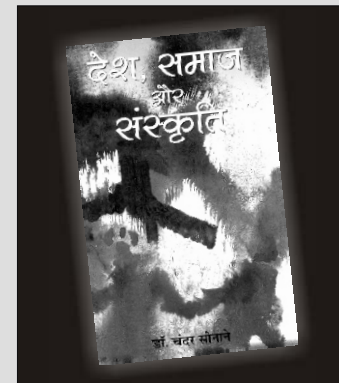
देश समाज और संस्कृति (आलेख)
डॉ.चन्दर सोनाने
प्रकाशक - विद्या विहार,
नई दिल्ली 110002
मूल्य : रू-500/-

पुस्तक में संग्रहित आलेखों में केवल स्थानीयता ही हो ऐसा नहीं है, वैश्विक घटनाओं, पड़ौसी देशों की करतूतों, आतंकवाद, देश के विभिन्न राज्यों की अन्दरूनी स्थितियों से लेकर जातिवाद के जहर, छात्र-छात्राओं की आत्महत्याएँ, राजनीतिक चंदाखोरी जैसे समसामयिक विषयों पर भी तार्किक चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। सभी आलेखों के साथ आलेख के केन्द्रीय भाव को दर्शाने वाला चित्र देकर जो अभिनव पहल की गयी है वह निश्चित ही प्रशंसनीय है। वरिष्ठ कथाकार भालचंद जोशी की भूमिका प्रभावी है। उनके इस कथन की ताईद की जाना चाहिए कि - ''ये लेख अपने समय और समाज को कुछ इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि उसके सामाजिक और आर्थिक विश्लेषणों की जरूरत पर स्पेस भी बनाते हैं।'' बहरहाल, पुस्तक के आलेख पठनीय है अच्छा होता इनका विषयवार वर्गीकरण किया जाता तथा कुछ आलेखों के कलेवर को अद्यतन किया जाता।

जज्बातों का सैलाब

सैलाब (ग़ज़ल संग्रह)
आशीष श्रीवास्तव अश्क
प्रकाशक- प्रभुलक्ष्मी प्रकाशन,
बदलापुर, ठाणे

आशीष श्रीवास्तव अश्क के ताजातरीन अश्आरों का मजमुआ 'सैलाब' यों तो उनके नाजुक जज्बातों के समन्दर में उभर कर आये सैलाब की तरह है किन्तु यह सैलाब शांत किस्म का है। यह सैलाब और उसकी ग़ज़लों के अश्आर पाठक और श्रोता को बरबस बांध लेते है। गोया इन अश्आरों में जिन्दगी के हर वरक को न केवल छुआ गया है बल्कि उसे पारखी नज़र से देखकर उसे मुकम्मल अश्आर में बांधने की पेशकश भी की गयी है मुलाहिजा कीजिए-

दिल मुसल्लसल रो रहा पर आँख ने
रोक रक्खा अश्क का सैलाब है

यह सैलाब यूँ ही नहीं आया है निश्चित ही इस दौरान कई खट्टी-मिट्ठी अनुभूतियों से अश्क जी का वास्ता हुआ है-

घर से बाहर तो गुम था पहले से
घर में भी अब रहा नहीं करता

यह जो स्थिति है वह निश्चित ही आदमी के मनुष्य हो जाने की विकास यात्रा है। 'सैलाब' में ऐसे कई अश्आर है जो जिन्दगी के करीब है। जिन अश्आरों में जिन्दगी करवटे लेते दिखायी देती है वे निश्चित ही गहरे हैं तथा शायर के मिजाज और पहुँच का पता देते हैं-

आस्माँ में कितना भी उड़ लो मगर सच है यही
तब सुकूँ मिलता है जब पैरों तले आती जमीं।।
बारिशें उनको जलाएँ, ये जरूरी तो नहीं
मेरे ग़म उनको सताएँ, ये जरूरी तो नहीं।।
जो हुआ अच्छा वो सब तुमने किया
हर बुरे की हमपे ही तुहमत रही ।।
मौजूदा हालात है सच हद से बाहर
पड़े-पड़े तो मीठा फल भी सड़ता है ।।

शेर कहने की यह जो पाकीज़गी है वह आशीष अश्क का सरमाया है जिसके लिए वे तारीफ के हक़दार हैं।

अपने शायर पिताजी के आशीर्वाद से युक्त और सुख्यात शायर द्वय डॉ.असद निजामी, समर कबीर और मशहूर आलोचक विजयबहादुरसिंह के उम्दा ख़यालातों और तकरीरों से सजे इस मजमुए की ग़ज़लों में कुछ-कुछ नया-नया सा है और पुराने को अहसान मानते हुए बिदाई देने की पेशकश भी है। 'अश्क' को उनकी सहजता के लिए मुबारकबाद। माँ के इस्तकबाल में कही गई कुछ ग़ज़लों की जितनी तारीफ की जाय वह कम ही होगी।

26, निर्माण नगर (रवीन्द्र नगर के पास)
उज्जैन- 456010
मो.94259-15010

बिलासपुर में वनमाली सृजनपीठ के नये केन्द्र का शुभारंभ

साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में सक्रिय वनमाली सृजनपीठ के बिलासपुर केंद्र का शुभारंभ पिछले दिनों एक गरिमामय समारोह में हुआ। इस अवसर पर साहित्य संस्कृतिकर्मी और डॉ.सी.वी.रामन विवि के कुलाधिपति संतोष चौबे ने अपने पिता 'वनमाली' की स्मृतियों को साझा करते हुए कहा कि उनकी बिलासपुर में बहुत सी यादें हैं।

बिलासपुर इकाई के नवनियुक्त अध्यक्ष वरिष्ठ साहित्यकार सतीश जायसवाल ने इस अभियान को व्यापक बनाने का भरोसा जताया। सृजनपीठ के राज्य समन्वयक विनय उपाध्याय ने लगभग तीन दशकों से जारी संस्थागत गतिविधियों और उपलब्धियों से अवगत कराते हुए नए सृजन केन्द्रों को एक महत्त्वाकांक्षी कदम बताया। इस अवसर पर वरिष्ठ आलोचक जयप्रकाश सहित सी.वी. रामन विश्वविद्यालय के कुलपति आर.पी.दुबे सम कुलपति पी.के.नायक, कुलसचिव गौरव शुक्ला, दूरवर्ती शिक्षा के निर्देशक अरविंद तिवारी, आईसेक्ट ग्रुप के निदेशक नितिन वत्स, वनमाली पीठ खंडवा के अध्यक्ष शरद जैन सहित बड़ी संख्या में साहित्यप्रेमी उपस्थित थे।

कार्यक्रम के दूसरे चरण में कवियत्री अनामिका चतुर्वेदी के संचालन में मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़के रचनाकारों ने कविता पाठ किया, साथ ही आमंत्रित अतिथियों ने सांस्कृतिक कला पत्रिका 'रंग संवाद' के नए अंक का विमोचन किया।

संतोष चौबे ने मौजूदा परिदृश्य पर व्यापक दृष्टि डालते हुए कहा कि आज पुस्तक संस्कृति की वापसी का समय है, क्योंकि बीते 30 सालों में बहुत बदलाव आए हैं कहानी, उपन्यास, कविताओं में बहुत से बदलाव देखे जा रहे हैं। आज का यह समय विधाओं के बीच संवाद का समय है और हम भावी पीढ़ी को पुस्तक संस्कृति से जोड़कर उसी संवाद को अधिक सघन और सार्थक करना चाहते हैं। उन्होंने विश्वास जताया कि पुस्तक संस्कृति वापस जरूर आएगी। साहित्य जगत में एक अवसाद की स्थिति नजर आती है जो कि नहीं होना चाहिए।

प्रस्तुति : वनमाली सृजनपीठ द्वारा जारी

सूर्यबाला पर केंद्रित समीचीन का अंक

मुम्बई। पिछले दिनों सोमैया कॉलेज के सभागार में अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'समीचीन' के वरिष्ठ रचनाकार सूर्यबाला पर केंद्रित अंक का लोकार्पण संपन्न हुआ। इस पत्रिका के संस्थापक, संपादक वरिष्ठ कथाकार दिनेश ठाकुर हैं तथा पत्रिका के इस अंक के अतिथि संपादक डॉ.सतीश पांडेय तथा डॉ.प्रवीण चंद्र विष्ट है। अंक के लेखकों में वरिष्ठ कथाकार नंद भारद्वाज, डॉ.श्याम सुंदर पांडेय, डॉ.नीरा नाहटा, चित्रा देसाई, गंगा चरण सिंह, डॉ.सतीश पांडेय, डॉ.शशि मिश्र, डॉ.सुधीर चौबे आदि शामिल हैं। लेखिका की प्रत्यक्ष उपस्थिति में हुए लोकार्पण के उपरांत प्रायः सभी वक्ताओं ने सूर्यबाला के कृतित्व की मार्मिकता, उनके स्त्री पात्रों की आत्मविवेकी दृष्टि, सामयिक उछालों से बचकर लिखने की उनकी प्रवृत्ति तथा उनके फार्मूला मुक्त लेखन की भी चर्चा की। चर्चा के अंत में सूर्यबाला ने अपने मनोगत में कहा कि मेरी कलम ने मुझे इतनी तृप्ति दी कि मेरे अंदर कोई और चाहना बाकी न रही।

प्रस्तुति : संदीप

लेखिका ज्योति जैन की दो पुस्तकों का विमोचन

इंदौर। गत दिनों कथाकार ज्योति जैन की दो पुस्तकों 'जीवन दृष्टि' और 'यात्राओं का इंद्रधनुष' के विमोचन समारोह के अवसर पर साहित्यकार और शिवना प्रकाशन के निदेशक पंकज सुबीर, अहिल्या बाई होलकर एयरपोर्ट की निदेशक आर्यमा सान्याल तथा पद्मश्री भालू मोंढे मुख्य अतिथि और चर्चाकार के रूप में मौजूद थे। तीनों ही अतिथियों ने लेखिका ज्योति जैन की सक्रियता, रचनात्मकता और संवेदनशीलता की प्रशंसा की और कहा कि बदलते वक्त में जबकि इतना कुछ लिखा जा रहा है, जमीनी और जरूरी लेखन सिमट रहा है,

ऐसे में ज्योति जी की रचनाएं आश्वस्त करती हैं, उनकी सभी कृतियों की खास बात है कि वे सकारात्मकता से भरपूर हैं।

साहित्यकार पंकज सुबीर ने कहा कि ज्योति जी की दोनों किताबें कथेतर गद्य का प्रतिनिधित्व करती है। इनमें कहानी से अलग वास्तविकता का रस है। इस अवसर पर लेखिका ज्योति जैन ने कहा कि घुमक्कड़ी और बिंदास जीवन का फलसफा मुझे निरन्तर सीखने और सीखे हुए को सुव्यक्त करने की प्रेरणा देता है।

कार्यक्रम के आरंभ में वामा साहित्य मंच की ओर से वीना नागपाल, मंजू व्यास, शारदा मंडलोई और परिवार की तरफ से चानी जैन कुसुमाकर, रितेश जैन और स्वामी ने अतिथियों का स्वागत किया। गरिमा संजय दुबे ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की, स्वागत उद्बोधन वामा साहित्य मंच की अध्यक्ष पद्मा राजेन्द्र ने दिया। स्मृति चिह्न शरद जैन, राजेन्द्र तिवारी और कोणार्क जैन ने दिये। संचालन स्मृति आदित्य ने किया और आभार माना डॉ.किसलय पंचोली ने। जाल सभागार में संपन्न इस अवसर पर शहर के जाने माने साहित्यकारों ने बड़ी संख्या में अपनी उपस्थिति दी।

प्रस्तुति - वामा साहित्य मंच, इंदौर

विक्रमसिंह गोहिल को अजीज इन्दौरी सृजन सम्मान

इंदौर। जनवादी लेखक संघ इंदौर द्वारा गत दिनों आयोजित कार्यक्रम में जनवदी लेखक संघ के पूर्व अध्यक्ष की स्मृति में अजीज इन्दौरी सृजन सम्मान देवास के विख्यात ग़ज़लकार विक्रमसिंह गोहिल को प्रदान किया गया। उर्दू के जाने माने साहित्यकार रशीद शादनानी ने अजीज इन्दौरी के व्यक्तित्व व कृतित्व पर विस्तार से बातचीत की और कहा कि अजीज साहब न केवल एक कर्मठ लेखक रहे वरन उन्होंने एक पीढ़ी तैयार की जो साहित्यिक और सामाजिक मूल्यों को सहेजने का कार्य कर रही है। कथाकार प्रकाश कान्त ने विक्रम सिंह गोहिल के व्यक्तित्व व कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए रेखांकित किया कि वे अपने सपनों में एक वैज्ञानिक भारत देखते हैं। और यह साहित्य की जिम्मेदारी भी है कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बचाए रखे और सामाजिक पक्षधरता के प्रति भी सजग हो। इस सत्र का संचालन डॉ.चारुशिला मौर्य ने किया। इसके बाद विचार सत्र में कथाकार सूर्यकांत नागर ने साहित्य के सांस्कृतिक विवेक पर तथा चिन्तक रामप्रकाश त्रिपाठी ने साहित्य के राजनीतिक विवेक पर अपने महत्त्वपूर्ण वक्तव्य दिये। इस सत्र का संचालन युवा कवि प्रदीप मिश्र ने किया।

रचना पाठ की शृंखला में आयोजित कविता पाठ में इन्दौर के प्रदीप कान्त व कृष्णकांत निलौसे, रतलाम से आशीष दशोत्तर व देवास के विक्रमसिंह गोहिल, भोपाल से नीलेश रघुवंशी व वरिष्ठ कवि राजेश जोशी ने कविता पाठ किया। संचालन रजनी रमण शर्मा ने किया। आभार देवेंद्र रिणवा ने माना। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में साहित्यप्रेमी उपस्थित थे।

प्रस्तुति : प्रदीप कांत

प्रस्तुति : जितेन्द्रनाथ मिश्र

कथाकार अल्पना मिश्र का जापान में बहुआयामी संवाद

हिन्दी की महत्त्वपूर्ण कथाकार अल्पना मिश्र की 15 दिनों की जापान की साहित्यिक यात्रा, भारत और जापान के साहित्यिक, सांस्कृतिक संबंध की दिशा में एक बड़ा कदम है। इस दौरान दुनिया के मशहूर लेखकों में शुमार हिरोमी इटो के साथ अल्पना मिश्र का विचारोत्तेजक ढाई घंटे का सीधा संवाद दोनों देशों के लिए एक उपलब्धि बना, है। इस दौरान अल्पना मिश्र के जीवन और लेखन के विभिन्न पहलुओं पर एक वृत्तचित्र भी दिखाया गया। जापान के चार मुख्य शहरों इबाराकी, ओसाका, टोक्यो तथा कुमामोये में आयोजित विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रमों में अल्पना मिश्र के लेखन और जीवन पर फोकस किया गया।

ज्ञातव्य है कि हिरोमी इंटो ने संवाद के क्रम में अल्पना मिश्र से उनकी रचनाओं और भारत में औरतों के हालात के संबंध में तीखे सवाल किए जिनका उन्हें माकूल जवाब भी मिला। दोनों लेखकों ने अपनी-अपनी रचनाओं के अंशों का पाठ भी किया अल्पना मिश्र के साहित्य का जापानी में किये गये अनुवाद की बुकलेट श्रोताओं के बीच सभी शहरों में वितरित की गई। इस यात्रा के दौरान कई प्रमुख हस्तियों ने कथाकार अल्पना मिश्र से संवादों-साक्षात्कारों के मार्फत उनके लेखन और हिन्दी कथा साहित्य के परिवेश को जानने समझने की कोशिश की, जिनमें जापान में हिन्दी विद्वान प्रोफेसर मिजाकामी, प्रोफेसर नाम्बा, प्रोफेसर कोमात्सु, श्री याजीरो तनाका, डॉ.चिहिरो कोइसो, श्री रीहो ईशाका, श्री हाईदकी इशीदा के साथ-साथ अनेक जापानी मीडिया के लोग, प्रोफेसर, फॉरेन ऑफिसर्स, अर्थशास्त्री, इतिहासकार, रसियन, चीनी, जर्मन भाषा के विशेषज्ञ और बौद्धिक शामिल थे।

प्रेमचंद सृजनपीठ द्वारा विभिन्न विधाओं के लिये साहित्यकारों का सम्मान

उज्जैन। कालिदास अकादमी में प्रेमचंद सृजनपीठ द्वारा प्रख्यात साहित्यकार पंकज सुबीर के मुख्य आतिथ्य में तथा इतिहासकार, शिक्षाविद् डॉ.मनोहर सिंह राणावत की अध्यक्षता में कहानी, व्यंग्य, लघुकथा एवं कविता के लिए डॉ.किसलय पंचोली, श्रीमती ज्योति जैन, प्रतापसिंह सोढ़ी, डॉ.पिलकेन्द्र अरोरा, डॉ.हरीश कुमार सिंह, वाणी दवे तथा हेमंत देवलेकर को 'कर्मभूमि' सम्मान से सम्मानित किया गया। वाणी दवे की अनुपस्थिति में उनका सम्मान उनकी बहन गरिमा दवे ने ग्रहण किया। कार्यक्रम में स्वागत भाषण निदेशक जीवनसिंह ठाकुर ने दिया। मुख्य अतिथि पंकज सुबीर ने वर्तमान साहित्य तथा साहित्यकारों की भूमिका रेखांकित की, अध्यक्षता कर रहे डॉ.राणावत ने इतिहास के लेखन के तथ्यों तथा भारतीय संघर्ष के इतिहास को रेखांकित किया है। विशेष अतिथि श्रीमती प्रतिभा दवे एवं श्री प्रतीक सोनवलकर ने अतिथियों को स्मृति चिह्न प्रदान किये। इस अवसर पर सर्वश्री प्रमोद त्रिवेदी, डॉ.शिव चौरसिया, श्रीराम दवे, अक्षय आमेरिया, प्रकाश कान्त सहित इन्दौर, देवास, शाजापुर, मंदसौर, सीहोर, महिदपुर और उज्जैन के अनेक साहित्यकार और सुधीजन उपस्थित रहे।

प्रस्तुति : प्रेमचंद सृजनपीठ द्वारा जारा

साहित्यिक संघ का 27वाँ वार्षिक अधिवेशन संपन्न

वाराणसी। साहित्यिक संघ का 27वाँ वार्षिक अधिवेशन गत दिनों गोलघर स्थित पराड़कर स्मृति भवन के गर्दे सभागार में प्रख्यात कवि ज्ञानेन्द्रपति के मुख्य आतिथ्य तथा डॉ.जयशीला पाण्डेय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। स्वागताध्यक्ष श्री जगदीश झुनझुनवाला द्वारा अभ्यागतों के स्वागत के बाद बारह रचनाकारों को सेवक स्मृति साहित्य श्री अलंकरण द्वारा सम्मानित किया गया। सम्मानित होने वाले रचनाकारों में रामावतार (गाजीपुर), डॉ.आशा शर्मा (जयपुर), डॉ.अलका प्रमोद (लखनऊ), डॉ.शोभनाथ शुक्ल (सुल्तानपुर), अशोक कुमार प्रजापति (पटना), रमेश गौतम (बरेली), देवेन्द्र कुमार मिश्र (छिन्दवाड़ा) के अतिरिक्त वाराणसी के डॉ.अशोक कुमार सिंह, सुरेन्द्र वाजपेयी, शिवकुमार पराग, इं.विजयशंकर पांडेय तथा धर्मेन्द्र गुप्त साहिल सम्मिलित थे। इन रचनाकारों ने महेन्द्र नाथ मिश्र स्मृति काव्यगोष्ठी में अपनी रचनाएँ भी सुनाई तथा सम्मान के प्रति आभार व्यक्त करते हुए साहित्यिक संघ की गौरवशाली परंपरा का स्मरण किया। प्रमुख अतिथि कवि ज्ञानेन्द्रपति ने कहा कि उलझाव भरे इस जटिल समय में रचनाकारों का उत्तरदायित्व बहुत बढ़गया है। डॉ.उदयप्रतापसिंह, डॉ.शोभनाथ शुक्ल, डॉ.रामसुधारसिंह आदि ने संबोधित किया।

गत दिनों उज्जैन के वरिष्ठ पत्रकार श्री रमेश दीक्षित द्वारा सम्पादित कृति भैरव तंत्र के सात्विकोपासक : बाबा डबराल का लोकार्पण एक भव्य समारोह में संपन्न हुआ। संस्कृतिज्ञ प्रो.केदारनारायण जोशी, प्रो.सूर्यप्रकाश व्यास एवं समावर्तन के संपादक श्रीराम दवे ने पुस्तक पर विस्तार से प्रकाश डाला। उपस्थित संत समुदाय ने आशीर्वचन दिये। संचालन श्री कैलाश विजयवर्गीय ने किया। इस अवसर पर बाबा बाबा डबराल पर केन्द्रित प्रोफेसर शैलेन्द्र पाराशर एवं डॉ.प्रकाश रघुवंशी द्वारा निर्देशित एक डाक्यूमेंट्री फिल्म का प्रदर्शन भी हुआ। कार्यक्रम में नगर के एवं दूर-दराज के कई सुधीजन उपस्थित थे।

प्रस्तुति : राकेश दीक्षित

हिन्दी कहानियों के नये आयामों पर सार्थक चर्चा करने से पहिले जरूरी है कि उसके इतिहास पर एक नजर डाली जाए जो बहुत पुराना नहीं हैं, यही मुश्किल से सौ-सवा सौ साल का। बहुत प्रामाणिक काल-गणना के मान से उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक अथवा एक-दो दशक पहिले से। इस प्रसंग को ज्यादा दूर तक नहीं खींचा जा सकता है। उसके बाद के समय या बेहतर तौर पर कहा जाये तो बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक बाद ही कहानी के क्राफ्ट को रचनात्मक और कलात्मक रूप में बनते देखा जाता है। उस दौरान हिन्दी कहानी को पालित-पोषित करने में संस्कृत और फारसी के साहित्य के अलावा अन्य समृद्ध भारतीय भाषाओं यथा बांग्ला, मराठी तथा लोक-कथाओं का श्रेय रहा जिसे पश्चिम से ग्रहण की गई साहित्यिक-वृत्ति का भरपूर सहारा मिला लेकिन उसने अपनी जमीन नहीं खोई, हालांकि भाषा के प्रयोगों और शिल्प की विविध शैलियों को आत्मसात् जरूर किया। किन्तु महत्वपूर्ण यह कि उस दौर की कहानी का जबर्दस्त गुण विरासत में मिली किस्सागोई रहा जिसे आज भी खारिज या खत्म नहीं किया जा सका है।

हिन्दी कहानी की यात्रा का दूसरा समय उसे कहा जाना चाहिए जब उसने मजबूती से चलना तथा अपने समय और समाज को गहरी अंतर्दृष्टि से देखना शुरू किया। देश की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक- सांस्कृतिक स्थितियों, देश में हो रही उथल-पुथल, विभिन्न रूढ़ियों और रिवाजों को लेकर सुधारवादी आंदोलन, स्वतंत्रता की चेतना और अनेक विमर्शों की चर्चा ने कहानी को क्रमशः समाजोन्मुख बनाया। इस दौर में कहानी ने अपने आधारों को परखा और अपनी दृष्टि विकसित की। लेकिन कहानी अपनी कहानी कहती रही पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया कि क्यों और कैसे कही जा रही है ! साहित्य की हर विधा को अपनी आलोचना से सामना करना जरूरी होता है लेकिन कहानी की आलोचना लगभग शून्य रही क्योंकि इसके पहिले मूर्धन्य आलोचक गण कविता पर ही सौ जान से फिदा थे। शुरूआती दौर में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छोटी कहानियों पर चर्चा की, लेकिन बहुत कम, उसमें भी कवियों के योगदान को सराहा, हालांकि कहानी के 'एटीट्यूड' की प्रशंसा की लेकिन खास तवज्जो नहीं दी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सामने साहित्य को लेकर ज्यादा महत्वपूर्ण काम थे परिणामतः तत्कालीन कहानियों के इतिहास या विकास पर उन्होंने भी लगभग गौर नहीं किया। डॉ0 रामविलास शर्मा ने 'प्रेमचंद और उनका युग' जरूर लिखी। कथा विवेचन और उस पर विचार करती उनकी दूसरी पुस्तक भी है, लेकिन बहुत गंभीरता से, एकाग्र होकर कहानी पर निगाह नहीं डाली। उनका महत्व अन्य विधाओं में भरपूर रहा। निश्चय ही, उस समय कविता के आगे कहानी पानी भर रही थी, हालांकि विराट रूप से मुंशी प्रेमचंद, जैनेन्द्र कुमार, सुदर्शन, कौशिक आदि सामने आ चुके थे। हिन्दी भाषा और उसके साहित्य को प्रेमचंद जी का ऐतिहासिक अवदान कभी नहीं भूलना चाहिए जिन्होंने भाषा और कथानक की सम्प्रेषणीयता के बल पर तत्कालीन समय को अपनी कहानियों और उपन्यासों में उतारकर देश में लोकप्रिय तथा ग्राह्य बनाया। आज भी हिन्दी साहित्य में आम जन कहानी के नाम पर प्रेमचंद को जानता है। यह एक ऐसा अजूबा तथ्य है जो एक साथ ऐतिहासिक है और सामयिक भी, परिणामतः एक ओर से सौभाग्य है और दूसरी ओर से दुर्भाग्य। सौभाग्य तो जग-जाहिर है, दुर्भाग्य इसलिए कि इस आंधी में प्रेमचंद की परम्परा के महान लेखकों की कृतियों को उस तरह की लोकप्रियता और सनद नहीं मिली जैसी कि मिलना चाहिए थी क्योंकि वे भी मामूली नहीं बल्कि महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

प्रेमचंद की लोकप्रियता और समाज में प्रतिष्ठा के कारणों की गहरी पड़ताल लगातार की जाना चाहिए ताकि सम-काल के लेखकों को खोये हुए सूत्र मिल सके, अपने रास्ते का उजाला मिल सके और जनता की नब्ज पर हाथ रखना आ सके जो प्रेमचंद की विशेषता है।

इस काल-यात्रा के अनुशीलन से यह बात तो साफ होती है कि सन् 1950 के बाद एक सशक्त विधा के रूप में कहानी/उपन्यास के भाग खुलने लगे थे लेकिन तब तक उसे ऐसा कोई सक्षम आलोचक नहीं मिला जैसे कि कविता को लाइन लगाकर मिले। फिर भी यदि कथा-साहित्य ना केवल जड़ों से जीवित रहा बल्कि पुष्पित-पल्लवित होता रहा तो इसके लिए अपनी परम्परा और लोक में गहरी रूचि रखने वाली जनता को धन्यवाद देना चाहिए जिसने प्रेमपूर्वक पढ़ा, आदर से सिर-माथे रखा और पड़ोसी तक पहुँचाया। इस उपेक्षा और तिरस्कार से कहानी को नुक्सान तो काफी हुए पर इस अंधकार में एक वरदान मिला, जैसे घोर घटाओं से आच्छादित गगन में बिजली की एक चमक। हिन्दी कहानी को तथाकथित गॉड-फादरों की अनुपस्थिति में अपने दम पर आगे बढ़ना पड़ा और कविता के लिए मूल्यों और प्रतिमानों की तरह कहानी के आलोचकीय मूल्यों का निर्माण नहीं होने से उसने अपना रास्ता खुद बनाया। इस तथ्य को सन् 1950 के बाद के वर्षों में यकीनी तौर पर देखा जा सकता है जब कहानीकारों ने लेखन के साथ आलोचना का भी धर्म निबाहा। इस अनोखे सामंजस्य से उस दौरान किए गए रचनात्मक प्रयोगों और छेड़ी गई बहसों ने कहानी को काटा-छांटा भी और सजाया-संवारा भी। यह प्रयोग-धर्मिता आज भी जारी है जो कहानी के हक में सुखकर है। इस महत्वपूर्ण काम को अंजाम देने में कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, श्रीकांत वर्मा आदि जैसे यशस्वी लेखकों के अलावा डॉ0 इंद्रनाथ मदान, डॉ0 धनंजय वर्मा, डॉ0 देवी शंकर अवस्थी आदि जैसे प्रखर आलोचकों के योगदान को सराहा जाना चाहिए जिन्होंने कथा-साहित्य को नई दृष्टि दी।

आगे देखें तो कहानी धीरे धीरे पत्र-पत्रिकाओं में गौरतलब जगह बताने लगी क्योंकि भारतीय मनुष्य स्वभाव से किस्सा- कहानी का शौकीन है और किस्सागोई की परम्परा कवित्त से पुरानी भले ही ना हो लेकिन उसके आसपास जरूर है। कविता की ताकत के पीछे दो मजबूत बातें रही हैं, एक तो दूसरी छंदबद्धता और तत्संबंधी भाषा-कौशल, दूसरा उसकी गेयता जो संगीत से सुसंगत बैठती है। अब यह अच्छा खासा संदर्भ है, जब आज की कविता पर तरस खाया जा सकता है जिसके पास न छंदबद्धता और न ही गेयता। इस अभाव के कारण आम जन के बीच उसकी साख नहीं रही लेकिन मैं इस पर ज्यादा विचार नहीं करूँगा क्योंकि मेरे अधिकांश मित्र कवि हैं और मुझे कविता से ज्यादा मित्रता प्यारी है, क्योंकि मैं उनके स्वभाव के आयामों और उनकी मित्रता के परिणामों से मैं डरता भी हूँ।

इसलिए इस बात को यहीं विसर्जित करें और कथा की ओर फिर लौटें जो आजादी के बाद देश के नये वातावरण में हो रहे सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप हो रहे वैचारिक द्वन्द्वों और आंदोलनों से डटकर प्रभावित हुई। इस तरह कथा का शास्त्र संपन्न हुआ, यह भी कि कहीं कहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को लेकर गुट बनाकर भी आंदोलन चलाये गये। मेरे विचार से, साहित्य में बाजारवाद ने इसी तरह कदम रखा। नई कहानी/सचेतन कहानी/साठोत्तरी कहानी/अकहानी/जनवादी कहानी- कितने सारे आंदोलन चले और एक बड़ी संख्या में हिन्दी साहित्य को महत्वपूर्ण लेखकों की सोहबत मिली। फिर यह समय भी आया जिसे आज ''युवा कहानी'' का काल कहा जा रहा है जब काशीनाथ सिंह जी के शब्दों में ''नई सदी में कुछ होते होते एक युवा पीढ़ी चुपके चुपके कहानी के आंगन में दाखिल हो गई।'' यह आगमन भी आज समय की कसौटी पर है इसलिए अभी कोई टिप्पणी करना न्यायोचित नहीं होगा, फिलहाल बेहतर होगा कि गुजरे हुए वक्त के ऐतिहासिक मुकामों का जायजा लेते हुए आज के समय में लिखी जा रही कहानी के वर्तमान परिदृश्य तथा भविष्य की संभावनाओं पर निगाह डाली जाए।

इस नाजुक मुद्दे पर चर्चा करने के लिए हम अगले अंक में मिलेंगे, तब तक के लिए विदा। स

मोबाइलः 94250-14166